पूज्य मुनि श्री १०८ विद्यानन्दजी महाराज का

पावन सम्मति-प्रसाद

— ★ —

जैन वाङ्मय भारतीय साहित्यवापीका पद्मपुष्प है। मोक्षधर्म का विशिष्ट प्रतिनिधित्व करने से उसे 'पुष्कर पलाशनिर्लेप' कहना वस्तु-सत्य है। भारत के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारो मे अकेला जैन साहित्य जितनी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है उतनी मात्रा मे इतर नहीं। लेखनकला की विशिष्ट विधाओं का समायोजन देखकर उन लिपिकारो, चित्रकारो तथा मूल-प्रणेता मनीषियों के प्रति हृदय एक अकृतक आह्लादका अनुभव करता है। लिपिरक्षित होने से ही आज हम उसका रसास्वादन करते हैं, प्रकाशित कर बहुजनहिताय बहुजनसुखाय उपयोगबद्ध कर पा रहे हैं, उनकी पवित्र तपश्चर्या स्वाध्याय मार्ग के लिए प्रशस्त एव स्वस्तिकारिणी है।

प्रस्तुत सग्रह राजस्थान के जैन सन्तों के कृतित्व तथा व्यक्तित्व बोधको उद्घाटित करता है। जैन भारती कि जाने-माने तथा अज्ञात, अल्पज्ञात सुधीजनों का परिचय पाठ इसे कहा जाना चाहिए। हिन्दी मे साहित्य धारा के इतिहास अभी अल्प हैं और जैनवाङ्मयबोधक तो अल्पतर ही हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने भी इस आर्हत्-साहित्य के गवेषणात्मक प्रयास में प्राय शिथिलता अथ च उपेक्षा दिखायी है। मेरे विचार से यह अनुपेक्षणीय की उपेक्षा और गणनीय की अवगणना है। साहित्यकार की कलम जब उठती है तो कृष्णमषी से काचन कमल खिल उठते हैं। वे कमल मनुष्य मात्र के ऊषरमरु-समान मन प्रदेशो मे पद्मरेणुकिंजल्कित कासारों की अमन्द हिल्लोल उत्पन्न करते हैं। शुद्ध साहित्य का यही लक्षण है। वह पात्रों के आलम्बन मे निबद्ध रहकर भी सर्वजनीन हितैप्सुता का ही प्रतिपादन करता है। इसी हितैप्सुता का अमृतपाथेय साहित्य को चिरजीवी बनाता है। आने वाली परम्पराए धर्म, सस्कृति, गौरवपूर्ण ऐतिह्य के रूप मे उसको सरक्षण प्रदान करती हैं, उसे साथ लेकर आगे बढ़ती हैं। साहित्य का यह आप्यायन गुण और अधिक बढ जाता है यदि उसका निर्माता सम्यक् मनीषी होने के साथ सम्यक् चारित्रधुरीण भी हो। इस दृष्टि से प्रस्तुत सन्त साहित्य अपने कृति और कृतिकार रूप उभय पक्षों में समादरास्पद है।

राजस्थान के इन कृतिकारों ने गेयछन्दो की अनेकरूपता को प्रश्रय देकर भावाभिव्यक्ति के माध्यम को स्फीत–प्राञ्जल किया है। रास, गीत, सवैया, ढाल, बारहमासा, राग–रागिनी एव नानाविध दोहा, चौपाई, छन्दों के भाव-कुशल प्रमाण सग्रह मे यत्र तत्र विकीर्ण देखे जा सकते है जो न केवल पद्यवीथि के निपुणता स्यापक हैं अपितु लोकजीवन के साथ मैत्री के चिन्हो को भी स्पष्ट करते चलते है। किसी समय उनकी कृतिया लोकमुख–भारती के रूप मे अवश्य समादृत रही होगी क्योकि इन रचनाओ के मूल में धर्म प्रभावना की पदचाप सहधर्मिणी है। आराध्य चरित्रो के वर्णन तथा कृतित्व के भूयिष्ठ आयतन से यह अनुमान लगाना सहज है कि ये कृतिकार बहु–मुखी प्रतिभा के धनी ही नहीं, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी भी थे।

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल गत अनेक वर्षों से एतादृश शोधसाहित्य कार्य में सलग्न है। पुरातन में प्रच्छन्न उपादेयताओ के जीर्णोद्धार का यह कार्य रोचक, ज्ञानवर्द्धक एव सामयिक है। इसमें व्यापक रूप से मनीषियो के समाहित प्रयत्न अपेक्षणीय है।

प्रस्तुत प्रकाशन 'अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी' की ओर से किया जा रहा है। इसमें योगदान करते हुए सत्साहित्य की ओर प्रवृत्ति–शील क्षेत्र का 'साहित्य शोध विभाग' आशीर्वादार्ह है।

मेरठ
२/१०/'६७

प्रकाशकीय

"राजस्थान के जैन सत-व्यक्तित्व एव कृतित्व" पुस्तक को पाठको के हाथ मे देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। पुस्तक मे राजस्थान मे होने वाले जैन सन्तो का [सवत् १४५० से १७५० तक] विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वैसे तो राजस्थान सैकडो जैन सन्तो की पावन भूमि रहा है लेकिन १५ वी शताब्दी मे १७ वी शताब्दी तक यहां भट्टारको का अत्यधिक जोर रहा और समाज के प्रत्येक धार्मिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक कार्यों मे उनका निर्देशन प्राप्त होता रहा। इन सन्तो ने साहित्य निर्माण एव उसकी सुरक्षा मे जो महत्वपूर्ण योग दिया था उसका अभी तक कोई क्रमवद्ध इतिहास नहीं मिलता था इसलिये इन सन्तो के जीवन एव साहित्य निर्माण पर किसी एक पुस्तक की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल के द्वारा लिखित इस पुस्तक से यह कमी दूर हो सकेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग का १४ वा प्रकाशन है। गत दो वर्षों मे क्षेत्र की ओर से प्रस्तुत पुस्तक महित निम्न पाच पुस्तको का प्रकाशन किया गया है।

(१) हिन्दी पद सग्रह, (२) चम्पाशतक, (३) जिणदत्त चरित, (४) राजस्थान के जैन ग्रन्थ भडार (अ ग्रेजी मे) और (५) राजस्थान के जैन सत-व्यक्तित्व एव कृतित्व। इन पुस्तको के प्रकाशन का देश के प्रमुख पत्रो एव साहित्यकारो ने स्वागत किया है। इनके प्रकाशन से जैन साहित्य पर रिसर्च करने वाले विद्यार्थियो को विशेष लाभ होगा तथा जन साधारण को जैन साहित्य की विशालता, प्राचीनता एव उपयोगिता का पता भी लग सकेगा।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियों का जो कार्य क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से प्रारम्भ किया गया था उसका भी काफी तेजी से कार्य चल रहा है। ग्रन्थ सूची के चार भाग पहिले ही प्रकाशित हो चुके हैं और पांचवा भाग जिसमें २० हजार हस्तलिखित ग्रंथों का सामान्य परिचय रहेगा शीघ्र ही प्रेस में दिया जाने वाला है। इसके अतिरिक्त और भी साहित्यिक कार्य चल रहे हैं जो जैन साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में विशेष उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

इस पुस्तक पर पूज्य मुनि श्री विद्यानन्दजी महाराज ने अपने आशीर्वादात्मक सम्मति लिखने की जो महती कृपा की है इसके लिये क्षेत्र कमेटी महाराज श्री की पूर्ण आभारी है।

पुस्तक की भूमिका डा० सत्येन्द्र जी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर ने लिखने की कृपा की है जिसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं। आशा है डॉ० साहब का भविष्य में इसी तरह का योग प्राप्त होता रहेगा।

गेंदीलाल साह एडवोकेट
मंत्री

भूमिका

डा० कासलीवाल की यह एक और नयी देन हमारे समक्ष है। डा० कासलीवाल का प्रयत्न यही रहा है कि अज्ञात कोनो मे से प्राचीन से प्राचीन सामग्री एव परम्पराओं का अन्वेषण कर प्रकाश मे लायें। यह ग्रन्थ भी इनकी इसी प्रवृत्ति का सुफल है।

सतों की एक दीर्घ परम्परा हमे मिलती है। इस परम्परा की विकास शृङ्खला को बताते हुए डा० राम खेलावन पाडे ने यह लिखा है—

"सत-साघनधारा सिद्धो–नाथो–निरजन–पथियो से प्राण पाती हुई, नामदेव, त्रिलोचन, पीपा और धन्ना से प्रेरणा लेती हुई कबीर, रैदास, नानक, दादू, सुन्दर, पलटू आदि अनेक सतो मे प्रकट हुई।"

इस परम्परा मे पारिभाषिक 'सत' सम्प्रदाय का उल्लेख है। इसमे हमें किसी जैन सत का उल्लेख नही मिलता।

पर डा० पाडे ने आगे जहा यह बताया है कि—

"कबीर मशूर में आद्याशक्ति और निरजन पर जीत की कथा विस्तार पूर्वक दी हुई है, अत सिद्ध होता है कि कुछ शाक्त और निरजन पथी कबीर-पथ में दीक्षित हुए।..

निरजन पथ का इतिहास यह सकेत देता है कि इसके विभिन्न दल क्रमशः गोरख-पथ, कबीर-पथ, दादू-पथ मे अन्तर्भूत होते रहे और सम्प्रदाय मे इसकी शाखाए भिन्न बनी रही। कबीर मशूर मे मूल निरजन पथ को कबीर पथ की बारह शाखाओ मे गिना गया है[२] यही पाद टिप्पणी स० ३ मे पाडे ने एक सार गर्भित सकेत किया है —

"निरजन का तिब्बती रूप (905 Pamed) नानक-निर्ग्रन्थ है। इसके आधार पर निरजन-पथ का सम्बन्ध जैन मतवाद से जोडा जा सकता है, काल

---

१ मध्यकालीन सत साहित्य—पृष्ठ–१७

२ वही पृ० ५७

कृत कारणो से जिसमे कई परिवर्तन हो गये।"—इस सकेत से अनुसधान की एक उपेक्षित दिशा का पता चलता है। यह बात तो प्राय: आज मानली गयी है कि जैन धर्म की परम्परा बौद्ध धर्म से प्राचीन है पर जहा बौद्ध धर्म की पृष्ठ भूमि का भारतीय साहित्य की दृष्टि से गभीर अध्ययन किया गया है वहा जैन धर्म की पृष्ठ भूमि पर उतना गहरा ध्यान नही दिया गया। यह सभव है कि 'निरजन' मे कोई जैन प्रभाव सन्निहित हो, और वह उसके तथा अन्य माध्यमो से 'सतमत' मे भी उतरा हो।

पर यथार्थ यह है कि जैन धर्म के योगदान को अध्ययन करने के साधन भी अभी कुछ समय पूर्व तक कम ही उपलब्ध थे। आज जो साहित्य प्रकाश मे आ रहा है, वह कुछ दिन पूर्व कहा उपलब्ध था। जैन भाण्डागारो मे जो अमूल्य ग्रन्थ सम्पत्ति भरी पडी है उसका किसे ज्ञान था। जैसलमेर के ग्र थागार का पता तो बहुत था पर कर्नल केमुल टाड को भी बडी कठिनाई से वह देखने को मिला था। नागौर का दूसरा प्रसिद्ध जैन ग्र थागार तो बहुत प्रयत्नो के उपरान्त भी टाड के उपयोग के लिए नही खोला जा सका था। पर आज कितने ही जैन भाण्डागारो की मुद्रित सूचिया उपलब्ध हैं। कई सस्थाए जैन साहित्य के प्रकाशन मे लगी हुई हैं। डा० कासलीवाल ने भी ऐसे ही कुछ अलभ्य और ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थो को प्रकाश मे लाने का शुभ प्रयत्न किया है। जैन भण्डारो की सूचिया, 'प्रद्युम्न चरित,' 'जिणदत्त चरित' आदि को प्रकाश मे लाकर उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास की अज्ञात कडियो को जोडने का-प्रयास किया है। जैन सतों का यह परिचयात्मक ग्रथ भी कुछ ऐसे ही महत्त्व का है।

डा० कासलीवाल ने बताया है कि 'सत' शब्द के कई अर्थ होते हैं। इसमे कोई सदेह नही कि 'सत' शब्द एक ओर तो एक विशिष्ट सप्रदाय के लिया आता है, जिसके प्रवर्तक कबीर माने जाते हैं। दूसरी ओर 'सत' शब्द मात्र गुणवाचक, और एक ऐसे व्यक्ति के लिए उपयोग मे आ सकता है जो सज्जन और साधु हो। तीसरे अर्थ मे 'सत' विशिष्ट धार्मिक अर्थ मे प्रत्येक सम्प्रदाय में ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियो के लिए आ सकता है, जो सासारिकता और इ द्रिय विषयो के राग से ऊपर उठ गये हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय एव धर्म मे ऐसे सत मिल सकते हैं। ये सत सदा जनता के श्रद्धा भाजन रहे हैं अत ये दिव्य लोकवार्ताओ के पात्र भी बन गये हैं। अ ग्रेजी शब्द Saint-सेन्ट सत का पर्यायवाची माना जा सकता है।

डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ में सवत् १४५० से १७५० तक के राजस्थान के जैन सतो पर प्रकाश डाला है। इस अभिप्राय से उन्होंने यह निरूपण किया है कि—"इन ३०० वर्षों मे भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एव सार्वसाधु के रूप मे

जनता द्वारा पूजित थे ये भट्टारक अपना आचरण श्रमण परम्परा के पूर्णतः अनुकूल रखते थे। ये अपने सघ के प्रमुख होते थे सघ मे मुनि, ब्रह्मचारी, आर्यिकाए भी रहा करती थी।' इन ३०० वर्षों मे इन भट्टारको के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधु का स्वतत्र अस्तित्व नही रहा''' इसलिए ये भट्टारक एव उनके शिष्य ब्रह्मचारी पद वाले सभी सत थे।''

इसी व्याख्या को ध्यान में रखकर हमें जैन सतो की परम्परा का अवगाहन करना अपेक्षित है। इन तीन सौ वर्षों मे जैन सतो की भी एक दीर्घ परम्परा के दर्शन हमे यहां होते हैं। जैन धर्म में एक स्थिर श्रेणी-व्यवस्था मे इन सतो का अपना एक स्थान विशेष है और वहा इनका श्रेणी नाम भी कुछ और है—इस ग्रन्थ के द्वारा डा० कासलीवाल ने एक बडा उपकार यह किया है कि उन विशिष्ट वर्गों को हिन्दी की दृष्टि से एक विशेष वर्ग मे लाकर नये रूप मे खडा कर दिया है—अब सतो का अध्ययन करते समय हमे जैन सतो पर भी दृष्टि डालनी होगी।

इसमे तो कोई सन्देह नही कि जैनदर्शन की शब्दावली अपना विशिष्ट रूप रखती है, फिर भी सत शब्द के सामान्य अर्थ के द्योतक लक्षण और गुण सभी सम्प्रदायों और देशो मे समान हैं, जैन सतो के काव्य मे जो अभिव्यक्ति हुई है, उससे इसकी पुष्टी ही होती है। अध्ययन और अनुसधान का पक्ष यह है कि 'सतत्व' का सामान्य रूप जैन सतो मे क्या है? और वह विशिष्ट पक्ष क्या है जिससे अभिमडित होने से वह 'सतत्व' जैन हो जाता है।

स्पष्ट है कि जैन सतो का कोई विशेष सम्प्रदाय उस रूप मे एक पृथक पथ नही है जिस प्रकार हिन्दी मे कबीर से प्रवर्तित सत पथ या सत सम्प्रदाय एक प्रथक अस्तित्व रखता है और फिर जितने सत सम्प्रदाय खडे हुए उन्होंने सभी ने 'कबीर' की परम्परा मे ही एक वैशिष्ट्य पैदा किया। फलत जैन सतो का कृतित्व एक विशिष्ट स्वतत्र तात्विक भूमि देगा। यों जैन धर्म मे भी कुछ अलग अलग पथ हैं, छोटे भी बडे भी, उनके सत भी हैं। उनके धर्मानुकूल इन सतो की रचनाओं में भी आतरिक वैशिष्ट्य मिलेगा। डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ मे केवल राजस्थान के ही जैन सतो का परिचय दिया है—यह ग्रन्थ क्षेत्रो के लिए भी प्रेरणा प्रद होगा। फलत डा० कासलीवाल का यह ग्रन्थ हिन्दी मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा, ऐसी मेरी धारणा है। मै डा० कासलीवाल के इस ग्रन्थ का हृदय से स्वागत करता हू।

जयपुर २८-६-६७ डा० सत्येन्द्र

प्रस्तावना

-●-

भारतीय इतिहास मे राजस्थान का महत्वपूर्ण स्थान है। एक ओर यहा की भूमि का कण कण वीरता एव शौर्य के लिये प्रसिद्ध रहा तो दूसरी ओर भारतीय साहित्य एव सस्कृति के गौरवस्थल भी यहा पर्याप्त सख्या मे मिलते हैं। यदि राजस्थान के वीर योद्धाओ ने जननी जन्म-भूमि की रक्षार्थ हसते हसते प्राणो को न्यौछावर किया तो यहा होने वाले आचार्यो, भट्टारको, मुनियो एव साधुओ तथा विद्वानो ने साहित्य की महती सेवा की और अपनी कृतियो एव काव्यो द्वारा जनता मे देशभक्ति, नैतिकता एव सास्कृतिक जागरूकता का प्रचार किया। यहा के रणथम्भोर, कुम्भलगढ, चित्तौड, भरतपुर, माडोर जैसे दुर्ग यदि वीरता देशभक्ति, एव त्याग के प्रतीक हैं तो जैसलमेर, नागौर, बीकानेर, अजमेर, आमेर, डूगरपुर, सागवाडा, जयपुर आदि कितने ही नगर राजस्थानी ग्रथकारो, सन्तो एव साहित्योपासको के पवित्र स्थल है जिन्होने अनेक सकटो एव झझावातो के मध्य भी साहित्य की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखा। वास्तव मे राजस्थान की भूमि पावन है तथा उसका प्रत्येक कण वन्दनीय है।

राजस्थान की इस पावन भूमि पर अनेको सन्त हुए जिन्होंने अपनी कृतियो के द्वारा भारतीय साहित्य की अजस्र धारा बहायी तथा अपने आध्यात्मिक प्रवचनो, गीतिकाव्यो एव मुक्तक छन्दो द्वारा देश मे जन जीवन के नैतिक धरातल को कभी गिरने नही दिया। राजस्थान मे ये सन्त विविध रूप मे हमारे सामने आये और विभिन्न धर्मों की मान्यता के अनुसार उनका स्वरूप भी एकसा नहीं रह सका।

'सन्त' शब्द के अब तक विभिन्न अर्थ लिये जाते रहे हैं वैसे सन्त शब्द का व्यवहार जितना गत २५, ३० वर्षो मे हुआ है उतना पहिले कभी नही हुआ। पहिले जिस साहित्य को भक्ति साहित्य एव अध्यात्म साहित्य के नाम से सम्बोधित किया जाता था उसे अब सन्त साहित्य मान लिया गया है। कबीर, मीरा, सूरदास तुलसीदास, दादूदयाल, सुन्दरदास आदि सभी भक्त कवियो का साहित्य सन्त के साहित्य की परिभाषा मे माना जाता है। स्वय कबीरदास ने सन्त शब्द की जो व्याख्या की है वह निम्न प्रकार है।

निरवैरी निहकामता सोई सेती नेह।
विषिया स्यू न्यारा रहे, सतनि को अङ्ग एह॥

अर्थात् प्राणि मात्र जिसका मित्र है, जो निष्काम है, विषयो से दूर रहने हैं वे ही सन्त हैं।

तुलसीदास जी ने सन्त शब्द की स्पष्ट व्याख्या नही करते हुए निम्न शब्दो मे सन्त और असन्त का भेद स्पष्ट किया है।

वन्दो सन्त असज्जन चरणा, दुख प्रद उभय बीच कछु वरणा।

हिन्दी के एक कवि विट्ठलदास ने सन्तो के बारे मे निम्न शब्द प्रयुक्त किये है।

सन्तनि को सिकरी किन काम।
आवत जात पहनिया टूटी विसरि गयो हरि नाम ॥

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने "उत्तर भारत की सन्त परम्परा" मे सन्त शब्द की विवेचना करते हुये लिखा है—"इस प्रकार सन्त शब्द का मौलिक अर्थ" शुद्ध अस्तित्व मात्र का ही बोधक है और इसका प्रयोग भी इसी कारण उस नित्य वस्तु का परमतत्व के लिये अपेक्षित होगा जिसका नाश कभी नही होता, जो सदा एक रस तथा अविकृत रूप मे विद्यमान रहा करता है और जिसे सन्त के नाम मे भी अभिहित किया जा सकता है। इस शब्द के "सत" रूप का ब्रह्म वा परमात्मा के लिये किया गया प्रयोग बहुधा वैदिक साहित्य मे भी पाया जाता है"।[1]

जैन साहित्य मे सन्त शब्द का बहुत कम उल्लेख हुआ है। साधु एव श्रमण आचार्य, मुनि, भट्टारक, यति आदि के प्रयोग की ही प्रधानता रही है। स्वय भगवान महावीर को महाश्रमण कहा गया है। साधुओ की यहा पाच श्रेणिया है जिन्हे पच परमेष्ठि कहा जाता है ये परमेष्ठी अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव सर्व-साधु हैं इनमें अर्हन्त एव सिद्ध सर्वोच्च परमेष्ठी हैं।

अर्हन्त सकल परमात्मा को कहते हैं। अर्हत्पद प्राप्त करने के लिये तीर्थकरत्व नाम कर्म का उदय होना अनिवार्य है। वे दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय एव अन्तराय इन चार कर्मों का नाश कर चुके होते हैं, तथा शेष चार कर्म वेदनीय, आयु, नाम, और गोत्र के नाश होने तक ससार मे जीवित रहते हैं। उनके समवशरण की रचना होती है और वही उनकी दिव्य ध्वनि [प्रवचन] खिरती है।

सिद्ध मुक्तात्मा को कहते हैं। वे पूरे आठ कर्मों का क्षय कर चुके होते हैं। मोक्ष मे विराजमान जीव सिद्ध कहलाते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने सिद्ध परमेष्ठी का निम्न स्वरूप लिखा है।

---

१ देखिये 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' पृष्ठ सख्या ४

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे ।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वदिमो णिच्च ॥

सिद्ध निराकार होते हैं। उनके औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण, शरीर के इन पाच भेदो मे से उनके कोई सा भी शरीर नही होता। योगीन्द्र ने इन्हे निष्कल कहा है। अर्हन्त एव सिद्ध दोनो ही सर्वोच्च परमेष्ठी हैं इन्हे महा सन्त भी कहा जा सकता है।

आचार्य उपाध्याय एव सर्वसाधु शेष परमेष्ठी है। सर्वसाधु वे है जो आचार्य समन्तभद्र की निम्न व्याख्या के अन्तर्गत आते हैं।

विषयाशावशातीतो निरारम्भो परिग्रह ।
ज्ञानध्यानतपोरक्त- तपस्वी स प्रशस्यते ॥

जो चिरकाल मे जिन दीक्षा मे प्रवृत्त हो चुके हैं तथा २८ मूल गुणो[1] का पालन करने वाले हैं।

वे साधु उपाध्याय[2] कहलाते हैं जिनके पास मोक्षार्थी जाकर शास्त्राध्ययन करते हो तथा जो सघ में शिक्षक का कार्य करते हो। लेकिन वही साधु उपाध्याय बन सकता है जिसने साधु के चरित्र को पूर्ण रूप से पालन किया हो।

तिलोपण्णत्ति मे उपाध्याय का निम्न लक्षण लिखा है।

अण्णाण घोरतिमिरे दुरंततीरह्मि हिडमाणाण ।
भवियाणुज्जोययरा उवज्झया वरमदि देंतु ।

---

१ हिंसा अनृत तस्करी अब्रह्म परिग्रह पाप ।
मन वच तन तै त्यागवो, पच महाव्रत थाप ॥
ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपन आदान ।
प्रतिष्ठापनायुत क्रिया, पाचों समिति विधान ॥
सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रोध ।
षट आवशि भजन तजन, शयन भूमि को शोध ॥
वस्त्र त्याग कचलोच अरू, लघु भोजन इक बार ।
दातन मुख मे ना करें, ठाडे लेहिं आहार ॥

२ चौदह पूरव को धरे, ग्यारह अङ्ग सुजान ।
उपाध्याय पच्चीस गुण पढ़ै पढावै ज्ञान ॥

इसी तरह आचार्य नेमिचन्द्र ने द्रव्य सग्रह में उपाध्याय मे पाये जाने वाले निम्न गुणों को गिनाया है।

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्च धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥

आचार्य वे साधु कहलाते हैं जो सघ के प्रमुख हैं। जो स्वय व्रतो का आचरण करते है और दूसरो से करवाते है वे ही आचार्य कहलाते है। वे ३६ मूलगुणो[3] के धारी होते हैं। समन्तभद्र, भट्टाकलक, पात्रकेशरी, प्रभाचन्द्र, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र आदि सभी आचार्य थे।

इस प्रकार आचार्य, उपाध्याय एव सर्वसाधु ये तीनो ही मानव को सुमार्ग पर ले जाने वाले हैं। अपने प्रवचनो से उसमें वे जागृति पैदा करते है जिससे वह अपने जीवन का अच्छी तरह विकास कर सके। वे साहित्य निर्माण करते हैं और जनता से उसके अनुसार चलने का आग्रह करते हैं। सम्पूर्ण जैन वाड्मय आचार्यों द्वारा निर्मित है।

प्रस्तुत पुस्तक में सवत् १४५० से १७५० तक होने वाले राजस्थान के जैन सन्तो का जीवन एव उनके साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। इन ३०० वर्षो मे भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एव सर्वसाधु के रूप में जनता द्वारा पूजित थे। ये भट्टारक प्रारम्भ मे नग्न होते थे। भट्टारक सकलकीर्त्ति को 'निर्ग्रन्थराजा' कहा गया है। भ० सोमकीर्त्ति अपने आपको भट्टारक के स्थान पर आचार्य लिखना अधिक पसन्द करते थे। भट्टारक शुभचन्द्र को यतियो का राजा कहा जाता था। भ० वीरचन्द महाव्रतियो के नायक थे। उन्होने १६ वर्ष तक नीरस आहार का सेवन किया था। आवा (राजस्थान) मे भ० शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एव प्रभाचन्द्र की जो निषेधिकायें हैं वे तीनो ही नग्नावस्था की ही हैं। इस प्रकार ये भट्टारक अपना आचरण श्रमण परम्परा के पूर्णत. अनुकूल रखते थे। ये अपने सघ के प्रमुख होते थे। तथा उसकी देख रेख का सारा भार इन पर ही रहता था। इनके सघ मे मुनि, ब्रह्मचारी, आर्यिका भी रहा करती थी। प्रतिष्ठा–महोत्सवों के सचालन मे इनका प्रमुख हाथ होता था। इन ३०० वर्षो मे इन भट्टारको के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधु का स्वतत्र व्यक्तित्व नहीं रहा और न उसने कोई समाज को दिशा निर्देशन का ही काम किया। इसलिये ये भट्टारक एव उनके शिष्य ब्रह्मचारी पद वाले सभी सन्त थे। मडलाचार्य गुणचन्द्र के सघ मे ९ आचार्य, १ मुनि, २ ब्रह्मचारी एव १२ आर्यिकाए थी।

---

३ द्वादश तप दश धर्मजुत पालें पञ्चाचार।
षट आवश्यक गुप्ति त्रय अचारज पद सार ॥

जैन साहित्य मे सन्त शब्द का अधिक प्रयोग नही हुआ है। योगोन्दु ने सर्व प्रथम सन्त शब्द का निम्न प्रकार प्रयोग किया है।

णिच्चु णिरजणु णाणमउ परमाणद सहाउ।
जो एहउ सो सन्तु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१।६७॥

यहा सन्त शब्द साधु के लिये ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि लौकिक दृष्टि से हम एक गृहस्थ को जिसकी प्रवृत्तिया जगत से अलिप्त रहने की होती है, तथा जो अपने जीवन को लोकहित की दृष्टि से चलाता है तथा जिसकी गति-विधियो से किसी अन्य प्राणी को भी कष्ट नही होता, सन्त कहा जा सकता है लेकिन सन्त शब्द का शुद्ध स्वरूप हमे साधुओ मे ही देखने को मिलता है जिनका जीवन ही परहितमय है तथा जो जगत के प्राणियो को अपने पावन जीवन द्वारा सन्मार्ग की ओर लगाते हैं। भट्टारक भी इसीलिये सन्त कहे जाते हैं कि उनका जीवन ही राष्ट्र को आध्यात्मिक खुराक देने के लिये समर्पित हो चुका होता है तथा वे देश को साहित्यिक, सास्कृतिक एव बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न बनाते है। वे स्थान स्थान पर विहार करके जन मानस को पावन बनाते है। ये सन्त चाहे भट्टारक वेश मे हो या फिर ब्रह्मचारी के वेश में। ब्रह्म जिनदास केवल ब्रह्मचारी थे लेकिन उनका जीवन का चिन्तन एव मनन अत्यधिक उत्कर्षमय था।

भारतीय सस्कृति, साहित्य के प्रचार एव प्रसार मे इन सन्तो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। जिस प्रकार हम कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, नानक आदि को सतो के नाम से पुकारते हैं उसी दृष्टि से ये भट्टारक एव उनके शिष्य भी सन्त थे और उनसे भी अधिक उनके जीवन की यह विशेषता थी कि वे घर गृहस्थी को छोडकर आत्म विकास के साथ साथ जगत के प्राणियो को भी हित का ध्यान रखते थे। उन्हे अपने शरीर की जरा भी चिन्ता नही थी। उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। वे प्रशसा-निंदा, लाभ-अलाभ, तृण एव कचन मे समान थे। वे अपने जीवन मे सासारिक पदार्थों से न स्नेह रखते थे और न लोभ तथा आसक्ति। उनके जीवन मे विकार, पाप, भय एव आशा, लालसा भी नही होती थी।

ये भट्टारक पूर्णत सयमी होते थे। भ० विजयकीर्त्ति के सयम को डिगाने के लिये कामदेव ने भी भारी प्रयत्न किये लेकिन अन्त मे उसे ही हार माननी पडी। विजयकीर्त्ति अपने सयम की परीक्षा मे सफल हुए। इनका आहार एव विहार पूर्णतः श्रमण परम्परा के अन्तर्गत होता था। १५, १६ वी शताब्दी तो इनके उत्कर्ष की शताब्दी थी। मुगल बादशाहो तक ने उनके चरित्र एव विद्वत्ता की प्रशसा की थी। उन्हे देश के सभी स्थानो मे एव सभी धर्मावलम्बियो से अत्यधिक सम्मान मिलता

था। बाद मे तो वे जैनो के आध्यात्मिक राजा कहलाने लगे किन्तु यही उनके पतन का प्रारम्भिक कदम था।

जैन सन्तो ने भारतीय साहित्य को अमूल्य कृतिया भेंट की है। उन्होंने सदैव ही लोक भाषा में साहित्य निर्माण किया। प्राकृत, अपभ्रंश एव हिन्दी भाषाओ मे रचनायें इनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न इन्होने ८ वी शताब्दी से पूर्व ही लेना प्रारम्भ कर दिया था। मुनि रामसिंह का दोहा पाहुड हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य कृति है जिसकी तुलना में भाषा साहित्य की बहुत कम कृतियां आ सकेंगी। महाकवि तुलसीदास जी को तो १७ वी शताब्दी मे भी हिन्दी भाषा मे रामचरित मानस लिखने मे झिझक हो रही थी किन्तु इन जैन सन्तो ने उनके ८०० वर्ष पहिले ही साहस के साथ प्राचीन हिन्दी में रचनायें लिखना प्रारम्भ कर दिया था।

जैन सन्तो ने साहित्य के विभिन्न अगो को पल्लवित किया। वे केवल चरित काव्यो के निर्माण मे ही नही उलझे किन्तु पुराण, काव्य, वेलि, रास, पचासिका, शतक, पच्चीसी, बावनी, विवाहलो, आख्यान आदि काव्य के पचासो रुपो को इन्होने अपना समर्थन दिया और उनमे अपनी रचनायें निर्मित करके उन्हें पल्लवित होने का सुअवसर दिया। यही कारण है कि काव्य के विभिन्न अगो मे इन सन्तो द्वारा निर्मित रचनायें अच्छी सख्या मे मिलती हैं।

आध्यात्मिक एव उपदेशी रचनायें लिखना इन सन्तो को सदा ही प्रिय रहा है। अपने अनुभव के आधार पर जगत की दशा का जो सुन्दर चित्रण इन्होने अपनी कृतियो मे किया है वह प्रत्येक मानव को सत्पथ पर ले जाने वाला है। इन्होने मानव से जगत से भागने के लिये नही कहा किन्तु उसमे रहते हुए ही अपने जीवन को सुमुन्नत बनाने का उपदेश दिया। शान्त एव आध्यात्मिक रस के अतिरिक्त इन्होने वीर, शृगार, एव अन्य रसो मे भी खूब साहित्य सृजन किया।

महाकवि वीर द्वारा रचित 'जम्बूस्वामीचरित' (१०७६) एव भ० रतनकीर्त्ति द्वारा वीरविलासफाग इसी कोटि की रचनायें हैं। रसो के अतिरिक्त छन्दो मे जितनी विविधताऐ इन सन्तो की रचनाओ मे मिलती हैं उतनी अन्यत्र नही। इन सन्तो की हिन्दी, राजस्थानी, एव गुजराती भाषा की रचनायें विविध छन्दो से आप्लावित हैं।

लेखक का विश्वास है कि भारतीय साहित्य की जितनी अधिक सेवा एव सुरक्षा इन जैन सन्तो ने की है उतनी अधिक सेवा किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म के साधु वर्ग द्वारा नही हो सकी है। राजस्थान के इन सन्तो ने स्वय ने तो विविध

भाषाओ मे सैकडो हजारो कृतियो का सृजन किया ही किन्तु अपने पूर्ववर्ती आचार्यो, साधुओ, कवियो एव लेखको की रचनाओ का भी बडे प्रेम, श्रद्धा एव उत्साह से सग्रह किया। एक एक ग्रन्थ की कितनी ही प्रतिया लिखवा कर ग्रन्थ भण्डारो मे विराजमान की और जनता को उन्हे पढने एव स्वाध्याय के लिये प्रोत्साहित किया। राजस्थान के आज सैकडो हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार उनकी साहित्यिक सेवा के ज्वलत उदाहरण हैं। जैन सन्त साहित्य सग्रह की दृष्टि से कभी जातिवाद एव सम्प्रदाय के चक्कर मे नही पडे किन्तु जहा से उन्हे अच्छा एव कल्याणकारी साहित्य उपलब्ध हुआ वही से उसका सग्रह करके शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत किया गया। साहित्य सग्रह की दृष्टि से इन्होने स्थान स्थान पर ग्रथ भण्डार स्थापित किये। इन्ही सन्तो की साहित्यिक सेवा के परिणाम स्वरूप राजस्थान के जैन ग्रथ भण्डारों मे १ लाख से अधिक हस्तलिखित ग्रथ अब भी उपलब्ध होते हैं।[1] ग्रंथ सग्रह के अतिरिक्त इन्होने जैनेतर विद्वानो द्वारा लिखित काव्यो एव अन्य ग्रथो पर टीका लिख कर उनके पठन पाठन मे सहायता पहुचायी। राजस्थान के जैन ग्रथ भण्डारो मे अकेले जैसलमेर के ही ऐसे ग्रथ सग्रहालय हैं जिनकी तुलना भारत के किसी भी प्राचीनतम एव बडे से बडे ग्रथ सग्रहालय से की जा सकती है। उनमे सग्रहीत अधिकांश प्रतिया ताडपत्र पर लिखी हुई है और वे सभी राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति हैं।

श्वेताम्बर साधु श्री जिनचन्द्र सूरि ने सवत् १४९७ मे वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना करके साहित्य की सैकडो अमूल्य निधियो को नष्ट होने से बचा लिया। अकेले जैसलमेर के इन भण्डारो को देखकर कर्नल टाड, डा० वूहलर, डा० जैकोवी जैसे पाश्चात्य विद्वान एवं भाण्डारकर, दलाल जैसे भारतीय विद्वान आश्चर्य चकित रह गये थे उन्होने अपनी दातो तले अगुली दवा ली। यदि ये पाश्चात्य एव भारतीय विद्वान् नागौर, अजमेर, आमेर एव जयपुर के शास्त्र भण्डारो को देख लेते तो सभवत वे इनकी साहित्यिक धरोहर को देखकर नाच उठते और फिर जैन साहित्य एव जैन सतो की सेवाओ पर न जाने कितनी श्रद्धाजलिया अर्पित करते। कितने ही ग्रथ सग्रहालय तो अब तो ऐसे हो सकते हैं जिनकी किसी भी विद्वान् द्वारा छानवीन नही की गई हो। लेखक को राजस्थान के ग्रथ भण्डारो पर शोध निवन्ध लिखने एव श्री महावीर क्षेत्र द्वारा राजस्थान के शास्त्र भडारो की ग्रथ सूची बनाने के अवसर पर १०० से भी अधिक भण्डारो को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। यदि मुसलिम युग मे धर्मान्ध शासको द्वारा इन शास्त्र भडारो का विनाश नही किया जाता एव हमारी लापरवाही से सैकडो हजारो ग्रथ चूहो, दीमक एव सीलन

---

१. ग्रथ भण्डारों का विस्तृत परिचय के लिये लेखक की "जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान" पुस्तक देखिये।

से नष्ट नही होते तो पता नही आज कितनी अधिक सख्या मे इन भडारो मे ग्र थ उपलब्ध होते। फिर भी जो कुछ अवशिष्ट है वे ही इन सन्तो की साहित्यिक निष्ठा को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त हैं।

प्रस्तुत पुस्तक मे राजस्थान की भूमि को सम्वत् १४५० से १७५० तक पावन करने वाले सन्तो का परिचय दिया गया है। लेकिन इस प्रदेश मे तो प्राचीन-तम काल से ही सन्त होते रहे हैं जिन्होने अपनी सेवाओ द्वारा इस प्रदेश की जनता को जाग्रत किया है। (डा० ज्योतिप्रसाद जी[1] के अनुसार "दिगम्बराम्नाय सम्मत षट् खडगमादि मूल आगमो की सर्व प्रसिद्ध एव सर्वाधिक महत्वपूर्ण धवल, जयधवल, महाधवल नाम की विशाल टीकाओ के रचयिता प्रातः स्मरणीय स्वामी वीरसेन को जन्म देने का सौभाग्य भी राजस्थान की भूमि को ही प्राप्त है। ये आचार्य प्रवर श्री वीरसेन भट्टारक की सम्मानित पदवी के धारक थे। इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार से पता चलता है कि आगम सिद्धान्त के तत्वज्ञ श्री एलाचार्य चित्रकूट (चित्तौड) मे विराजते थे और उन्ही के चरणो के सानिध्य इन्होने सिद्धान्तादि का अध्ययन किया था।")

(जम्बूद्वीपपण्णत्ति के रचयिता आ० पद्मनन्दि राजस्थानी सन्त थे। प्रज्ञप्ति मे २३९८ प्राकृत गाथाओ मे तीन लोको का वर्णन किया गया है। प्रज्ञप्ति की रचना बारा (कोटा) नगर में हुई थी। इसका रचनाकाल सवत् ८०५ है। उन दिनो मेवाड पर राजा शक्ति या सत्ति का शासन था और बारा नगर मेवाड के अधीन था। ग्र थकार ने अपने आपको वीरनन्दि का प्रशिष्य एव बलनन्दि के शिष्य लिखा है। १० वी शताब्दी मे होने वाले हरिभद्र सूरि राजस्थान के दूसरे सन्त थे जो प्राकृत एव सस्कृत भाषा के जबरदस्त विद्वान् थे। इनका सम्बन्ध चित्तौड से था। आगम ग्र थो पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होने अनुयोगद्वार सूत्र, आव-श्यक सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र, प्रज्ञापना सूत्र आदि आगम ग्र थो पर सस्कृत मे विस्तृत टीकाऐ लिखी और उनके स्वाध्याय मे वृद्धि की। न्याय शास्त्र के ये प्रकाण्ड विद्वान् थे इसीलिये इन्होने अनेकान्त जयपताका, अनेकान्तवादप्रवेश जैसे दार्शनिक ग्र थों की रचना की। समराइच्चकहा प्राकृत भाषा की सुन्दर कथाकृति है जो इन्ही के द्वारा गद्य पद्य दोनो मे लिखी हुई है। इसमे ९ प्रकरण हैं जिनमें परस्पर विरोधी दो पुरुषो के साथ साथ चलने वाले ९ जन्मान्तरों का वर्णन किया गया है। इसका प्राकृतिक वर्णन एव भाषा चित्रण दोनो ही सुन्दर है। धूर्ताख्यान भी इनकी अच्छी रचना है। हरिभद्र के 'योगबिन्दु' एव 'योगदृष्टि' समुच्चय भी दर्शन शास्त्र की अच्छी रचनायें मानी जाती है।)

---

१ देखिये वीरवाणी का राजस्थान जैन साहित्य सेवी विशेषाक पृष्ठ स० ९

महेश्वरसूरि भी राजस्थानी श्वे सन्त थे । इनकी प्राकृत भाषा की 'ज्ञान पचमी कहा' तथा अपभ्रंश की 'सयममजरी कहा' प्रसिद्ध रचनायें है । दोनो ही कृतियो मे कितनी ही सुन्दर कथाएँ हैं जो जैन दृष्टिकोण से लिखी गई हैं ।

सवत् १७५० के पश्चात् इन सन्तो का साहित्य निर्माण की ओर ध्यान कम होता गया और ये अपना अधिकाश समय प्रतिष्ठा महोत्सवो के आयोजन में, विधि विधान तथा व्रतोद्यापन सम्पन्न कराने मे लगाने लगे । इनके अतिरिक्त ये बाह्य क्रियाओ के पालन करने मे इतने अधिक जोर देने लगे कि जन साधारण का इनके प्रति भक्ति, श्रद्धा एव आदर का भाव कम होने लगा । इन सन्तो की आमेर, अजमेर, नागौर, डूगरपुर, ऋषभदेव आदि स्थानो मे गादिया अवश्य थी और एक के पश्चात् दूसरे भट्टारक भी होते रहे लेकिन जो प्रभाव भ० सकलकीर्त्ति, जिनचन्द्र, शुभचन्द्र आदि का कभी रहा था उसे ये सन्त रख नही सके । १८ वी एव १९ वीं शताब्दी मे श्रावक समाज मे विद्वानो की जो बाढ सी आयी थी और जिसका नेतृत्व महापडित टोडरमल जी ने किया था उससे भी इन भटारको के प्रभाव मे कमी होती गई क्योकि इन दो शताब्दी में होने वाले प्राय सभी विद्वान् इन भट्टारको के विरुद्ध थे । दिगम्बर समाज मे "तेरहपथ" के नाम से जिस नये पथ ने जन्म लिया था वह भी इन सन्तो द्वारा समर्थित बाह्याचार के विरूद्ध था लेकिन इन सब विरोधो के होने पर भी दिगम्बर समाज मे सन्तो के रूप मे भट्टारक परम्परा चलती रही । यद्यपि इन सन्तो ने साहित्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान नही दिया लेकिन प्राचीन साहित्य की जो कुछ सुरक्षा हो सकी है उसमे इनका प्रमुख हाथ रहा । नागौर, अजमेर, आमेर एव जयपुर के भण्डारो मे जिस विशाल साहित्य का सग्रह है वह सब इन सन्तो द्वारा की गई साहित्य सुरक्षा का ही तो सुफल है इसलिये किसी भी दृष्टि से इनकी सेवाओ को भुलाया नही जा सकता ।

आमेर गादी से सम्बन्धित भ० देवेन्द्रकीर्त्ति, महेन्द्रकीर्त्ति, क्षेमेन्द्रकीर्त्ति, सुरेन्द्र-कीर्त्ति एव नरेन्द्रकीर्त्ति, नागौर गादी पर होने वाले भ० रत्नकीर्त्ति (स० १७४५) एव विजयकीर्त्ति (१८०२) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । भ० विजयकीर्त्ति अपने समय के अच्छे विद्वान् थे और अब तक उनकी कितनी ही कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं इनमें कर्णामृतपुराण, श्रेणिकचरित, जम्बूस्वामीचरित आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं ।

साहित्य सुरक्षा के अतिरिक्त इन सन्तो ने प्राचीन मन्दिरो के जीर्णोद्वार एव नवीन मन्दिरो के निर्माण मे विशेष योग दिया । १८ वी एव १९ वी शताब्दी मे सैकडो बिम्बप्रतिष्ठायें सम्पन्न हुई और इन्होने उनमे विशेष रूप से भाग लेकर

थे। सवत् १७४६ में चादखेडी मे भारी प्रतिष्ठा हुई थी उसका वर्णन एक पट्टावली में दिया हुआ है जिससे पता चलता है कि समाज के एक वर्ग के विरोध के उपरात भी ऐसे समारोहो मे इन्हे ही विशेष अतिथि बनाकर आमन्त्रित किया जाता था। जोबनेर (सवत् १७५१) बासखो (सवत् १७८३) मारोठ (स० १७९४) बून्दी (स० १७८१) सवाई माधोपुर (स० १८२६) अजमेर (स० १८५२) जयपुर (स० १८६१ एव १८६७) आदि स्थानों मे जो सास्कृतिक प्रतिष्ठा आयोजन सम्पन्न हुए थे उन सबमे इन सन्तो का विशेष हाथ था।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में

जैन सन्तो पर एक पुस्तक तैयार करने का पर्याप्त समय से विचार चल रहा था क्योंकि जब कभी सन्त साहित्य पर प्रकाशित होने वाली पुस्तक देखने मे आती और उसमे जैन सन्तों के बारे मे कोई भी उल्लेख नहीं देख कर हिन्दी विद्वानो के इनके साहित्य की उपेक्षा से दु ख भी होता किन्तु साथ मे यह भी सोचता कि जब तक उनको कोई सामग्री ही उपलब्ध नही होती तब तक यह उपेक्षा इसी प्रकार चलती रहेगी। इसलिए सर्व प्रथम राजस्थान के जैन सन्तो के जीवन एव उनकी साहित्य सेवा पर लिखने का निश्चय किया गया। किन्तु प्राचीनकाल से ही होने वाले इन सन्तो का एक ही पुस्तक मे परिचय दिया जाना सम्भव नही था इसलिए सवत् १४५० से १७५० तक का समय ही अधिक उपयुक्त समझा गया क्योकि यही समय इन सन्तो (भट्टारको) का स्वर्ण काल रहा था इन ३०० वर्षो मे जो प्रभावना, त्याग एव साहित्य सेवा की धुन इन सन्तो की रही वह सबको आश्चर्यान्वित करने वाली है।

पुस्तक मे ५४ जैन सन्तो के जीवन, व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रकाश डाला है। इनमे कुछ सन्तो का तो पाठको को समवत प्रथम बार परिचय प्राप्त होगा। इन सन्तो ने अपने जीवन विकास के साथ साथ जन जागृति के लिए किस किस प्रकार के साहित्य का निर्माण किया वह सब पुस्तक में प्रयुक्त सामग्री से भली प्रकार जाना जा सकता है। वास्तव मे ये सच्चे अर्थो में सन्त थे। अपने स्वय के जीवन को पवित्र करने के पश्चात् उन्होंने जगत को उसी मार्ग पर चलने का उपदेश दिया था। वे सच्चे अर्थ मे साहित्य एव धर्म प्रचारक थे। उन्होने भक्ति काव्यो की ही रचना नही की किन्तु भक्ति के अतिरिक्त अध्यात्म, सदाचरण एव महापुरुषो के जीवन के आधार पर भी कृतिया लिखने और उनके पठन पाठन का प्रचार किया। वे कभी एक स्थान पर जम कर नही रहे किन्तु देश के विभिन्न ग्राम नगरो में विहार करके जन जागृति का शखनाद फू का। पुस्तक के अन्त में कुछ लघु रचनायें एव कुछ रचनाओ के प्रमुख स्थलो को अविकल रूप से दिया गया है। जिससे विद्वान् एव पाठक इन रचनाओ का सहज भाव से आनन्द ले सकें।

आभार

सर्व प्रथम मैं वर्त्तमान जैन सन्त पूज्य मुनि श्री विद्यानन्दि जी महाराज का अत्यधिक आभारी हू जिन्होने पुस्तक पर आशीर्वाद के रूप मे अपना अभिमत लिखने की कृपा की है।

यह कृति श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के साहित्य शोध विभाग का प्रकाशन है इसके लिये मैं क्षेत्र प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी माननीय सदस्यो तथा विशेषत समापति डा० राजमलजी कासलीवाल एव मत्री श्री गैंदीलालजी साह एडवोकेट का आभारी हू जिनके सद् प्रयत्नो से क्षेत्र की ओर से प्राचीन साहित्य के खोज एव उसके प्रकाशन जैसा महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित हो रहा है। वास्तव मे क्षेत्र कमेटी ने समाज को इस दिशा मे अपना नेतृत्व प्रदान किया है। पुस्तक की भूमिका आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय ने लिखने की महती कृपा की है। डाक्टर साहब का मुझे काफी समय से पर्याप्त स्नेह एव साहित्यिक कार्यों मे निर्देशन मिलता रहता है इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हू। मैं मेरे सहयोगी श्री अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का भी पूर्ण आभारी हू जिन्होंने पुस्तक को तैयार करने मे अपना पूर्ण सहयोग दिया है। मैं श्री प्रेमचन्द रावका का भी आभारी हू जिन्होने इसकी अनुक्रमणिकायें तैयार की हैं।

दिनाक १-६-६७ डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

* विषय सूची *

कतिपय लघु कृतियां एवं उद्धरण

शताब्दि क्रमानुसार सन्तों की नामावलि

— ॐ —

१५ वीं शताब्दि

नाम	संवत्
भट्टारक सकलकीर्त्ति	१४४३—१४९९
ब्रह्म जिनदास	१४४५—१५१५
मुनि महनन्दि	
महोपाध्याय जयसागर	१४५०—१५१०
हीरानन्द सूरि	१४८४

१६ वीं शताब्दि

नाम	संवत्
भट्टारक भुवनकीर्त्ति	१५०८
भट्टारक जिनचन्द्र	१५०७
आचार्य सोमकीर्त्ति	१५२६—४०
भट्टारक ज्ञानभूषण	१५३१—६०
ब्रह्म बूचराज	१५३०—१६००
आचार्य जिनसेन	१५५८
भट्टारक प्रभाचन्द्र	१५७१
ब्रह्म गुणकीर्त्ति	—
भट्टारक विजयकीर्त्ति	१५५२—१५७०
संत कवि यशोधर	१५२०—९०
मुनि सुन्दरसूरि	१५०१
ब्रह्म जीवधर	—
ब्रह्म धर्म रुचि	—

विद्याभूषण	१६००
वाचक मतिशेखर	१५१८
वाचक विनयसमुद्र	१५३८
भट्टारक शुभचन्द्र (प्रथम)	१५४०—१६१३

१७ वीं शताब्दि

ब्रह्म जयसागर	१५८०—१६५५
वीरचन्द्र	—
सुमतिकीर्ति	१६२०
ब्रह्म रायमल्ल	१६१८—१६३६
भट्टारक रत्नकीर्ति	१६४३—१६५६
भट्टारक कुमुदचन्द्र	१६५६
अभयचन्द्र	१६४०
आचार्य चन्द्रकीर्ति	१६००—१६६०
भट्टारक अभयनन्दि	१६३०
ब्रह्म जयराज	१६३२
सुमतिसागर	१६००—१६६५
ब्रह्म गणेश	—
संयमसागर	—
त्रिभुवनकीर्ति	१६०६
भट्टारक रत्नचन्द्र (प्रथम)	१६७६
ब्रह्म अजित	१६४६
आचार्य नरेन्द्रकीर्ति	१६४६
कल्याणकीर्ति	१६९२
भट्टारक महीचन्द्र	—
ब्रह्म कपूरचन्द	१६९७
हर्षकीर्ति	—
भट्टारक सकलभूषण	१६२७

मुनि राजचन्द्र	१६८४
ज्ञानकीर्त्ति	१६५६
महोपाध्याय समयसुन्दर	१६२०—१७००

१८ वीं शताब्दि

भट्टारक शुभचन्द्र (द्वितीय)	१७४५
ब्रह्म धर्मसागर	—
विद्यासागर	—
भट्टारक रत्नचन्द्र (द्वितीय)	१७५७
भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति	१६९१—१७२२
भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति	१७२२
भट्टारक जगत्कीर्त्ति	१७३३

—: §·§ ::—

भट्टारक सकलकीर्त्ति

'भट्टारक सकलकीर्ति' १५ वी शताब्दी के प्रमुख जैन सन्त थे। राजस्थान एव गुजरात मे 'जैन साहित्य एव सस्कृति' का जो जबरदस्त प्रचार एव प्रसार हो सका था—उसमे इनका प्रमुख योगदान था। इन्होंने सस्कृत एव प्राकृत साहित्य को नष्ट होने से बचाया और देश में उसके प्रति एक अद्‌भुत आकर्षण पैदा किया। उनके हृदय में आत्म साधना के साथ साथ साहित्य-सेवा की उत्कट अभिलाषा थी इसलिए युवावस्था के प्रारम्भ मे ही जगत के वैभव को ठुकरा कर सन्यास धारण कर लिया। पहिले इन्होने अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त किया और फिर बीसो नव निर्मित रचनाओ के द्वारा समाज एवं देश को एक नया ज्ञान प्रकाश दिया। वे जब तक जीवित रहे, तब तक देश मे और विशेषत वागड प्रदेश एव गुजरात के कुछ भागों मे साहित्यिक एव सास्कृतिक जागरण का शखनाद फूकते रहे।

'सकलकीर्त्ति' अनोखे सन्त थे। अपने धर्म के प्रति उनमे गहरी आस्था थी। जब उन्होंने लोगो मे फैले अज्ञानान्धकार को देखा तो उनसे चुप नही रहा गया और जीवन पर्यन्त देश मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करके तत्कालीन समाज मे एक नव जागरण का सूत्रपात किया। स्थान स्थान पर उन्होंने ग्रथ सग्रहालय स्थापित किए जिनमे उनके शिष्य एव प्रशिष्य साहित्य लेखन एव प्रचार का कार्य करते रहते थे। उन्होने अपने शिष्यो को साहित्य-निर्माण की ओर प्रेरित किया। वे महान् व्यक्तित्व के धनी थे। जहा भी उनका विहार होता वही एक अनाखा दृश्य उपस्थित हो जाता था। साहित्य एव सस्कृति की रक्षा के लिए लोगो की की टोलिया बन जाती और उन के साथ रहकर इनका प्रचार किया करती।

जीवन परिचय

'सन्त सकलकीर्त्ति' का जन्म सवत् १४४३ (सन् १३८६) मे हुआ था।[1] डा० प्रेमसागर जी ने 'हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि' मे सकलकीर्त्ति का सवत् १४४४ मे ईडर गद्दी पर बैठने का जो उल्लेख किया है वह सकलकीर्त्ति रास के अनुसार सही प्रतीत नही होता। इनके पिता का नाम करमसिह एव माता का नाम शोभा था। ये अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले थे। इनकी जाति

---

१ हरषो सुणीय सुवाणि पालइ अन्य ऊअरि सुपर।
चोऊद त्रिताल प्रमाणि पूरइ दिन पुत्र जनमीउ॥

हू बड थी[1] । होनहार विरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार गर्भाधारण के पश्चात् इनकी माता ने एक सुन्दर स्वप्न देखा और उसका फल पूछने पर कारमसिंह ने इस प्रकार कहा—

"तजि वयण सुणिसार, सार कुमर तुम्ह होइसिइए।
निर्मल गगानीर, चदन नदन तुम्ह तणुए ॥६॥
जलनिधि गहिर गभीर खीरोपम सोहा मणुए।
ते जिहि तरण प्रकाश जग उद्योतन जन किरणि ॥१०॥

बालक का नाम 'पूनसिंह' अथवा 'पूर्णसिंह' रखा गया। एक पट्टावलि मे इनका नाम 'पदर्थ' भी दिया हुआ है। द्वितीया के चन्द्रमा के समान वह बालक दिन प्रति दिन बढने लगा। उसका वर्ण राजहस के समान शुभ्र था तथा शरीर बत्तीस लक्षणो से युक्त था। पाच वर्ष के होने पर पूर्णसिंह को पढने बैठा दिया गया। बालक कुशाग्र बुद्धि का था इसलिए शीघ्र ही उसने सभी ग्रन्थो का अध्ययन कर लिया। विद्यार्थी अवस्था मे भी इनका अर्हद् भक्ति की ओर अधिक ध्यान रहता था तथा क्षमा, सत्य, शौच एव ब्रह्मचर्य आदि धर्मो को जीवन में उतारने का प्रयास करते रहते थे। गार्हस्थ्य जीवन के प्रति विरक्ति देखकर माता-पिता ने उनका १४ वर्ष की अवस्था मे ही विवाह कर दिया लेकिन विवाह बधन मे बाधने के पश्चात् भी उनका मन ससार मे नही लगा और वे उदासीन रहने लगे। पुत्र की गति-विधिया देखकर माता-पिता ने उन्हे बहुत समझाया और कहा कि उनके पास जो अपार सम्पत्ति है, महल-मकान है, नौकर-चाकर हैं, उसके वैराग्य धारण करने के पश्चात्—वह किस काम आवेगा ? यौवनावस्था सासरिक सुखो के भोग के लिए होती है। सयम का तो पीछे भी पालन किया जा सकता है। पुत्र एव माता-पिता के मध्य बहुत दिनो तक वाद-विवाद चलता रहा।[2] वे उन्हे साधु-जीवन की

---

१ न्याति माहि मुहुतवत हूंबड हरषि वखाणिइए।
करमसिंह वितपन्न उदयवत इम जाणीइए ॥ ३ ॥
शोभित तरस अरधांगि, मूलि सरीस्य सु दरीय ।
सील स्यगारित अङ्गि पेखु प्रत्यक्षे पुरदरीय ॥ ४ ॥
—सकलकीर्त्तिरास

२ देखवि चचल चित्त मात पिता कहि वछ सुणि ।
अह्म मदिर बहु -वित्त आविसिइ कारण कवण ॥ २० ॥
लहुआ लीलावत सुख भोगवि ससार तणाए।
पछइ दिवस बहूत अछिइ सयम तप तणाए ॥ २१ ॥
—सकलकीर्त्तिरास

कठिनाइयो की ओर सकेत करते तथा कभी कभी अपनी वृद्धावस्था का भी रोना-रोते लेकिन पूर्णसिंह के कुछ समझ मे नही आता और वे वारवार साधु-जीवन धारण करने की उनसे स्वीकृति मागते रहते ।[1]

अन्त मे पुत्र की विजय हुई और पूर्णसिंह ने २६ वें वर्ष मे अपार सम्पत्ति को तिलाञ्जलि देकर साधु-जीवन अपना लिया । वे आत्मकल्याण के साथ साथ जगत्कल्याण की ओर चल पडे । 'भट्टारक सकलकीर्त्ति नु रास' के अनुसार उनकी इस समय केवल १८ वर्ष की आयु थी । उस समय भ० पद्मनन्दि का मुख्य केन्द्र नैणवा (राजस्थान) था और वे आगम ग्रन्थो के पारगामी विद्वान माने जाते थे इसलिए ये भी नैणवा चले गये और उनके शिष्य वन कर अध्ययन करने लगे । यह उनके साधु जीवन की प्रथम पद यात्रा थी । वहा ये आठ वर्ष रहे और प्राकृत एवं सस्कृत के गन्थो का गम्भीर अध्ययन किया, उनके मर्म को ममझा और भविष्य मे सत्-साहित्य का प्रचार-प्रसार ही अपना एक उद्देश्य वना लिया । ३४ वे वर्ष मे उन्होने आचार्य पदवी ग्रहण की और अपना नाम मकलकीर्त्ति रख लिया ।

नैणवा से पुन वागड प्रदेश मे आने के पश्चात ये सर्व प्रथम जन-सावारण मे साहित्यिक चेतना जाग्रत करने के निमित्त स्थान स्थान पर विहार करने लगे । एक वार वे खोडण नगर आये और नगर के वाहर उद्यान मे ध्यान लगाकर बैठ गए । उधर नगर से आई हुई एक श्राविका ने जब नग्न साधु को ध्यानस्थ बैठे देखा तो घर जा कर उसने अपनी सास से जिन शब्दो मे निवेदन किया--उमका एक पट्टावलि मे निम्न प्रकार वर्णन मिलता है —

"एक श्राविका पाणी गया हता तो पाणी भरीने ते मारग आव्या ने श्राविका स्वामी सामो जो ही रहवा तेने मन मे विचार कर्यो ते मारी सासुजी वात कहेता इता तो वा साधु दीसे छे, ते श्राविका उतावेलि जाई ने पोनी सासुजी ने वात कही जी । सासूजी एक वात कहू ते साचलो जी ' ते सासू कही सु कहे छे वहू । सासूजी एक साधु जीनो प्रसाद छे तेहा साधूजी बैठा छै जी ते कने एक काठ का बर तन छे जी । एक मोरना पीछीका छे जी तथा साधु बैठा छा जी ! तारे सासू ये मन मे वीचार करिने रह्या नी । अहो वहु ! रिषि मुनि आव्या हो से ।

---

१ वयरण तजि सुरणेवि, पून पिता प्रति इम कहिए ।
निज मन सुविस करेवि, धीग्ने तरण तप गहए ॥ २२ ॥
ज्योवन गिइ गमार, पछइ पालइ सीयल घणा ।
ते कहु कवण विचार विण अवसर जे वरसीयिए ॥ २३ ॥
सकलकीर्त्तिरास

एवो कहिने सासू उठी। ते पछे साधुजी ने पासे ग्राव्याजी। ते त्रीण प्रदक्षीणा देने वेठा मुनि उलख्या मन मे हरख्या ते पछे नमोस्तु नमोस्तु करिने श्री गुरुवन्दना भक्ति की घी। पछे श्री स्वामीजी ने मनव्रत लीघो हतो ते तो पोताना पुन्य थकी श्रावीका ग्राली श्री स्वामी जी घर्मवृघी दीघी।"

विहार 'सकलकीर्त्ति' का वास्तविक साधु जीवन सवत् १४७७ से प्रारम्भ होकर सवत् १४९९ तक रहा। इन २२ वर्षो मे इन्होंने मुख्य रूप से राजस्थान के उदयपुर, डूगरपुर, वासवाडा, प्रतापगढ़ ग्रादि राज्यो एव गुजरात प्रान्त के राजस्थान के समीपस्थ प्रदेशो मे खूब विहार किया। उस समय जन साघारण के जीवन मे धर्म के प्रति काफी शिथिलता ग्रागई थी। साधु सतो के विहार का ग्रभाव था। जन-साधारण की न तो स्वाध्याय के प्रति रुचि रही थी ग्रौर न उन्हें सरल भाषा मे साहित्य ही उपलब्ध होता था। इसलिए सर्व प्रथम सकलकीर्त्ति ने उन प्रदेशो मे विहार किया ग्रौर सारी समाज को एक सूत्र मे बाघने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से उन्होने कितनी ही यात्रा–सघो का नेतृत्व किया। सर्व प्रथम 'सघपति सीह' के साथ गिरिनार यात्रा आरम्भ की। फिर वे चपानेर की ग्रोर यात्रा करने निकले। वहा से आने के पश्चात् हूवड जातीय रतना के साथ मागीतुगी की यात्रा को प्रस्थान किया। इसके पश्चात् उन्होने ग्रन्य तीर्थों की वन्दना की। जिससे राजस्थान एव गुजरात मे एक चेतना की लहर दौड गयी।

प्रतिष्ठाग्रों का ग्रायोजन

तीर्थयात्राग्रो के समाप्त होने के पश्चात् 'सकलकीर्त्ति' ने नव मन्दिर निर्माण एव प्रतिष्ठायें करवाने का कार्य हाथ मे लिया। उन्होने ग्रपने जीवन मे १४ विम्ब प्रतिष्ठाग्रो का सञ्चालन किया। इस कार्य मे योग देने वालो मे सघपति नरपाल एव उनकी पत्नी वहुरानी का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। गलियाकोट मे सघपति मूलराज ने इन्ही के उपदेश से चतुर्विशति जिन विम्ब की स्थापना की थी। नागद्रह जाति के श्रावक सघपति ठाकुरसिंह ने भी कितनी ही विम्ब प्रतिष्ठाग्रो मे योग दिया। ग्राबू नगर मे उन्होने एक प्रतिष्ठा महोत्सव का सञ्चालन किया था जिसमे तीन चौवीसी की एक विशाल प्रतिमा परिकर सहित स्थापित की गई।[1]

सन्त सकलकीर्त्ति द्वारा सवत् १४९०, १४९२, १४९७ ग्रादि सवतो मे प्रतिष्ठापित मूर्त्तिया उदयपुर, डूगरपुर एव सागवाडा ग्रादि स्थानो के जैन मन्दिर मे मिलती है। प्रतिष्ठा महोत्सवो के इन आयोजनो से तत्कालीन समाज मे जन-जाग्रति की जो भावना उत्पन्न हुई थी, उसने उन प्रदेशो मे जैन धर्म एव सस्कृति को जीवित रखने मे ग्रपना पूरा योग दिया।

---

१ पवर प्रासाद ग्राब्बू सहिरे त स परिकरि जिनवर त्रिणी चउवीस।
त स कीघो प्रतिष्ठा तेह तणोए, गुरि मेलवि चउविध संध्य सरीस॥

व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य :

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होने जिन २ परम्पराओ की नीव रखी, उनका वाद मे खूब विकास हुआ। अध्ययन गभीर था—इसलिए कोई भी विद्वान् इनके सामने नही टिक सकता था। प्राकृत एव सस्कृत भाषाओ पर इनका समान अधिकार था। ब्रह्म जिनदास एव भ० भुवनकीर्ति जैसे विद्वानो का इनका शिष्य होना ही इनके प्रवल पाण्डित्य का सूचक है। इनकी वाणी मे जादू था इसलिए जहा भी इनका विहार हो जाता था–वही इनके सैकडो भक्त वन जाते थे। ये स्वय तो योग्यतम विद्वान थे ही, किन्तु इन्होने अपने शिष्यो को भी अपने ही समान विद्वान् वनाया। ब्रह्म जिनदास ने अपने जम्बू स्वामी चरित्र[1] मे इनको महाकवि, निर्ग्रन्थ राजा एव शुद्ध चरित्रधारी[1] तथा हरिवश पुराण[2] मे तपोनिधि एव निर्ग्रन्थ श्रेष्ठ आदि उपाधियो से सम्वोधित किया है।

भट्टारक सकलभूषण ने अपने उपदेश रत्नमाला की प्रशस्ति मे कहा है कि सकलकीर्त्ति जन–जन का चित्त स्वत ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। ये पुण्य मूर्तिस्वरूप थे तथा पुराण ग्रन्थो के रचयिता थे।[3]

इसी तरह भट्टारक शुभचन्द्र ने 'सकलकीर्ति' को पुराण एव काव्यो का प्रसिद्ध नेता कहा है। इनके अतिरिक्त इनके वाद होने वाले प्राय सभी भट्टारक सन्तो ने सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एव विद्वता की भारी प्रशसा की है। ये भट्टारक थे किन्तु मुनि नाम से भी अपने–आपको सम्वोधित करते थे। 'वन्यकुमार चरित्र' ग्रन्थ को पुष्पिका में इन्होने अपने–आपका 'मुनि सकलकीर्ति' नाम से परिचय दिया है।

ये स्वय रहते भी नग्न अवस्था मे ही थे और इसीलिए ये निर्ग्रन्थकार अथवा 'निर्ग्रन्थराज' के नाम से भी अपने शिष्यो द्वारा सम्वोधित किये गए हैं। इन्होने वागड प्रदेश मे जहा भट्टारको का कोई प्रभाव नही था–सवत् १४९२ मे गलियाकोट

---

१ ततो भवत्तस्य जगत्प्रसिद्धे पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्त्ति ।
महाकवि शुद्धचरित्रधारी निर्ग्रन्थराजा जगति प्रतापी ॥
जम्बूस्वामीचरित्र

२ तत्पट्टपकेजविकासभास्वान् वभूव निर्ग्रन्थवर. प्रतापी ।
महाकवित्वादिकलाप्रवीण तपोनिधि. श्री सकलादिकीर्त्ति ॥
हरिवश पुराण

३ तत्पट्टधारी जनचित्तहारी पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी ।
भट्टारकश्रीसकलादिकीर्त्ति' प्रसिद्धनामा जनि पुण्यमूर्त्ति ॥२१६॥
—उपदेश रत्नमाला सकलभूषण

मे एक भट्टारक गादी की स्थापना की और अपने-आपको सरस्वती गच्छ एव बलात्कारगण की परम्परा मे भट्टारक घोषित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी थे तथा अपने जीवन मे इन्होने कितने ही व्रतो का पालन किया था।

सकलकीर्त्ति ने जनता को जो कुछ चारित्र सम्बन्धी उपदेश दिया, पहिले उसे अपने जीवन मे उतारा। २२ वर्ष के एक छोटे से समय मे ३५ से अधिक ग्रन्थो की रचना, विविध ग्रामो एव नगरो मे विहार, भारत के राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश आदि प्रदेशो के तीर्थों की पद यात्रा एव विविध व्रतो का पालन केवल सकलकीर्त्ति जैसे महा विद्वान् एव प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले साधु से ही सम्पन्न हो सकते थे। इस प्रकार ये श्रद्धा ज्ञान एव चारित्र से विभूषित उत्कृष्ट एव आकर्षक व्यक्तित्व वाले साधु थे।

शिष्य-परम्परा

भट्टारक सकलकीर्त्ति के कुल कितने शिष्य थे इसका कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन एक पट्टावली के अनुसार इनके स्वर्गवास के पश्चात् इनके शिष्य धर्मकीर्त्ति ने नोतनपुर मे भट्टारक गद्दी स्थापित की। फिर विमलेन्द्र कीर्त्ति भट्टारक हुये और १२ वर्ष तक इस पद पर रहे। इनके पश्चात् आँतरी गाव मे सब श्रावको ने मिलकर सघवी सोमरास श्रावक को भट्टारक दीक्षा दी तथा उनका नाम भुवनकीर्त्ति रखा गया। लेकिन अन्य पट्टावलियो मे एव इस परम्परा होने वाले सन्तो के ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे भुवनकीर्त्ति के अतिरिक्त और किसी भट्टारक का उल्लेख नही मिलता। स्वय भ भुवनकीर्त्ति, ब्रह्म जिनदास, ज्ञानभूषण, शुभचद आदि सभी सन्तो ने भुवनकीर्त्ति को ही इनका प्रमुख शिष्य होना माना है। यह हो सकता है कि भुवनकीर्त्ति ने अपने आपको सकलकीर्त्ति से सीधा सम्बन्ध बतलाने के लिये उक्त दोनो सन्तो के नामो के उल्लेख करने की परम्परा को नही डालना चाहा हो। भुवनकीर्त्ति के अतिरिक्त सकलकीर्त्ति के प्रमुख शिष्यो मे ब्रह्म जिनदास का नाम उल्लेखनीय है जो सघ क सभी महाव्रती एव ब्रह्मचारियो के प्रमुख थे। ये भी अपने गुरू के समान ही सस्कृत एव राजस्थानी के प्रचड विद्वान थे और साहित्य मे विशेष रुचि रखते थे। 'सकलकीर्त्तिनुरास' मे भुवनकीर्त्ति एव ब्रह्म जिनदास के अतिरिक्त ललितकीर्त्ति के नाम का और उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त उनके सघ मे आर्यिका एव क्षुल्लिकायें थी ऐसा भी लिखा है।[1]

---

१ आदि शिष्य आचारिजहि गुरि दीखीया भूतलि भुवनकीर्त्ति।
जयवन्त श्री जगतगुरु गुरि दीखीया ललितकीर्त्ति ।।
महाव्रती ब्रह्मचारी घणा जिणदास गोलागार प्रमुख अपार।
अजिका क्षुल्लिका सयलसघ गुरु सोभित सहित सकल परिवार ।।

मृत्यु

एक पट्टावलि के अनुसार भ सकलकीर्त्ति ५६ वर्ष तक जीवित रहे। सवत् १४९९ मे महसाना नगर मे उनका स्वर्गवास हुआ। प० परमानन्दजी शास्त्री ने भी 'प्रशस्ति सग्रह' मे इनकी मृत्यु सवत् १४९९ मे महसाना (गुजरात) मे होना लिखा है। डा० ज्योतिप्रसाद जैन एव डा० प्रेमसागर भी इसी सवत् को सही मानते हैं। लेकिन डा० ज्योतिप्रसाद इनका पूरा जीवन ८१ वर्ष का स्वीकार करते हैं जो अब लेखक को प्राप्त विभिन्न पट्टावलियो के अनुसार वह सही नही जान पडता। 'सकल-कीर्त्तिरास' मे उनकी विस्तृत जीवन गाथा है। उसमे स्पष्ट रूप से सवत १४४३ को जन्म सवत् माना गया है।

सवत् १४७१ से प्रारम्भ एक पट्टावलि मे भ सकलकीर्त्ति को भ पद्मनन्दि का चतुर्थ शिष्य माना गया है और उनके जीवन के सम्बन्ध मे निम्न प्रकाश डाला गया है—

१ ४ चोथो चेलो आचार्य श्री सकलकीर्त्ति वर्ष २६ छवीसमी ताहा श्री पदर्थ पाटणनाहता तीणी दीक्षा लीधी गाव श्री नीणवा मध्ये। पछे गुरु कने वर्ष ३४ चोतीस थया।

× × × ×

२ पछे वर्ष ५६ छपनीसाणे स्वर्गे पोतासाहो ते वारे पुठी स्वामी सकलकीर्ति ने पाटे धर्मकीर्त्ति स्वामी नोतनपुर सधे थाप्पा।

३ एहवा धर्म करणी करावता वागडराय ने देस कु भलगढ नव सहस्त्र मध्य सघली देसी प्रदेसी व्याहार कर्म करता धर्मपदेस देता नवा ग्रन्थ सुध करता वर्ष २२ व्याहार कर्म करिने धर्म सघली प्रवर्तया।

उक्त तथ्यो के आधार पर यह निर्णय सही है कि भ सकलकीर्त्ति का जन्म सवत १४४३ मे हुआ था।

श्री विद्याधर जोहरापुरकर ने 'भट्टारक सम्प्रदाय' मे सकलकीर्त्ति का समय सवत् १४५० से सवत् १५१० तक का दिया है। उन्होने यह समय किस आधार पर दिया है इसका कोई उल्लेख नही किया। इसलिये सकलकीर्त्ति का समय सवत् १४४३ से १४९९ तक का ही सही जान पडता है।

तत्कालीन सामाजिक अवस्था

भ० सकलकीर्त्ति के समय देश की सामाजिक स्थिति अच्छी नही थी। समाज मे सामाजिक एव धार्मिक चेतना का अभाव था। शिक्षा की बहुत कमी थी।

साधुओं का अभाव था। भट्टारकों के नग्न रहने की प्रथा थी। स्वयं भट्टारक सकलकीर्ति भी नग्न रहते थे। लोगों में धार्मिक श्रद्धा बहुत थी। तीर्थयात्रा बड़े २ संघों में होती थी। उनका नेतृत्व करने वाले साधु होते थे। तीर्थ यात्राएं बहुत लम्बी होती थी तथा वहां से सकुशल लौटने पर बड़े २ उत्सव एवं समारोह किये जाते थे। भट्टारकों ने पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं एवं अन्य धार्मिक समारोह करने की अच्छी प्रथा डाल दी थी। इनके संघ में मुनि, आर्यिका, श्रावक आदि सभी होते थे। साधुओं में ज्ञान प्राप्ति की काफी अभिलाषा होती थी तथा संघ के सभी साधुओं को पढ़ाया जाता था। ग्रन्थ रचना करने का भी खूब प्रचार हो गया था। भट्टारक गण भी खूब ग्रन्थ रचना करते थे। वे प्राय. अपने ग्रन्थ श्रावकों के आग्रह से निबद्ध करते रहते थे। व्रत उपवास की समाप्ति पर श्रावकों द्वारा इन ग्रन्थों की प्रतियां विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों को भेंट स्वरूप दी जाती थी। भट्टारकों के साथ हस्तलिखित ग्रन्थों के बस्ते के बस्ते होते थे। समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी और न उनके पढ़ने लिखने का साधन था। व्रतोद्यापन पर उनके आग्रह से ग्रन्थों की स्वाध्यायार्थ प्रतिलिपि करवाई जाती थी और उन्हें साधु सन्तों को पढ़ने के लिए दे दिया जाता था।

साहित्य सेवा

साहित्य सेवा में सकलकीर्ति का जबरदस्त योग रहा। कभी २ तो ऐसा मालूम होने लगता है जैसे उन्होंने अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग किया हो। संस्कृत, प्राकृत एव राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। वे सहज रूप मे ही काव्य रचना करते थे इसलिये उनके मुख से जो भी वाक्य निकलता था वही काव्य रूप मे परिवर्तित हो जाता था। साहित्य रचना की परम्परा सकलकीर्ति ने ऐसी डाली कि राजस्थान के बागड एव गुजरात प्रदेश मे होने वाले अनेक साधु सन्तो ने साहित्य की खूब सेवा की तथा स्वाध्याय के प्रति जन साधारण की भावना को जाग्रत किया। इन्होंने अपने अन्तिम २२ वर्ष के जीवन मे २७ से अधिक सस्कृत रचनाये एव ८ राजस्थानी रचनायें निबद्ध की थी। 'सकलकीर्त्तिनु रास' मे इनकी मुख्य २ रचनाओ के जो नाम गिनाये है वे निम्नप्रकार हैं—

> चारि नियोग रचना करीय, गुरु कवित तणु हवि सुणहु विचार।
> १ यती आचार २ श्रावकाचार ३ पुराण ४ आगमसार कवित अपार॥
> ५ आदिपुराण ६. उत्तरपुराण ७ शाति ८ पास ९ वर्द्धमान
> १०. मलि चरित्र।
> आदि ११ यशोधर १२ धन्यकुमार १३ सुकुमाल १४. सुदर्शन चरित्र
> पवित्र॥

१५. पचपरमेष्ठी गध कुटीय १६ अष्टानिका १७ गणधर भेय ।
१८. सोलहकारण पूजा विधि गुरिए सवि प्रगट प्रकासिया तेय ॥
१९ सुक्तिमुक्तावलि २० कमविपाक गुरि रचीय डाईण-परि
विविधशास्त्र ग्र
भरह सगीत पिंगल निपुण गुरु गुरउ श्री सकलकीर्त्ति निग्रंथ ॥

लेकिन राजस्थान मे ग्र थ भडारो की जो अभी खोज हुई है उनमे हमे अभी-तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो सकी है ।

संस्कृत की रचनायें

१ मूलाचारप्रदीप
२ प्रश्नोत्तरोपासकाचार
३ आदिपुराण
४ उत्तरपुराण
५ शातिनाथ चरित्र
६ वर्द्धमान चरित्र
६ मल्लिनाथ चरित्र
८ यशोधर चरित्र
९ धन्यकुमार चरित्र
१० सुकुमाल चरित्र
११ सुदर्शन चरित्र
१२ सद्भाषितावलि
१३ पार्श्वनाथ चरित्र
१४ सिद्धान्तसार दीपक
१५ व्रतकथाकोश
१६ नेमिजिन चरित्र
१७ कर्मविपाक
१८ तत्वार्थसार दीपक
१९ आगमसार
२० परमात्मराज स्तोत्र
२१ पुराण सग्रह
२२ सारचतुर्विशतिका
२३ श्रीपाल चरित्र
२४ जम्बूस्वामी चरित्र
२५ द्वादशानुप्रेक्षा

पूजा ग्रंथ

२६. अष्टाह्निकापूजा
२७. सोलहकारणपूजा
२८. गणधरवलयपूजा

राजस्थानी कृतियां

१. आराधना प्रतिबोधसार
२. नेमीश्वर गीत
३. मुक्तावलि गीत
४. णमोकारफल गीत
५. सोलह कारण रास
६. सारसीखामणिरास
७ शान्तिनाथ फागु

उक्त कृतियों के अतिरिक्त अभी और भी रचनाए हो सकती हैं जिनका अभी खोज होना बाकी है। भ० सकलकीर्त्ति की सस्कृत भाषा के समान राजस्थानी भाषा मे भी कोई बडी रचना मिलनी चाहिए, क्योंकि इनके प्रमुख शिष्य ब्र० जिनदास ने इन्ही की प्रेरणा एव उपदेश से राजस्थानी भाषा मे ५० से भी अधिक रचनाएँ निबद्ध की थी। अकेले इन्ही के साहित्य पर एक शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है। अब यहा भ० सकलकीर्त्ति द्वारा विरचित कुछ ग्रन्थो का परिचय दिया जा रहा है।

१ आदिपुराण—इस पुराण मे भगवान आदिनाथ, भरत, बाहुबलि, सुलोचना, जयकीर्त्ति आदि महापुरुषो के जीवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुराण सर्गो मे विभक्त है और इसमे २० सर्ग हैं। पुराण की श्लोक स० ४६२८ श्लोक प्रमाण हैं। वर्णन शैली सुन्दर एव सरस है। रचना का दूसरा नाम 'वृषभ नाथ चरित्र भी है।

२. उत्तरपुराण—इसमे २३ तीर्थकरो के जीवन का वर्णन है एव साथ मे चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि शलाका—महापुरुषो के जीवन का भी वर्णन है। इसमे १५ अधिकार हैं। उत्तर पुराण, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

३ कर्मविपाक—यह कृति सस्कृत गद्य मे है। इसमे आठ कर्मो के तथा उनके १४८ भेदो का वर्णन है। प्रकृतिबध, प्रदेशबध, स्थितिबध एव अनुभाग बध

की अपेक्षा से कर्मों के बंधका वर्णन है। वर्णन सुन्दर एव बोधगम्य है। यह ग्रन्थ ५४७ श्लोक सख्या प्रमाण है रचना अभीतक अप्रकाशित है।

४ तत्वार्थसार दीपक—सकलकीर्त्ति ने अपनी इस कृति को अध्यात्म महाग्रन्थ कहा है। जीव, अजीव, आस्रव, वन्ध सवर, निर्जरा तथा मोक्ष इन सात तत्वो का वर्णन १२ अध्यायो मे निम्न प्रकार विभक्त है।

प्रथम सात अध्याय तक जीव एव उसकी विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन है शेष ८ से १२ वें अध्याय मे अजीव, आस्रव, वन्ध सवर, निर्जरा, मोक्ष का क्रमश वर्णन है। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है।

५ धन्यकुमार चरित्र—यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमे सेठ धन्यकुमार के पावन जीवन का यशोगान किया गया है। पूरी कथा सात अधिकारो मे समाप्त होती है। धन्यकुमार का सम्पूर्ण जीवन अनेक कुतुहलो एव विशेषताओ से ओतप्रोत है। एक वार कथा प्रारम्भ करने के पश्चात् पूरी पढे विना उसे छोडने को मन नही कहता। भाषा सरल एव सुन्दर है।

६ नेमिजिन चरित्र—नेमिजिन चरित्र का दूसरा नाम हरिवशपुराण भी है। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे जिन्होंने कृष्ण युग मे अवतार लिया था। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे। अहिंसा मे दृढ विश्वास होने के कारण तोरण द्वार पर पहुँचकर एक स्थान पर एकत्रित जीवो को वध के लिये लाया हुआ जानकर विवाह के स्थान पर दीक्षा ग्रहण करली थी तथा राजुल जैसी अनुपम सुन्दर राजकुमारी को त्यागने मे जरा भी विचार नही किया। इस प्रकार इसमें भगवान नेमिनाथ एव श्री कृष्ण के जीवन एव उनके पूर्व भवो मे वर्णन हैं। कृति की भाषा काव्यमय एव प्रवाहयुक्त है। इसकी सवत् १५७१ मे लिखित एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सग्रहीत है।

७ मल्लिनाथ चरित्र—२० वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के जीवन पर यह एक छोटा सा प्रवन्ध काव्य है जिसमे ७ सर्ग हैं

८ पार्श्वनाथ चरित्र—इसमे २३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। यह एक २३ सर्ग वाला सुन्दर काव्य है। मगलाचरण, के पश्चात् कुन्दकुन्द, अकलक, समतभद्र, जिनसेन आदि आचार्यों को स्मरण किया गया है।

वायुभूति एव मरुभूति ये दोनो सगे भाई थे लेकिन शुभ एव अशुभ कर्मों के चक्कर से प्रत्येक भव मे एक का किस तरह उत्थान होता रहता है और दूसरे का घोर पतन—इस कथा को इस काव्य मे अति सुन्दर रीति से वर्णन किया गया है। वायुभूति अन्त मे पार्श्वनाथ वनकर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं तथा जगद्पूज्य बन जाते हैं। भाषा सीधी, सरल एव अलकारमयी है।

९. सुदर्शन चरित्र—इस प्रबन्ध काव्य मे सेठ सुदर्शन के जीवन का वर्णन किया गया है जो आठ परिच्छेदो मे पूर्ण होता है। काव्य की भाषा सुन्दर एव प्रभावयुक्त है।

१०. सुकुमाल चरित्र—यह एक छोटा सा प्रबन्ध काव्य है जिसमे मुनि सकुमाल के जीवन का पूर्व भव सहित वर्णन किया गया है। पूर्व भव मे हुआ वैर भाव किस प्रकार अगले जीवन मे भी चलता रहता है इसका वर्णन इस काव्य मे सुन्दर रीति से हुआ है। इसमे सुकुमाल के वैभवपूर्ण जीवन एव मुनि अवस्था की घोर तपस्या का अति सुन्दर एव रोमान्चकारी वर्णन मिलता है। पूरे काव्य मे ९ सर्ग है।

११ मूलाचार प्रदीप—यह आचारशास्त्र का ग्रन्थ है जिसमे जैन साधु के जीवन मे कौन २ सी क्रियाओ की साधना आवश्यक है-इन क्रियाओ का स्वरूप एव उनके भेद प्रभेदो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसमे १२ अधिकार हैं जिनमे २८ मूलगुण,[1] पचाचार,[2] दशलक्षणधर्म,[3] बारह अनुप्रेक्षा[4] एव बारह तप[5] आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

१२ सिद्धान्तसार दीपक—यह करणानुयोग का ग्रन्थ है-इसमे उर्द्ध लोक, मध्यलोक एव पाताल लोक एव उनमे रहने वाले देवो मनुष्यो और तिर्यचो और नारकियो का विस्तृत वर्णन है। इसमे जैन सिद्धान्तानुसार सारे विश्व का भूगोलिक एव खगोलिक वर्णन आ जाता है। इसका रचना काल स० १४८१ है रचना स्थान है—बडाली नगर। प्रेरक थे इसके ब्र० जिनदास।

---

२८ मूलगुण--पच महाव्रत, पचसमिति, तीन गुप्ति, पचेन्द्रिय निरोध, षटावश्यक, केशलोच, अचेलक, अस्नान, दतअधोवन।

पचाचार—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप एवं वीर्य।

दशलक्षण धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिचन्य एव ब्रह्मचर्य।

बारह अनुप्रेक्षा—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधदुर्लभ एव धर्म।

बारह तप—अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान।

जैन-सिद्धान्त की जानकारी के लिए यह बडा उपयोगी है। ग्रन्थ १६ सर्गों मे है।

१३ वर्द्धमान चरित्र—इस काव्य मे अन्तिम तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान के पावन जीवन का वर्णन किया गया है। प्रथम ६ सर्गों मे महावीर के पूर्व भवों का एव शेष १३ अधिकारो मे गर्भ कल्याणक से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक विभिन्न लोकोत्तर घटनाओ का विस्तृत वर्णन मिलता है। भाषा सरल किन्तु काव्य मय है। वर्णन शैली अच्छी है। कवि जिस किसी वर्णन को जब प्रारम्भ करता है तो वह फिर उसी मे मस्त हो जाता है। रचना सभवत अभी तक अप्रकाशित है।

१४ यशोघर चरित्र—राजा यशोधर का जीवन जैन समाज मे बहुत प्रिय रहा है। इसलिये इस पर विभिन्न भाषाओ मे कितनी ही कृतिया मिलती हैं। सकल कीर्त्ति की यह कृति सस्कृत भाषा की सुन्दर रचना है। इसमे आठ सर्ग हैं। इसे हम एक प्रबन्ध काव्य कह सकते है।

१५ सद्भाषितावलि—यह एक छोटासा सुभाषित ग्रन्थ है जिसमे धर्म, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, इन्द्रियजय, स्त्री सहवास, कामसेवन, निर्ग्रन्थ सेवा, तप, त्याग, राग, द्वेष, लोभ, आदि विभिन्न विषयो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। भाषा सरल एव मधुर है। पद्यो की सख्या ३८९ है। यहा उदाहरणार्थ तीन पद दिये जा रहे हैं—

सर्वेषु जीवेषु दया कुरुत्वं, सत्य वचो ब्रूहि धन परेषा।
चाब्रह्मसेवा त्यज सर्वकाल, परिग्रह मु च कुयोनिबीज॥

× × × ×

यमदमशमजात सर्वकल्याणबीज।
सुगति–गमन–हेतु तीर्थनाथै प्रणीत।

भवजलनिधिपोत सारपाथेयमुच्चै–
स्त्यज सकलविकार धर्म आराधयत्व॥

(३) माया करोति यो मूढ इन्द्रयादिकसेवन।
गुप्तपाप स्वय तस्य व्यक्त भवति कुष्ठवत॥

१६ श्रीपाल चरित्र—यह सकलकीर्त्ति का एक काव्य ग्रन्थ है जिसमे ७ परिच्छेद हैं। कोटोभट श्रीपाल का जीवन अनेक विशेषताओ से भरा पडा है। राजा से कुष्टी होना, समुद्र मे गिरना, सूली पर चढना आदि कितनी ही घटनाए उसके जीवन मे एक के बाद दूसरी आती हैं जिससे उनका सारा जीवन नाटकीय

वन जाता है। सकलकीर्त्ति ने इसे वडे सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया है। इस चरित्र की रचना कर्मफल सिद्धान्त को पुरुपार्थ से अधिक विश्वसनीय सिद्ध करने के लिये की गई है। मानव का ही क्या विश्व के सभी जीवधारियो का सारा व्यवहार उसके द्वारा उपार्जित पाप पुण्य पर आधारित है। उसके सामने पुरुपार्थ कुछ भी नही कर सकता। काव्य पठनीय है।

१७ शान्तिनाथ चरित्र—शान्तिनाथ १६ वें तीर्थंकर थे। तीर्थंकर के साथ २ वे कामदेव एव चक्रवर्ती भी थे। उनके जीवन की विशेपताए वतलाने के लिये इस काव्य की रचना की गयी है। काव्य मे १६ अधिकार हैं तथा ३४७५ श्लोक सख्या प्रमाण है। इस काव्य को महाकाव्य की सज्ञा मिल सकती है। भापा अलकारिक एव वर्णन प्रभावमय है। प्रारम्भ मे कवि ने शृगार-रस से ओत प्रोत काव्य की रचना क्यो नही करनी चाहिए—इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। काव्य सुन्दर एव पठनीय है।

१८ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार—इस कृति मे श्रावको के आचार-धर्म का वर्णन है। श्रावकाचार २४ परिच्छेदो मे विभक्त है, जिसमे आचार शास्त्र पर विस्तृत विवेचन किया गया है। भट्टारक सकलकीर्त्ति स्वय मुनि भी थे–इसलिए उनसे श्रद्धालु भक्त आचार-धर्म के विपय मे विभिन्न प्रश्न प्रस्तुत करते होगे–इसलिए उन सबके समाधान के लिए कवि ने इस ग्रन्थ निर्माण ही किया गया। भापा एव शैली की दृष्टि से रचना सुन्दर एव सुरक्षित है। कृति मे रचनाकाल एव रचनास्थान नही दिया गया है।

१९. पुराणसार सग्रह'—प्रस्तुत पुराण सग्रह मे ६ तीर्थकरो के चरित्रो का सग्रह है और ये तीर्थंकर हैं–आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एव महावीर–वर्द्धमान। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से 'पुराणसार सग्रह' प्रकाशित हो चुका है। प्रत्येक तीर्थंकर का चरित अलग २ सर्गों मे विभक्त है जो निम्न प्रकार हैं

आदिनाथ चरित	५ सर्ग
चन्द्रप्रभ चरित	१ सर्ग
शान्तिनाथ चरित	६ सर्ग
नेमिनाथ चरित	५ सर्ग
पार्श्वनाथ चरित	५ सर्ग
महावीर चरित	५ सर्ग

२०. व्रतकथाकोष'—'व्रतकथाकोष' की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इसमे विभिन्न व्रतो पर आधारित

कथाओ का सग्रह है। ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध नही होने से अभी तक यह निश्चित नही हो सका कि भट्टारक सकलकीर्ति ने कितनी व्रत कथाए लिखी थी।

२१. परमात्मराज स्तोत्र —यह एक लघु स्तोत्र है, जिसमें १६ पद्य हैं। स्तोत्र सुन्दर एव भावपूर्ण है। इसकी एक प्रति जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है।

उक्त सस्कृत कृतियो के अतिरिक्त पञ्चपरमेष्ठिपूजा, अष्टाह्निका पूजा, सोलहकारणपूजा, गणधरवलय पूजा, द्वादशानुप्रेक्षा एव सारचतुर्विशतिका आदि और कृतिया हैं जो राजस्थान के शास्त्र-भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं। ये सभी कृतिया जैन समाज मे लोकप्रिय रही हैं तथा उनका पठन-पाठन भी खूब रहा है।

भ० सकलकीर्त्ति की उक्त सस्कृत रचनाओ मे कवि का पाण्डित्य स्पष्ट रूप से झलकता है। उनके काव्यो मे उसी तरह की शैली, अलकार, रस एव छन्दो की परियोजना उपलब्ध होती हैं जो अन्य भारतीय सस्कृत काव्यो मे मिलती हैं। उनके चरित काव्यो के पढने से अच्छा रसास्वादन मिलता है। चरित काव्यो के नायक त्रेसठशलाका के लोकोत्तर महापुरुष है जो अतिशय पुण्यवान् हैं, जिनका सम्पूर्ण जीवन अत्यधिक पावन है। सभी काव्य शान्त रसपर्यवसानी हैं।

काव्य ज्ञान के समान भ० सकलकीर्त्ति जैन सिद्धान्त के महान् वेत्ता थे। उनका मूलाचार प्रदीप, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, सिद्धान्तसार दीपक एव तत्वार्थ-सार दीपक तथा कर्मविपाक जैसी रचनाए उनके अगाध ज्ञान के परिचायक हैं। इनमे जैन सिद्धान्त, आचार शास्त्र एव तत्वचर्चा के उन गूढ रहस्यो का निचोड है जो एक महान् विद्वान् अपनी रचनाओ मे भर सकता है।

इसी तरह 'सद्भाषितावलि' उनके सर्वांग ज्ञान का प्रतीक है–जिसमे सकल कीर्ति ने जगत के प्राणियो को सुन्दर शिक्षायें भी प्रदान की है, जिससे वे अपना आत्म–कल्याण भी करने की ओर अग्रसर हो सकें। वास्तव मे वे सभी विषयो के पारगामी विद्वान् थे–ऐसे सन्त विद्वान् को पाकर कौन देश गौरवान्वित नही होगा।

राजस्थानी रचनाएं

सकलकीर्त्ति ने हिन्दी मे बहुत ही कम रचना निबद्ध की है। इसका प्रमुख कारण सभवत इनका सस्कृत भाषा की ओर अत्यधिक प्रेम था। इसके अतिरिक्त जो भी इनकी हिन्दी रचनाए मिली है वे सभी लघु रचनाए हैं जो केवल भाषा अध्ययन की दृष्टि से ही उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। सकलकीर्त्ति का अधिकाश

जीवन राजस्थान मे व्यतीत हुआ था इसलिए इनकी रचनाओ मे राजस्थानी भाषा की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है।

१. णमोकार फल गीत—यह इनकी प्रथम हिन्दी रचना है। इसमे णमोकार मत्र का महात्म्य एव उसके फल का वर्णन है। रचना कोई विशेष बड़ी नही है केवल १५ पद्यो मे ही वर्णित विषय पूरा हो जाता है। कवि ने उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि णमोकार मत्र का स्मरण करने से अनेक विघ्नो को टाला जा सकता है। जिन पुरुषो के इस मत्र का स्मरण करने से विघ्न दूर हुये है उनके नाम भी गिनाये है। तथा उनमे धरणेंद्र, पद्मावती, अजन-चोर, सेठ सुदर्शन एवं चारुदत्त उल्लेखनीय हैं। कवि कहता है—

सर्प जुगल तपिसि हण्यो पार्श्वनाथ जिनेन्द्र।
णमोकार फल लहीहुउ पथियडारे पद्मावती धरणेंद्र ।।
चोर अजन सूली धर्यो, श्रेष्ठि दियो णमोकार।
देवलोक जाइ करी, पथियडारे सुख भोगवे अपार।
चारुदत्त श्रेष्ठि दियो घाला ने णमोकार।
देव भवनि देवज हुहो, सुखन विलासई पार।।
ग्रह डाकिनी शाकिणी फणी, व्याधि वह्नि जलराशि।
सकल बधन तूटए पथिय डारे विघन सवे जावे नाशि ।।

कवि अन्त मे इस रचना को इस प्रकार समाप्त करता है—

चउवीसी अमत्र हुई, महापथ अनादि
सकलकीरति गुरु इम कहे,
पथियडारे कोइ न जाणइ
आदि जीवड लारे भव सागरि एह नाव।

२ आराधना प्रतिबोध सार यह इनकी दूसरी हिन्दी रचना है। प्राकृत भाषा मे निवद्ध आराधना सार का कवि ने भाव मात्र लिखने का प्रयत्न किया है। इसमे सब मिलाकर ५५ पद्य हैं। प्रारम्भ में कवि ने णमोकार मत्र की प्रशसा की है तत्पश्चात सयम को जीवन मे उतारने के लिए आग्रह किया है। संसार को क्षण भगुर बताते हुए सम्राट भरत, बाहुबलि, पाडव, रामचन्द्र, सुग्रीव, सुकुमाल, श्रीपाल आदि महापुरुषो के जीवन से शिक्षा लेने का उपदेश दिया है। इस प्रकार आगे तीर्थ क्षेत्रो का उल्लेख करते हुए मनुष्य को अणुव्रत आदि पालने के लिए कहा गया है। इन

सबका सक्षिप्त वर्णन है। रचना सुन्दर एव सुपाठ्य है। रचना के कुछ सुन्दर पद्यों का रसास्वादन करने के लिए यहां दिया जाता है—

तप प्रायश्चित व्रत करि शोघ, मन वचन काया निरोधि।
तु क्रोध माया मद छाडि, आपणपु सयलइ मांडि॥
गया जिणवर जगि चउवीस, नहि रहि आवार चकीस।
गया वलिभद्र, म वर वीर, नव नारायण गया धीर॥
गया भरतेस देइ दान, जिन शासन थापिय मांन।
गयो बाहुबलि जगमाल, जिणें हुइ न राख्यु साल॥
गया रामचन्द्र रणि रगि, जिण सांचु जस अमग।
गयो कुंभकरण जगिसार, जिणें लियो तु महाव्रत भार॥

× × × ×

जे जात्रा करि जग माहि, सभारें ते मन मांहि।
गिरनारी गयु तु धीर, समारिह बडावीर॥
पावा गिरि पुन्य भडार, समारेंहवडां सार।
तारण तीरथ होइ, सभारह वडा जोइ॥
हवेइ पाचमो व्रत प्रतिपालि, तू परिग्रह दूरिय टालि।
हो घन कंचन माह मोल्हि, सतोवीइ मांह समेल्हि॥
हवई चहुँगति फेरो टालि, मन जाति चहु दिशि वार।
हो नरगि दु खन विसार, तेह केता कहू अविचार॥

× × × ×

अन्त मे कवि ने रचना को इस प्रकार समाप्त किया है—

जे भणई सुणइ नर नारि, ते जाइ भवनेइ पारि।
श्री सकलकीर्ति कह्यु विचार, आराधना प्रतिवोधसार॥

३ सारसीखामणिरास—सारसीखामणिरास राजस्थानी भाषा की लघु किन्तु सुन्दर कृति है। इसमे प्राणी मात्र के लिये शिक्षाप्रद सदेश दिये गये हैं। रास मे ४ ढालें तथा तीन वस्तुवध छन्द हैं। इसकी एक प्रति नैणवा (राजस्थान) के दिगम्बर मदिर बघेरवालो के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत एक गुटके मे लिपिबद्ध है। गुटका की प्रतिलिपि सवत् १६४४ वैशाख सुदी १५ को समाप्त हुईथी। इसी गुटके मे सोमकीर्त्ति,

ब्रह्म यशोधर आदि कितने ही प्राचीन सन्तो के पाठो का सग्रह है। लिपि स्थान रणथम्भोर है जो उस समय भारत के प्रसिद्ध दुर्गों मे से एक माना जाता था। रास पाच पत्रो मे पूर्ण होता है। सर्व प्रथम कवि ने कहा कि "यह सुदर देह विना बुद्धि के बेकार है इसलिये सदैव सत्साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। जीवन को सयमित बनाना चाहिए तथा अन्ध विश्वासो में कभी नहीं पडना चाहिए।" जीव दया की महत्ता को कवि ने निम्न शब्दो मे वर्णन की है।

जीव दया दृढ पालीइए, मन्न कोमल कीजि।
आप सरीखा जीव सवै, मन माहि धरीजइ॥

असत्य वचन कभी नही बोलना चाहिए और न कर्कश तथा मर्मभेदी शब्द जिनसे दूसरो के हृदय मे ठेस पहुचे। किसी को पुण्य कार्य करते हुए नही रोकना चाहिए तथा दूसरो के अवगुणो को ढक कर गुणो को प्रकट करना चाहिए।

भूठा वचन न बोलीइए, ए करकस परिहए।
मरम म बोलु किहि तथा, ए चाडी मन करू॥
धर्म करता न वारीइए, नवि परनदीजि।
परगुण ढाकी आप तणा, गुण नवि बोलीजइ॥

सदैव त्याग को जीवन मे अपनाना चाहिए। आहारदान, औषधदान, साहित्यदान, एव अभयदान आदि के रूप मे कुछ न कुछ देते रहना चाहिए। जीवन इसी से निखरता है एव उसमे परोपकार करते रहने की भावना उत्पन्न होती है।

चौथी ढाल मे कवि ने अपनी सभी शिक्षाओ का सार दिया है जो निम्न प्रकार है—

योवन रे कुटुव हरिवि, लक्ष्मी चचल जाणीइए।
जीव हरे सरण न कोइ, धर्म विना सोई आजीइए॥
ससार रे काल अनादि, जीव आगि घणु फिरयुए।
एकलू रे आवि जाइ, करम आगे गलि थरयुए॥
काय थी रे जु जु होइ कुटुव, परिवारि वेगलु ए।
खिमा रे खडग धरेवि, क्रोध विरी सघारीइए॥
मार्द्दव रे पालीइ सार, मान पापी परू टालीइए।
सरलू रे चित्त करेवि, माया सवि दूरि करुए॥
सतोष रे आयुध लेवि, लोभ विरी सिघारीइए
वैराग रे पालीइ सार, राग टालू सकलकीर्त्ति कहिए।
जे भणि ए रासज सार, सीखामणि पढते लहिए॥

रचना काल—सकलकीर्त्ति ने इस रास की रचना कब की थी इसका कोई उल्लेख नही किया है लेकिन कवि का साहित्यिक जीवन मुख्यत जैसा कि ऊपर लिखा गया है बीस वर्ष तक (स० १४७९ से स १४९९) रहा था इसलिये उसी के मध्य इस रचना का निर्माण हुआ होगा। अत इसे १५वी शताब्दी के अन्तिम चरण की कृति मानना चाहिए।

भाषा—रचना की भाषा जैसा कि पहिले कहा जा चुका है राजस्थानी है लेकिन कही २ गुजरानी शब्दो का प्रयोग हुआ है। कवि ने अपनी इस रचना मे मूल-क्रिया के अन्त मे 'जि' एव जइ शब्दो को जोडकर उनका प्रयोग किया है जैसे पामजि, प्रणमीज, तरीजि, हारीजि, छूटीजि, कीजि, घरीजई, वोलीजइ, करीजइ कीजइ, लहीजइ आदि। चौथी ढाल मे और इससे पहिले के छन्दो में भी क्रियाओ के आगे 'ए' लगाकर उनका प्रयोग किया है।

४ मुक्तावलि गीत

यह एक लघु गीत है जिसमे मुक्तावलि व्रत की कथा एव उसके महात्म्य का वर्णन है। रचना की भाषा राजस्थानी है जिसमे गुजराती भाषा के शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। रचना साधारण है तथा वह केवल १५ पद्यो मे पूर्ण होती है। एक उदाहरण देखिए—

नाभिपुत्र जिनवर प्रणमीने, मुक्तावलि गाइये
मुगति पगनि जिनवर भासि, व्रत उपवास करीजे
सखी सुण मुक्तावली व्रत कीजे।
तप परिण अति निर्मल जानि कर्म मल धोईजे
सखी सुण मुक्तावलि व्रत कीजे।
× × × × ×
नर नारी मुगतावली करसे तेहने सुख्य आवार
श्री सकनकीरति भावे मुगति लहिये भाव भोगने सुविशाल ॥
सखी सुण मुगतावली व्रत कीजे ॥१२॥

५ सोलहकारण रास—यह कवि की एक कथात्मक कृति है जिसमे सोलहकारण व्रत के महात्म्य पर प्रकाश डाला गया है। भाषा की दृष्टि से यह रास अच्छी रचना है। कृति के अन्त मे सकलकीर्त्ति ने अपने आपको मुनि विशेषण से सम्बोधित किया है इससे ज्ञात होता है कि यह उनकी प्रारम्भिक कृति होगी। रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

एक चित्ति जे व्रत करइ, नर अहवा नारी।
तीर्थंकर पद सो लहइ, जो समकित धारी।

सकलकीर्त्ति मुनि रासु कियउए सोलहकारण।
पढहि गुणहि जो साभलहि तिन्ह सिव सुह कारण ॥

६. **शान्तिनाथ फागु**—इस कृति को खोज निकालने का श्रेय श्री कुन्दनलाल जैन को है। इस फागु काव्य मे शान्तिनाथ तीर्थंकर का सक्षिप्त जीवन वर्णित है। हिन्दी के साथ कही २ प्राकृत गाथा एव सस्कृत श्लोक भी प्रयुक्त हुए हैं। फागु की भाषा सरस एवं मनोहारी है। एक उदाहरण देखिये

रासु—नृप सुत रमणि गजगति रमणी तरूणी सम क्रीडतरे।
वहु गुण सागर अवधि दिवाकर सुभकर निसि दिन पुण्य रे।
छडिय मय सुख पालिय जिन दिख सनमुख आतम ध्यान रे।
अणसणविघना मूकीअ असुना आज्ञा जिनवर लेवि रे।

मूल्यांकन

'भट्टारक सकलकीर्ति' सस्कृत के आचार्य थे। उन्होंने जो इस भाषा मे विविध विषयक कृतिया लिखी, उनसे उनके अगाध ज्ञान का सहज ही पता चलता है। यद्यपि सकलकीर्त्ति ने लिखने के लिए ही कोई कृति लिखी हो—ऐसी बात नही है, किन्तु उनको अपने मौलिक विचारो से भी आप्लावित किया है। यदि उन्होने पुराण विषयक कृतियो मे आचार्य परम्परा द्वारा प्रवाहित विचारो को ही स्थान दिया है तो चरित काव्यो मे अपने पौष्टिक ज्ञान का भी परिचय दिया है। वास्तव मे इन काव्यो मे भारतीय सस्कृति के विभिन्न अ गो का अच्छी तरह दर्शन किया जा सकता है। जैन दर्शन की दार्शनिक, सामाजिक एव धार्मिक प्रवृत्तियो के अतिरिक्त आचार एव चरित निर्माण, व्यापार, न्यायव्यवस्था, औद्योगिक प्रवृत्तिया, भोजन पान व्यवस्था, वस्त्र-परिधान प्रकृतिचर्चा, मनोरजन आदि सामान्य विषयो की भी जहा कही चर्चा हुई है और कवि ने अपने विचारो के अनुसार उनके वर्णन का भी ध्यान रखा है। भगवान के स्तवन के रूप मे जब कुछ अधिक नही लिखा जा सका तो उन्होंने पूजा के रूप मे उनका यशोगान गाया—जो कवि की भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्त होने का सकेत करता है। यही नही, उन्होंने इन पूजाओ के माध्यम से तत्कालीन समाज मे 'अर्हंत-भक्ति, के प्रति गहरी आस्था बनाये रखी और आगे आने वाली सन्तति के लिए 'अर्हंत-भक्ति' का मार्ग खोल दिया।

सिद्धान्त, तत्वचर्चा एव दर्शन के क्षेत्र मे—सिद्धान्त सारदीपक, तत्वार्थसार, आगमसार, कर्मविपाक जैसी कृतियो के माध्यम से उन्होने जनता को प्रभूत साहित्य

१ देखिये अनेकान्त वर्ष १९ किरण ४ पृष्ठ सख्या २८२

दिया। इन कृतियों मे जैन धर्म के प्रसिद्ध सिद्धान्तो जैसे सात तत्व, नव पदार्थ, अष्टकर्म, पच ज्ञान, गुणस्थान, मार्गणा आदि का अच्छा विवेचन हुआ है। उन्होने साधुओ के लिए 'मूलाचार-प्रदीप' लिखा, तो गृहस्थो के लिए प्रश्नोत्तर के रूप मे प्रश्नोत्तरोपासकाचार लिखकर जीवन को मर्यादित एव अनुशासित करने का प्रयास किया। वास्तव मे उन्होने जिन २ मर्यादाओ का परिपालन जीवन मे आवश्यक बताया वे उनके शिष्यो के जीवन मे अच्छी तरह उतरी। क्योकि वे स्वय पहिले मुनि अवस्था मे रहे थे। उसी रूप में उन्होने अध्ययन किया और उसी रूप मे कुछ वर्षो तक जन-जागरण के लिए स्थान-स्थान पर विहार भी किया।

'व्रत कथा कोष' के माध्यम से इन्होंने श्रावको के जीवन को नियमित एव सयमित वनाने का प्रयास किया और उन्हे व्रत-पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी तरह स्वाध्याय के प्रति जन-जागृति पैदा करने के लिए उन्होंने पहिले तो आदिपुराण एव उत्तरपुराण लिखा और फिर इन्ही दो कृतियो को सक्षिप्त कर पुराणसारसग्रह निबद्ध किया। किसी भी विषय को सक्षिप्त अथवा विस्तृत करने की कला उनको अच्छी तरह आती थी।

'भट्टारक सकलकीर्त्ति' ने यद्यपि हिन्दी में अधिक एव वडी रचनाएँ नही लिखी, लेकिन जो भी ७ कृतिया उनकी अब तक उपलब्ध हुई है, उनसे उनका साहित्यिक एव भापा शास्त्रीय ज्ञान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। उनका 'सारसीखामणिरास' एव 'शान्तिनाथ फागु' हिन्दी की अच्छी कृतिया हैं। जिनमे विषय का अच्छा प्रतिपादन हुआ है। नेमीश्वर गीत एव मुक्तावलि गीत उनकी सगीत प्रधान रचना है। जिनका सगीत के माध्यम से जन साधारण को जाग्रत रखने का प्रमुख उद्देश्य था।

: ब्रह्म जिनदास :

'ब्रह्म जिनदास' १५ वी शताब्दी के समर्थ विद्वान् थे। सरस्वती की इन पर विशेष कृपा थी इसलिए इनका प्रत्येक वाक्य ही काव्य-रूप मे निकलता था। ये 'भट्टारक सकलकीर्ति' के शिष्य एव लघु भ्राता थे। ये योग्य गुरु के योग्य शिष्य थे।[1] साहित्य-सेवा ही इनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। यद्यपि सस्कृत एव राजस्थानी दोनो भाषाओ पर इनका समान अधिकार था, लेकिन राजस्थानी से इन्हे विशेष अनुराग था। इसलिए इन्होने ५० से भी अधिक रचनाए इसी भाषा मे लिखी। राजस्थानी को इन्होने अपने साहित्यिक प्रचार का माध्यम बनाया। जनता को उसे पढने, समझने एव उसका प्रचार करने के लिए प्रोत्साहित किया। अपनी रचनाओ की प्रतिलिपियाँ करवा कर इन्होने राजस्थान एव गुजरात के सैकडो ग्रन्थ-सग्रहालयो मे विराजमान किया। यही कारण है कि आज भी इनकी रचनाओं की प्रतिलिपियाँ राजस्थान के प्राय सभी भण्डारो मे उपलब्ध होती है। 'ब्रह्म-जिनदास' सदा अपने साहित्यिक धुन मे मस्त रहने तथा अधिक से अधिक लिखकर अपने जीवन का पूर्ण सदुपयोग करते रहते थे।

'ब्रह्म जिनदास' की निश्चित जन्म-तिथि के सम्बन्ध मे इनकी रचनाओ के आधार पर कोई जानकारी नही मिलती। ये कब तक गृहस्थ रहे और कब साधु-जीवन धारण किया—इसकी सूचना भी अब तक खोज का विषय बनी हुई है। लेकिन ये 'भट्टारक सकलकीर्त्ति' के छोटे भाई थे, जिसका उल्लेख इन्होने 'जम्बूस्वामी-चरित्र' की प्रशस्ति मे निम्न प्रकार किया है,—

भ्रातास्ति तस्य प्रथित पृथिव्या, सद् ब्रह्मचारी जिनदास नामा।
तनोति तेन चरित्र पवित्र, जम्बूदिनामा मुनि सप्तमस्य ॥ २८ ॥

'हरिवश पुराण' की प्रशस्ति मे भी इन्होने इसी तरह का उल्लेख किया है, जो निम्न प्रकार है —

सद् ब्रह्मचारी गुरू पूर्वकोस्य, भ्राता गुणज्ञोस्ति विशुद्धचित्त ।
जिनसभक्तो जिनदासनामा, कामारिजेता विदितो धरित्र्या ॥ २९ ॥[2]

---

१ महाव्रती ब्रह्मचारी घणा जिणदास गोलागर प्रमुख अपार।
अर्जिका क्षुल्लिका सयल सघ गुरु सोभित सहित सकल परिवार ॥

२ देखिये —प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ स० ७१ (लेखक द्वारा सम्पादित)

'प० परमानन्दजी शास्त्री' ने भी इन्हे भट्टारक सकलकीर्ति का कनिष्ठ भ्राता स्वीकार किया' है। उनके अनुसार इनका जन्म सं० १४४३ के बाद होना चाहिए, क्योंकि इसी संवत् मे भ० सकलकीर्ति का जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम 'शोभा' एवं पिता का नाम 'करणसिंह' था। ये पाटण के रहने वाले तथा हूंवड जाति के श्रावक थे। घर के काफी समृद्ध थे। लेकिन भोग-विलास एव धन-सम्पदा इन्हे साधु-जीवन धारण करने से न रोक सकी। और इन्होने भी अपने भाई के मार्ग का अनुसरण किया। 'भ० सकलकीर्त्ति' ने इन्ही के आग्रह से ही सवत् १४८१ मे वडली नगर मे 'मूलाचार प्रदीप' की रचना की थी।[1]

समय—'ब्रह्म जिनदास' ने अपनी दो रचनाओ को छोडकर शेष किसी भी रचना मे समय नही दिया है। ये दो रचनाएं 'रामराज्य रास' एव 'हरिवश पुराण' हैं। जिनमे सवत् क्रमश १५०८ तथा १५२० दिया हुआ है। 'भट्टारक सकलकीर्त्ति' के कनिष्ट भ्राता होने के कारण इनका जन्म सवत् १४४५ से पूर्व तो सम्भव नही है। इसी तरह यदि हरिवश पुराण को इनकी अन्तिम कृति मान ली जावे तो इनका समय सवत् १४४५ से सवत् १५२५ का माना जा सकता है।

शिष्य-परिवार—ब्रह्मचारीजी की अगाध विद्वत्ता से सभी प्रभावित थे। वे स्वय विद्यार्थियो को पढाते थे और उन्हे सस्कृत एव हिन्दी भाषा मे पारगत किया करते थे। 'हरिवश-पुराण' की एक प्रशस्ति[2] मे उन्होने मनोहर, मल्लिदास, गुणदास इन तीन शिष्यो के नामो का उल्लेख किया है। ये शिष्य स्वय इनसे पढते भी थे और दूसरो को भी पढाते थे।[3] परमहस रास मे एक नेमिदास[4] का और उल्लेख किया है। उक्त शिष्यो के अतिरिक्त और भी अनेको ने इनसे ज्ञान-दान लेकर अपने जीवन को उपकृत किया होगा।

---

१ सवत् चौदह सै इक्यासी भला, श्रावण मास वसन्त रे।
पूर्णिमा दिवसे पूरण कर्यो, मूलाचार महत रे।।

२ ब्रह्म जिणदास भणे रुवडो, पढ़ता पुण्य अपार।
सिस्य मनोहर रुवडो मल्लिदास गुणदास।।

३ तिज मुनिवर पाय प्रणमीनें कीयो दो प रास सार।
ब्रह्म जिणदास भणे रुवडा, पढता पुण्य अपार।।
शिष्य मनोहर रुयडा ब्रह्म मल्लिदास गुणदास।
पढ़ो पढावो बहु भाव सों जिन होई सोख्य विकास।।

४ ब्रह्म जिनदास शिष्य निरमला नेमिदास सुविचार।
पढ़ई-पढ़ावो विस्तरो परमहस भवतार ।। ८ ।।

साहित्य-सेवा

'ब्रह्म जिनदास' का आत्म-साधना के अतिरिक्त अधिकाश समय साहित्य-सर्जन मे व्यतीत होता था। सरस्वती का वरदहस्त इन पर था तथा अध्ययन इनका गहरा था। काव्य, चरित, पुराण, कथा, एव रासो साहित्य से इन्हे बहुत रुचि थी और उसी के अनुसार वे काव्य रचना किया करते थे। इनके समय मे 'रास-साहित्य' की सम्भवत अच्छी प्रतिष्ठा थी। इसलिए जितनी अधिक सख्या मे इन्होने 'रासक-काव्य' लिखे हैं, उतनी सख्या मे हिन्दी मे शायद ही किसी ने लिखा हो। वास्तव मे एक विद्वान् द्वारा इतने अधिक काव्य ग्रथ लिखना साहित्यिक इतिहास की अनोखी घटना है। अपने ८० वर्ष के जीवन काल मे ६० से अधिक कृतिया—'माँ भारती' को भेंट करना 'ब्र० जिनदास' की अपनी विशेषता है। आत्म-साधना के साथ ही इन्हे पठन-पाठन एव साहित्य-प्रचार का कार्य भी करना पड़ता था। यही नहीं अपने गुरु 'सकलकीर्त्ति' एव भुवनकीर्त्ति के साथ ये बिहार भी करते थे। इतने पर भी इन्होंने जो साहित्य-सर्जना की—वह इनकी लगन एव निष्ठा का परिचायक है। कवि की अब तक जितनी कृतियाँ उपलब्ध हो मकी हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—

संस्कृत रचनाएं

(i) काव्य, पुराण एव कथा-साहित्य :

१. जम्बूस्वामी चरित्र,
२. राम चरित्र (पद्म पुराण),
३ हरिवश पुराण,
४. पुष्पाजलि व्रत कथा,

(ii) पूजा एव विविध साहित्य :

१ जम्बूद्वीपपूजा,
२. सार्द्धद्वयद्वीपपूजा,
३ सप्तर्षि पूजा,
४. ज्येष्ठजिनवर पूजा,
५ सोलहकारण पूजा,
६ गुरु-पूजा,
७ अनन्तव्रत पूजा,
८ जलयात्रा विधि

राजस्थानी रचनाएं

इनकी अब तक ५० से भी अधिक इस भाषा की रचनाए उपलब्ध हो चुकी हैं। इन रचनाओ को निम्न भागो मे बाटा जा सकता है—

१ पुराण साहित्य,
२. रासक साहित्य,
४ पूजा साहित्य,
५ स्फुट साहित्य,

१. गीत एवं स्तवन,

१. पुराण साहित्य :

१. आदिनाथ पुराण,
२. हरिवंश पुराण,

२. रासक साहित्य :

१ राम सीता रास,
२ यशोधर रास,
३. हनुमत रास,
४. नागकुमार रास,
५. परमहंस रास,
६. अजितनाथ रास,
७. होली रास,
८. धर्मपरीक्षा रास,
९. ज्येष्ठजिनवर रास,
१० श्रेणिक रास,
११. समकित मिथ्यात्व रास,
१२. सुदर्शन रास,
१३. अम्बिका रास,
१४. नागश्री रास,
१५. श्रीपाल रास,
१६ जम्बूस्वामी रास,
१७. भद्रबाहु रास,
१८ कर्मविपाक रास,[1]
१९. सुकोशलस्वामी रास,[2]
२० रोहिणी रास,[3]
२१ सोलहकारण रास,[4]
२२ दशलक्षण रास,
२३. अनन्तव्रत रास,
२४ वकचूल रास,
२५ धन्यकुमार रास,[5]
२६ चारुदत्त प्रबन्ध रास,[6]
२७ पुष्पांजलि रास,
२८ धनपाल रास (दानकथा रास),
२९ भविष्यदत्त रास,
३० जीवन्धर रास,[7]
३१ नेमीश्वर रास,
३२ करकण्डु रास,
३३ सुभौमचक्रवर्ती रास,[8]
३४ अठावीस मूलगुण रास,[9]

---

१. इस कृति की एक प्रति उदयपुर (राज०) के अग्रवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।
२. इसकी एक प्रति डूंगरपुर के दि० जैन मन्दिर में संग्रहीत है।
३ इसकी एक प्रति डूंगरपुर के दि० जैन मन्दिर के संग्रह में है।
४ अग्रवाल दि० जैन मन्दिर उदयपुर के संग्रह में है।
५ इस रास की एक प्रति संभवनाथ दि० जैन मन्दिर उदयपुर के संग्रह में है।
६. वही।
७ वही।
८. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ— पृष्ठ संख्या ३६७।
९ वही पृष्ठ संख्या ६०७।

३. गीत एवं स्तवन :

१. मिथ्यादुक्कड विनती,
२ बारहव्रत गीत,
३ जीवड़ा गीत,
४ जिणन्द गीत,
५ आदिनाथ स्तवन,
६. आलोचना जयमाल,
७ स्फुट-विनती, गीत, चूनड़ी, धवल, गिरिनार धवल, आरती, निजामणि आदि।

४. पूजा साहित्य :

१. गुरु जयमाल,
२. पार्श्व पूजा,
३. सरस्वती पूजा,
४, गुरु पूजा,
५ जम्बूद्वीप पूजा,
६ निर्दोषसप्तमीव्रत पूजा,

५. स्फुट साहित्य :

१. रविव्रत कथा,
२ चौरासी जाति जयमाल,
३ भट्टारक विद्याधर कथा,
४ अष्टांग सम्यक्त्व कथा,
५ व्रत कथा कोश,
६ पञ्चपरमेष्ठि गुण वर्णन,

अब यहां कवि की कुछ रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है—

१ जम्बूस्वामी चरित

यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित्र निबद्ध है। सम्पूर्ण काव्य ग्यारह सर्गों मे विभक्त है। काव्य मे वीर एव शृंगार रस का अद्भुत सम्मिश्रण है जिससे काव्य भाषा एव शैली की दृष्टि से एक मोहक काव्य बन गया है। भाषा सरल एव अर्थ मय है। काव्य मे सुभाषितो का बाहुल्य है। कुछ उदाहरण यहां दिये जारहे हं—

यत् किञ्चित् दुर्लभ वस्तु, जगत् यस्मिन् निरीक्षते।
तत्सर्व धर्मतो नून, प्राप्यते क्षणमात्रत ॥८॥

× × ×

एकाकी जायते प्राणी, तथैकाकी विलीयते।
सुखदुखमयैकाकी, भुक्ते कर्मवशात् ध्रुव ॥७२॥

× × ×

निंदा स्तुति समो धीमान्, जीविते मरणे तथा।
शृणोति शब्द वधिर, इव पश्यति ॥१७८॥

× × ×

मातर्जात सुपुत्रो हि, स्व भूषयति यत् कुल।
शुभाचारादिना नून, वर मन्ये धनै किमु ॥७४॥

२ हरिवंश पुराण

यह कवि की संस्कृत भाषा मे निबद्ध दूसरी बडी रचना है जिसमे ४० सर्ग हैं। श्रीकृष्ण एव २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ हरिवंश मे ही उत्पन्न हुये थे इसलिये उनका एव प्रद्युम्न, पाडव, कौरवो का इस पुराण मे वर्णन किया गया है। इसे जैन महाभारत कह सकते हैं। इसकी वर्णन शैली भी महाभारत के समान है किन्तु स्थान२ पर इसमे काव्यत्व के भी दर्शन होते हैं। महापुरुष श्री कृष्ण एव भगवान नेमिनाथ का इसमें सम्पूर्ण जीवन वर्णित है और इन्हीं के जीवन प्रसग मे कौरव-पाण्डवो का अच्छा वर्णन मिलता है। राम कथा एव श्री कृष्ण कथा को जैन आचार्यों ने जिस सुन्दरता एव मानवीय आधार पर प्रस्तुत किया है उसे जैन पुराण एव काव्यो मे अच्छी तरह देखा जा सकता है। ब्रह्म जिनदास के हरिवंश पुराण का स्थान आचार्य जिनसेन द्वारा निबद्ध हरिवंश पुराण से बाद का है।

३ राम चरित्र

८३ सर्गों मे विभक्त यह रचना जिनदास की सबसे बडी रचना है। इसकी श्लोक सख्या १५०००, है। रविषेणाचार्य के पद्मपुराण के आधार पर की गई इस रचना का नाम पद्मपुराण (जैन रामायण) भी प्रसिद्ध है। इस काव्य मे भगवान राम के पावन-चरित्र का जिस सुन्दर ढग से वर्णन किया गया है उससे कवि की विद्वत्ता एव वर्णन चातुर्य्य का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। काव्य की भाषा सरल है एव वह सुन्दर शैली मे लिखा हुआ है।

हिन्दी रचनाएं

१ आदिनाथ पुराण

यह कवि की बडी रचनाओ मे है। इसमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एव बाहुबलि आदि महापुरुषो के जीवन का वर्णन है। साथ ही आदिनाथ के पूर्व भवो का, भोगभूमियो की सुख समृद्धि, कुलकरो की उत्पत्ति एव उनके द्वारा विभिन्न समयो मे आवश्यक निर्देशन, कर्मभूमियो का प्रारम्भ आदि का भी अच्छा वर्णन मिलता है। पुराण मे गुजराती भाषा के शब्दो की बहुलता है। कवि ने ग्रथ के प्रारम्भ मे रचना संस्कृत के स्थान पर देश भाषा मे क्यो की गई इसका सुन्दर उत्तर दिया है। उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार नारियल कठिन होने से बालक उसका स्वाद (बिना छीले) नही जान सकता तथा दाख केला आदि का बिना छीले ही अच्छी तरह से स्वाद लिया जा सकता है वही दशा देशी भाषा मे निबद्ध काव्य की भी है—

भवियण भावें सुणो आज, रास कहो मनोहार ।
आदिपुराण जोई करी, कवित करू मनोहार ॥१॥

बाल गोपाल जिम पढे गुणे, जाणे बहु भेद ।
जिन सासण गुण नीरमला, मिथ्यामत छेद ॥२॥
कठिन नारेल दीजे बालक हाथ, ते स्वाद न जाणे ।
छोल्यां केला द्राख दीजे, ते गुण बहु माने ॥३॥
तिम ए आदपुराण सार, देस भाषा बखाणू ।
प्रगुण गुण जिम विस्तरे, जिन सासन बखाणू ॥४॥

ब्रह्म जिनदास ने रचना मे अपने गुरु सकलकीर्ति एव मुनि भुवनकीर्त्ति का सादर उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीने, मुनी भवनकीरती अवतार ।
ब्रह्म जिनदास कहे नीमलो रास कीयो मे सार ॥

२ हरिवंश पुराण

इसका दूसरा नाम नेमिनाथ रास भी है। कवि ने पहिले जो सस्कृत मे हरिवश पुराण निबद्ध किया था उसी पुराण के कथानक को फिरसे उन्होंने राजस्थानी भाषा मे और काव्य रूप मे निबद्ध कर दिया। कवि के समय मे जन साधारण की जो प्रान्तीय भाषाओ मे रुचि बढ रही थी उसी के परिणाम-स्वरूप यह रचना हमारे सामने आयी। यह कवि की बडी रचनाओं मे से है। इसकी एक प्रति सवत् १६५३ मे लिखी हुई उदयपुर के खण्डेलवाल मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है। इस प्रति मे $11\frac{1}{2}'' \times 7\frac{1}{2}''$ आकार वाले २३० पत्र है। हरिवश पुराण की रचना सवत् १५२० मे समाप्त हुई थी और समवत यह उनकी अन्तिम रचना मालूम देती है।

सवत १५ (पन्द्रह) वीसोत्तरा विशाखा नक्षत्र विशाल ।
शुक्ल पक्ष चौदसि दिना रास कियो गुणमाल ॥

रचना सुन्दर है और इसकी भाषा को हम राजस्थानी भाषा कह सकते हैं। इसमे कवि ने परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है और इसमे निखरे हुये काव्य के दर्शन होते हैं। यद्यपि रचना का नाम पुराण दिया हुआ है लेकिन इसे महा काव्य की सज्ञा दी जा सकती है।

३. राम सीता रास

राम के जीवन पर राजस्थानी भाषा को समवत यह सबसे बडी रचना है जिसे दूसरे रूप मे रामायण कहा जा सकता है। कवि ने जा राम चरित्र सस्कृत मे लिखा था उसी का कथानक इस काव्य मे है। लेकिन यह कवि की स्वतत्र रचना है सस्कृत कृति का अनुवाद मात्र नही है। सवत् १७२८ में देउल ग्राम मे

लिखी हुई इस काव्य की एक प्रति डूंगरपुर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इस प्रति में १२"×६" आकार वाले ४०५ पत्र हैं। इसका रचना काल सवत् १५०८ मगसिर सुदी १४ (सन् १४५१) है।

सवत् पन्नर अठोतरा मागसिर मास विशाल।
शुक्ल पक्ष चउदिसि दिनी रास कियो गुणमाल ॥६॥

४ यशोधर रास

इसमे राजा यशोधर के जीवन का वर्णन है। यह सभवतः कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से है क्योंकि अन्य रचनाओं की तरह इसमे भुवनकीर्ति के नाम का कोई उल्लेख नही किया गया है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। रचना की भाषा एव शैली दोनों ही अच्छी है।

५. हनुमत रास

हनुमान का जीवन जैन समाज मे बहुत ही प्रिय रहा है। इनकी गणना १६३ पुण्य पुरुषो मे की जाती है। हनुमत रास एक लघु काव्य है जिसमें उसके जीवन की मुख्य २ घटनाओ का वर्णन दिया हुआ है। यह एक प्रकार से सतसई है जिसमे ७२७ दोहा चौपई वस्तुबध आदि हैं। रचना सुदर है। एक उदाहरण देखिये—

अमितिगति मुनिवर तणु नाम, जाणे उगयु बीजु भान।
तेजवत रुधिवत, गुणमाल, जीता इद्री मयण मोह जाल ॥
क्रोध मान मायानि लोभ, जीता रागद्वेष नहि क्षोभ।
सोममूरति स्वामी जिणचद, दीठिउ ऊपजि परमानन्द ॥
अजना सुदरी मनु ऊपनु भाव, मुनिवर वर त्रिभुवनराय।
नमोस्त करी मुनि लागी पाय, धन सफल जन्म हवु काय ॥

आपकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के खण्डेवाल दि जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है।

६ नागकुमार रास

इस रास मे पञ्चमी कथा का वर्णन है। इस रास को एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल मदिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। प्रति मे १०॥"×४॥" आकार वाले ३६ पत्र हैं। यह सवत् १८२६ की प्रतिलिपि की हुई है। रास सीधी सादी भाषा मे लिखा हुआ है। एक उदाहरण देखिये—

जबू द्वीप मझारि सार, भरत क्षेत्र सुजाणो।
मगध देश अति रूवडो, कनकपुर वखाणो ॥१॥
जयधर तिणे नयर राउ, राज करे उतग।
धरम करे जिणवर तणो, पाले समकित अग ॥२॥

बाजत ढोल निसाण, दरवडि, झल्लरि नाद रसाल।
कसाल मुगल भेरी मद्दल, तौल सवील ते अति घणा।
इणी परिहि नादइ गहिर सादिइ, इन्द्र आरती उतारए।।
गावत धवल गीत मगल, राग सुरस मनोहर।
नाचति कामिणि गजह गामिणि, हाव भाव सोहे वर।
सुगध परिमल भाव निरमल, इन्द्र आरती उतारए।।

१० होली रास

इस रास मे जैन मान्यतानुसार होली की कथा दी गई है जो अत्यधिक रोचक है। रास मे १४८ पद्य हैं जो दूहा, चोपाई एवं वस्तुबंध छंद मे विभक्त हैं।

इणि परि तिहा थी काठीआ, नयर माहि थी तेह जगया।
पापी जीवनि नहीं किहां सुख, इहिलोके परलोके पामि दुख।
वन माहि गया ते पाप, पाम्या अति दुख संताप।
धर्म पाखि रलि सहू कोइ, सोयल संयम विण मूली भमि लोइ।

इस ग्रंथ की एक प्रति जयपुर के बड़े तेरहपंथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे संग्रहीत है। रास की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

प्रजापति तेणी नयरीय राय, प्रजावती तस राणी।
गज तुरगम रथ अपार, दीई लषमी बहू मोरिण।।७।।
वसंत नाम परधाने जाणि, वसुमती तस राणी।
विष्णु भट्ट परोहित जाणि, सोमश्री तस नारी।।८।।

एक मगत करि रुपड़ाए, अज्ञात कष्ट बखाणतु।
एकादशी उपवास करिए, दीतवार सोमवारि जाणो तु।।८८।।
दान दीइ लोक अतिघणाए, गो आदि दश वखाणि तु।
मूढ माहि हवु जाणतु, मान पाम्या अति घणुए।।८९।।
इणी परि ते नयरी रहिए, लखि नही तेहनि कोइ तु।
पुराण शास्त्र पढि अति घणा ए, लोकसु माक्षल जोयतु।।९०।।

११ धर्मपरीक्षा रास—

इस रास मे मनोवेग और पवनवेग के आधार से कितनी ही कथायें दी हुई हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मानव को गलत मार्ग से हटाकर उत्तम मार्ग पर लाना है। मनोवेग शुद्धाचरण वाला है जबकि पवनवेग सन्मार्ग से भूला हुआ है। रास सुन्दर है और इसके पढने से कितनी ही अच्छी बातें उपलब्ध होती हैं।

रास में दूहा, चौपाई, भासा तथा वस्तुबन्ध छंद का प्रयोग हुआ है। भाषा एवं शैली दोनो ही अच्छी हैं। एक उदाहरण देखिये—

दूहा—

अज्ञान मिथ्यात दूर धरो, तम्हा मागलि विचार।
अवर मिथ्या तणा, पंचम काल अपार ॥१॥
इम जाणि निश्चो करी, छोडु मिथ्यात अपार।
समकित पालो निरमलो, जिम पामो भव पार ॥२॥
परीक्षा कीजि रूवडी, देव धरम गुरु चंग।
निर्दोष सासण तणो, त्रिभुवन माहि अभंग ॥३॥
ते आराधु निरमलो, पवनवेग गुणवंत।
तिमि सुख पायो अति घणो, मुगति तणो जयवंत ॥४॥
जीव आगि घण भम्यो, सत्य मारग विण थोट।
ते मारग तह्मे आचरो, जिम दुख जाइ घन घोर ॥५॥

रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

श्री सकलकीरति गुरु प्रणमीनि, मुनि भूवनकीरति अवतार।
ब्रह्म जिनदास भणि रूवडो, रास कियो सविचार ॥
धर्म परीक्षा रास निरमलो, धर्ममतणो निधान।
पढि गुणि जे सभलि, तेह उपजि मतिज्ञान ॥२॥

१२. ज्येष्ठजिनवर रास

यह एक लघु कथा कृति है जिसमे 'सोमा' ने प्रतिदिन एक घडा पानी जिन मदिर मे लेजाकर रखने की अपनी प्रतिज्ञा किन २ परिस्थितियो मे भी सफलतापूर्वक निभायी—इसका वर्णन दिया हुआ है। भाषा सरल है तथा पद्यो की सख्या १२० है।

सोमा मनि उपनु तव भाव, एक नीम देउ तमे करी पसाइ।
एक कुंभ जिनवर भवन उतग, दिन प्रति मू कि सइ मन रग ॥
एहवु नीम लीधु मन माह, एक कुंभ मेहलि मन माह।
निर्मल नीर भरी करी चग, दिन प्रति जिनवर भुवन उतग ॥

१३ श्रेणिक रास

इसमे राजा श्रेणिक के जीवन का वर्णन किया गया है राजा श्रेणिक मगध के सम्राट थे तथा भगवान महावीर के मुख्य उपासक थे। इसमे दोहा, चौपाई छद का अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा भी सरल एव सुन्दर है। एक उदाहरण देखिये—

जे जे वात निमित्ती कही, राजा आगले सार ।
ते ते सब सिद्धे गई, श्रेणिक पुन्य अपार ॥
तव राजा आमन्त्रि मनहि करि विचार ।
माहरो वोल विरथा हवु, धिग धिग एह मझार ॥
तव रासि वोलावीयु, सुमती नाम परधान ।
अवर मत्री वहु ग्रावी ग्रा, राजा दीधु वहु मान ॥

इस रास की एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सग्रहीत है। पाण्डु-लिपि मे ५२ पत्र हैं जो ९½" × ४½" आकार वाले हैं।

१४. समकित-मिथ्यात रास

यह एक लघु रास है जिसमे शुद्धाचरण पर अधिक वल दिया गया है तथा जिन्होंने अपने जीवन में सम्यक् चारित्र को उतारा है उनका नामोल्लेख किया गया है। पद्यो की सख्या ७० है। वड, पीपल, सागर, नदी एव हाथी, घोडा, खेजडा आदि को न पूजने के लिये उपदेश दिया गया है। रास की राजस्थानी भाषा है तथा वह सरल एव सुबोध है। एक उदाहरण देखिये—

गोरना देवि पुत्र देइ, तो को इवाडी यो न होइ ।
पुत्र धरम फल पामीइ, एह विचार तु जोइ ॥३॥
धरमइ पुत्र सोहावणाए, धरमइ लाछि भडार ॥
धरमइ घरि वधावणा, धरमइ रुप अपार ॥४॥
इम जाणी तह्मे धरम करो, जीव दया जगि सार ।
जीम एह्वा फल पामीइ, वलि तरीए ससारि ॥५॥

रास का अन्तिम पाठ निम्न- प्रकार है—

श्री मकलकीरति गुरु प्रणमीनए, श्री भुवनकीरति ग्रवतारतो ।
ब्रह्मजिणदास भणे ध्याइए, गाइए सरस ग्रपारतो ॥
इति समिकितरास मिथ्यातमोरास समाप्त ।

१५ सुदर्शन रास

इस रास मे सेठ सुदर्शन की कथा दी हुई है जो अपने उत्तम एव निर्मल चरित्र के कारण प्रसिद्ध था। रास के छन्दों की सख्या ३३७ है। अन्तिम छद इस प्रकार है—

साह सुदर्शन साह सुदर्शन सीयल भन्डार ।
समकित गुणे ग्रागुण पाप, मिथ्यात रहित अतिवल ॥

क्रोध मोहवि खडगु गुण, तणु भगई कहीइ ।
ते मुनिवर तणु निर्मम्नु रास कह्यु मि सार ॥
ब्रह्म जिणदास एणी परिभणि, गाइ पुन्य अपार ॥३३७॥

१६ अ विका रास

इसमे अ विका देवी का चरित्र चित्रित किया गया है। छन्दो की सख्या १५८ है। कवि ने मगलाचरण मे नेमिनाथ स्वामी को नमस्कार किया है। इस रास मे किसी गुरु का स्मरण नही किया गया है।

वीनती छद—सोरठ देस मझार जूनागढ जोगि जाणीइए।
गिरिनारि पर्वत वनि सिद्ध क्षेत्र वखाणिइए ॥

१७ नागश्री रास

इस रास मे रात्रि भोजन को लेकर नागश्री की कथा का वर्णन किया गया है। रास की एक प्रति उदयपुर के शास्त्र भण्डार के बढे गुटके मे सग्रहीत है। कवि ने अपने अन्य रासक काव्यो के समान इसकी भी रचना की है। इसमे २५३ पद्य है। रास का अन्तिम भाग देखिए—

काल घणु सुख भोगव्या, पछि ऊपनु वैरागतु।
ज्ञानसागर गुरु पामिया ए, सर्ग मुक्ति तणा भावतु।

दोहा—तेह गुरु प्रणमी करी, लीधु सयम भार ।
राजा सहित सोहामणु, पच महाव्रत सार ॥२४६॥
नागश्री श्राविका कही, राणी सहित सुजाण।
अजिका हवी अति निर्मली, धर्मनी मनी खाणि ॥२५०॥
तप जप सयम निर्मलु, पाल्यु अति गुणवत ।
सर्ग पुहता रुअडा, ध्यान वसि जयवत ॥२५१॥
नारी लिंग छेदी करी, नागश्री गुणमाल ।
सर्ग भुवनदेव हवु, रुधिवत विमाल ॥२५२॥
कीरति गुरु पाए प्रणमीनि, मुनि भुवनकीरति अवतार।
ब्रह्म जिनदास इस वीनवि, मन वछीत फल पामि ॥२५३॥

इति नागश्री रास। स. १६१६ पोष सुदि ३ रवौ।
ब्रह्म श्री घना केन लिखित ॥

१८ रविव्रत कथा

प्रस्तुत लघुकथा कृति मे जिनदास ने रविवार व्रत के महात्म्य का वर्णन किया है। इसकी भाषा अन्य कृतियो की अपेक्षा सरल एव सुबोध है। इसकी एक प्रति डूगरपुर के शास्त्र भडार के एक गुटका मे सग्रहीत है। इसमे ४६ पद्य हैं।

कृति का आदि एव अन्तिम भाग देखिए—

प्रथम नमु जिनवर ना पाय, जेहनि सुख सपति वहु थाय।
सरस्वति देवि ना पद नमु, पाप ताप सहु दूरे गमु ॥१॥
कथा कहु रुडि रविवार, जेह थी लहिए सुख भडार।
काशी देश मनोहर ठाम, नगर वसे वारानसी नाम ॥२॥
राजा राज करे महीपाल, सूरवीर गुणवत दयाल।
नगर सेठ धनवतह वसे, पूजा दान करी अघ नसे ॥३॥
पुत्र सात तेह ने गुणवत, सज्जन रुडाने चलिसत।
गुणधर लोहडो बालकुमार, तेह भणियो सवि शास्त्र विचार ॥४॥

अन्तिम—

मूल सघ मडन मनोहार, सकलकीर्त्ति जग मा विस्तार।
गया धर्म नो करे उधार, कलि काले गौतम अवतार ॥४५॥
तेहनो सीख्य ब्रह्म जिनदास, रविवार व्रत कीयो प्रकाश।
भावधरी व्रत करे से जेह, मन वाछित सुख पामे तेह ॥४६॥

इति रविव्रत कथा सम्पूर्णम्।

१९ श्रीपाल रास

यह कोटिभट श्रीपाल के जीवन पर आधारित रासक काव्य है जिसमे पुरुषार्थ पर भाग्य की विजय बतलाई गयी है। रास की एक प्रति खण्डेलवाल दि जैन मदिर उदयपुर के ग्र थ भण्डार मे सग्रहीत है। कवि ने ४४८ पद्यो मे श्रीपाल, मैना सुन्दरी, रैनमजूषा धवलसेठ आदि पात्रो के चरित्र सुन्दर रीति से लिखे गये हैं। रास की भाषा भी बोलचाल की भाषा है। रैनमजूषा का विलाप देखिये—

रयणमजूषा अवला बाल, करि विलाप तिहा गुणमाल।
हा हा स्वामी मझ तु कत, समुद्र माहि किम पडीउ पत ॥१८४॥
पर भवि जीव हिसा मि करी, सत्य वचन वल न विधकरी।
नर नारी निंदी घाग्राल, तेणि पापि मझ पडीउ जाल ॥१८५॥
कि मुनिवर निंदा करी, जिनवर पूजा कि अपहरी।
कि धर्म तदयु करयु विणास, तेणि श्राव्यु मझ दुख निवास ॥१८६॥

कृति का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

सिद्ध पूजा सिद्ध पूजा सार भवतार।
तेहनि रोग गयु राज्य पाम्यु, वलीसार मनोहर।
श्रीपाल राणु निरमलु सयम, लीधु सार मुगतिवर।
मयण स्त्रीलिंग छेद करी, स्वर्ग देव उपनु निरभर।

ध्यान वली कर्म क्षय करी, श्रीपाल गयु अवतार ।
श्री सकलकीर्ति पाए प्रणमीनि, ब्रह्म जिणदास भणिसार ॥४४८॥

इति श्रीपाल मुनिस्वररास सपूर्ण ।

२० जम्बूस्वामी रास

इसमे २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के जीवन का वर्णन किया गया है । यह रास भी उदयपुर (राज) के खण्डेलवाल दि. जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है । इसमे १००५ पद्य हैं । जो विभिन्न छन्दो मे विभक्त है । कृति के दो उदाहरण देखिए—

ढाल रासनी—

कनकवती कहि निरमलीए, कत न जाणि भेद तु ।
अधिक सुखनि कारणिए, सिद्धा तणु करि छेद तु ॥६७९॥
उवयु मेघ देखी करीए, फोडि घडा गमार तु ।
परलोक सुख कारणि, कत छोडइ ससार तु ॥६८०॥
चोसट अ नरोची करीए, धरि धरि मागि दीन तु ।
सरस कमल छोडी करीए, कोरडी चारि अ गली होन तु ॥६८१॥

अन्तिम छन्द—

रास कीधुमि अतिहि विसाल
जबुकुमर मुनि निर्मलु, अन्तिम केवली सार मनोहार ।
अनेक कथामि वरणवी, भवीयण तणी गुणवत जिनवर ।
पढि गुणि साभलि, तेस घरि रिधि अनत ।
ब्रह्म जिनदास एणी परभणि, मुकति रमणी होइ कत ॥१००५॥

२१ भद्रवाहु रास

भगवान महावीर के पश्चात होने वाले भद्रवाहु स्वामी अन्तिम श्रुत केवली थे । सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (ई पू ३ री शताब्दि) उनके शिष्य थे । भद्रवाहु का प्रस्तुत रास मे सक्षिप्त वर्णन है । इस रास की प्रति अगवाल दि जैन मन्दिर उदयपुर के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है । रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

चन्द्रप्रभजिन चन्द्रप्रभजिन नमु ते सार ।
तीर्थंकर जो आठमो वाछीत फल वहु दान दातार ।
सारद स्वामिनी वलि तवु , जोम बुद्धि सार हउ वेगि मागउ ।
गणधर स्वामी नमसकरु श्री सकल कीरति गुणसार ।
तास चरण हु प्रणमीनि, रास करु सविचार ॥

अन्तिम भाग —

> भद्रबाहु मुनी भद्रबाहु मुनी सघ धुरि सार ।
> पचम श्रु त केवली गुरू, धरम नाव स सार तारण ।
> दिगम्बर निग्रन्थ मुनि, जिन सकल उद्योत कारण ।
> ए मुनि आह्य धाइस्यु , कहीयु निरमल रास ।
> ब्रह्म जिणदास इणी परिभणो, गाइ सिवपुर वास ।

भाषा

कवि का मुख्य क्षेत्र डू गरपुर, सागवाडा, गलियाकोट, ईडर, सूरत आदि स्थान थे । ये स्थान बागड प्रदेश एव गुजरात के अन्तर्गत थे जहा जन साधारण की गुजराती एव राजस्थानी बोली थी । इसलिए इनकी रचनाओ पर भी गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है । कही कही तो ऐसा लगता है मानो कोई गुजराती रचना ही हो । इनकी भाषा को राजस्थानी की सज्ञा दी जा सकती है । यह समय हिन्दी का एक परीक्षण काल था और वह उसमे खरी सिद्ध होकर आगे बढ रही थी । ब्रह्म जिनदास के इस काल को रासो काल की सज्ञा दी जा सकती है। गुजराती शब्दो को हिन्दीवालो ने अपना लिया था और उनका प्रयोग अपनी अपनी रचनाओं मे करने लगे थे । जिसका स्पष्ट उदाहरण ब्रह्म जिनदास एव बागड प्रदेश मे होने वाले अन्य जैन कवियो की रचनाओ मे मिलता है । अजितनाथ रास के प्रारम्भ का इनका एक मगलाचरण देखिए—

> श्री सकलकीर्त्ति गुरु प्रणमीने, मुनि भुवनकीरति अवतार ।
> रास कियो मे निरमलो, अजित जिणेसर सार ।।
> पढेइ गुणेइ जे साभले, मनि धर निर्मल भाव ।
> तेह करि रिधि घर तणो, पाये शिवपुर ठाम ।।
> जिण सासण अति निरमलो, भवि भवि देउ मुहसार ।
> ब्रह्म जिनदास इम वीनवे, श्री जिणवर सुगति दातार ।।

उक्त उद्धरण मे प्रणमीने, मे, तणो शब्द गुजराती भाषा के कहे जा सकते है । इसी तरह जम्बूस्वामी रास का एक और उद्धरण देखिए—

> भवियण भावि सुणु आज हू कहिय वर वाणी ।
> जम्बू कुमार चरित्र गायसू मधुरीय वाणी ।। २ ।।
> अन्तिम केवली हवु चग जम्बूस्वामी गुणवत ।
> रूप सोभा अपार सार सुललित जयवत ।। ३ ।।
> जम्बू द्वीप मझार सार भरत क्षेत्र जाणु ।
> भरत क्षेत्र माहि देव सार मगव वखाणु ।। ४ ।।

उक्त पद मे हवु, चग गुजराती भाषा के कहे जा सकते हैं। इस तरह कवि अपनी रचनाओ मे गुजराती भाषा के कही कम और कही अधिक शब्दो का प्रयोग करते हैं लेकिन इससे कवि की कृतियो की भाषा को राजस्थानी मानने मे कोई आपत्ति नही हो सकती।

इस प्रकार कवि जिनदास अपने युग का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि कहे जा सकते हैं। इन्होने अपनी रचनाओ के द्वारा हिन्दी के कवियो का वातावरण तयार करने मे अत्यधिक सहयोग दिया और इनका अनुसरण इनके बाद होने वाले कवियो ने किया। इतना ही नही इन्होने जिन छन्दो एव शैली मे कृतियो का सृजन किया उन्ही छन्दो का इनके परवर्ती कवियो ने उपयोग किया। वस्तुबध छन्द इन्हीं का लाडला छन्द था और ये इस छन्द का उपयोग अपनी रचनाओ मे मुख्यत करते रहे हैं। दूहा, चउपई एव भास जिसके कितने ही रूप हैं, इनकी रचनाओ मे काफी उपयोग हुआ है। वास्तव मे इनकी कृतिया छन्द शास्त्र का अध्ययन करने के लिये उत्तम साधन है।

मूल्याकन :

'ब्रह्म जिनदास' की कृतियो का मूल्याकन करना सहज कार्य नही है, क्योकि उनकी सख्या ६० से भी ऊपर है। वे महाकवि थे, जिनमे विविध विषयक साहित्य को निवद्ध करने का अद्भुत सामर्थ्य था। भ० सकलकीर्त्ति एव भुवनकीर्त्ति के सघ में रहना, दोनो के समय समय पर दिये जाने वाले आदेशो को भी मानना, समारोह एव अन्य आयोजनो मे तथा तीर्थयात्रा सघ मे भी उनके साथ रहना और अपने पद के अनुसार आत्मसाधना करना आदि के अतिरिक्त ६० से अधिक कृतियो को निवद्ध करना उनकी अलौकिक प्रतिभा का सूचक है। कवि की सस्कृत भाषा मे निवद्ध रामचरित एव हरिवश पुराण तथा हिन्दी भाषा में निबद्ध रामसीता रास, हरिवश पुराण, आदिनाथ पुराण आदि कृतिया महाकाव्य के समकक्ष की रचनाये हैं–जिनके लेखन मे कवि को काफी समय लगा होगा। 'ब्रह्म जिनदास' ने हिन्दी भाषा मे इतनी अधिक कृतियो की उस समय रचना की थी–जव 'हिन्दी' लोकप्रिय भाषा भी नही वन सकी थी और सस्कृत भाषा मे काव्य रचना को पाण्डित्य की निशानी समझी जाती थी। कवि के समय मे तो सभवत 'महाकवि कवीरदास' को भी वर्तमान शताब्दि के समान प्रसिद्धि प्राप्त नही हुई थी। इसलिये कवि का हिन्दी प्रेम सर्वथा स्तुत्य है।

कवि की कृतियो मे काव्य के विविध लक्षणो का समावेश है। यद्यपि प्राय सभी काव्य शान्त रस पर्यवसानी है, लेकिन वीर, शृगार, हास्य आदि रसो का यत्र तत्र अच्छा प्रयोग हुआ है। कवि में काव्य के आकर्षक रीति से कहने की क्षमता है। उसने अपने काव्यो को न तो इतना अधिक जटिल ही वनाया कि पाठको का पढना

ही कठिन हो जावे और न वे इतने सरल हैं कि उनमे कोई आकर्षण ही बाकी न बचे। उन्होंने काव्य रचना मे अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया--यही कारण है कि कवि के काव्य सदैव लोकप्रिय रहे और राजस्थान के सैकड़ो जैन ग्रथ भडार इनके काव्यो की प्रतिलिपियो से समालकृत है।

आचार्य सोमकीत्ति

आचार्य सोमकीत्ति १५ वी शताब्दी के उद्भट विद्वान, प्रमुख साहित्य सेवी एव उत्कृष्ट जैन सत थे। उन्होंने अपने जीवन के जो लक्ष्य निर्धारित किये उनमे उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। वे योगी थे। आत्म साधना मे तत्पर रहते और अपने शिष्यो, साथियो तथा अनुयायियो को उस पर चलने का उपदेश देते। वे स्वाध्याय करते, साहित्य सृजन करते एव लोगो को उसकी महत्ता बतलाते। यद्यपि अभी तक उनका अधिक साहित्य नही मिल सका है लेकिन जितना भी उपलब्ध हुआ है उस पर उनकी विद्वत्ता की गहरी छाप है। वे सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, राजस्थानी एव गुजराती आदि कितनी ही भाषाओ के ज्ञाता थे। पहिले उन्होंने जन साधारण के लिये हिन्दी राजस्थानी मे लिखा और फिर अपनी विद्वता बतलाने के लिये कुछ रचनाये सस्कृत मे भी निबद्ध की। उनका प्रमुख क्षेत्र राजस्थान एव गुजरात रहा और इन प्रदेशो मे जीवन भर विहार करके जन साधारण के जीवन को ज्ञान, एव आत्म साधना की दृष्टि से ऊ चा उठाने का प्रयास करते रहे। उन्होने कितने ही मन्दिरो की प्रतिष्ठाये करवायी, सास्कृतिक समारोहो का आयोजन करवाया और इन सबो द्वारा सभी को सत्य मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया। वास्तव मे वे अपने समय के भारतीय सस्कृति, साहित्य एव शिक्षा के महान प्रचारक थे।

आचार्य सोमकीत्ति काष्ठा सघ के नन्दीतट शाखा के सन्त थे तथा १० वी शताब्दि के प्रसिद्ध भट्टारक रामसेन की परम्परा मे होने वाले भट्टारक थे। उनके दादा गुरु लक्ष्मीसेन एव गुरु भीमसेन थे। सवत १५१८ (सन् १४६१) मे रचित एक ऐतिहासिक पट्टावली मे अपने आपको काष्ठासघ का ८७ वा भट्टारक लिखा है। इनके गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध मे हमें अब तक कोई प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध नही हो सकी है। वे कहा के थे, कौन उनके माता पिता थे, वे कब तक गृहस्थ रहे और कितने समय पश्चात इन्होने साधु जीवन को अपनाया इसकी जानकारी अभी खोज का विषय है। लेकिन इतना अवश्य है कि ये सवत १५१८ मे भट्टारक बन चुके थे

श्रौर इसी वर्ष इन्होने अपने पूर्वजो का इतिहास लिपिवद्ध किया था [1]। श्री विद्यावर जोहरापुरकर ने अपने भट्टारक सम्प्रदाय मे इनका समय सवत १५२६ से १५४० तक का भट्टारक काल दिया है। यह इस पट्टावली से मेल नही खाता। सभवत उन्होने यह समय इनकी सस्कृत रचना सप्तव्यसनकथा के आधार पर दे दिया मालूम देता है क्योकि कवि ने इस रचना को स० १५२६ मे समाप्त किया था। इनकी तीन सस्कृत रचनाओ मे से यह प्रथम रचना है।

सोमकीर्त्ति यद्यपि भट्टारक थे लेकिन ये श्रपने नाम के पूर्व आचार्य लिखना अधिक पसन्द करते थे। ये प्रतिष्ठाचार्य का कार्य भी करते थे श्रौर उनके द्वारा सम्पन्न प्रतिष्ठाओ का उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है—

१. सवत १५२७ वैशाख सुदि ५ को इन्होने वीरसेन के साथ नरसिंह एव उसकी भार्या सापडिया के द्वारा आदिनाथ स्वामी की मूर्ति की स्थापना करवायी थी [2]।

२ सवत् १५३२ मे वीरसेन सूरि के साथ शीतलनाथ की मूर्ति स्थापित की गयी थी।[3]

---

१. श्री भीमसेन पट्टाधरण गछ सरोमणि कुल तिलो।
जाणति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्ति मुनिवर भलो ॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु।
श्रवकवार पचमी बहुल पख्यह वखाणु ॥
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोझोत्रि पुरवरि।
सन्यासा वर पाठ तणु प्रवन्घ जिणि परि ॥
जिनवर सुपास भवनि कीउ, श्री सोमकीर्त्ति वहु भाव धरि।
जयवत उरवि तलि विस्तरू श्री शातिनाथ सुपसाउ करि ॥

×   ×   ×   ×

२ सवत १५२७ वर्ष वैशाख सुदी ५ गुरौ श्री काष्ठासघे नदतट गच्छे विद्यागणे भट्टारक श्री सोमकीर्त्ति आचार्य श्री वीरसेन युगवै प्रतिष्ठिता। नरसिंह राज्ञा भार्या सापडिया गोत्रे · · लाखा भार्या माकू देल्हा भार्या मानू पुत्र वना सा. कान्हा देल्हा केन श्री आदिनाथ विम्व कारापिता।

सिरमौरियो का मन्दिर जयपुर।

३ भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या—२९३

३ सवत् १५३६ मे अपने शिष्य वीरसेन सूरि के साथ हूवड जातीय श्रावक भूपा भार्या राज के अनुरोध से चौवीसी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी।[1]

४ सवत् १५४० मे भी इन्होने एक मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवायी।[2]

ये मत्र शास्त्र के भी ज्ञाता एव अच्छे साधक थे। कहा जाता है कि एक वार इन्होने सुल्तान फिरोजशाह के राज्यकाल मे पावागढ मे पद्मावती की कृपा से आकाश गमन का चमत्कार दिखलाया था।[3] अपने समय के मुगल सम्राट से भी इनका अच्छा सवध था। ब्र० श्री कृष्णदास ने अपने मुनिसुव्रत पुराण (र. का. स १६८१) मे सोमकीर्त्ति के स्तवन मे इनके आगे "यवनपतिकराभोजसपूजिताह्नि" विशेषण जोडा है।[4]

शिष्यगण

सोमकीर्ति के वैसे तो कितने ही शिष्य थे जो इनके सघ में रहकर धर्म-साधन किया करते थे। लेकिन इन शिष्यो मे, यश कीर्ति, वीरसेन, यशोधर आदि का नाम मुख्यत गिनाया जा सकता है। इनकी मृत्यु के पश्चात् यश कीर्ति ही भट्टारक बने। ये स्वय भी विद्वान थे। इसी तरह आचार्य सोमकीर्त्ति के दूसरे शिष्य यशोधर की भी हिन्दी की कितनी ही रचनाएँ मिलती हैं। इनकी वाणी मे जादू था इसलिये ये जहा भी जाते वही प्रशमको की पक्ति खडी हो जाती थी। सघ मे मुनि-आर्यिका, ब्रह्मचारी एव पडितगण थे जिन्हे धर्म प्रचार एव आत्म-साधना की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

विहार

इन्होने अपने विहार से किन २ नगरो, गावो एव देशो को पवित्र किया इसक कही स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है लेकिन इनकी कुछ रचनाओ मे जो रचना

---

१ सवत् १५३६ वर्षे वैशाख सुदी १० बुधे श्री काष्टासघे वागडगच्छे नदी तट गच्छे विद्यागणे भ० श्री भीमसेन तत् पट्टे भट्टारक श्री सोमकीर्त्ति शिष्य आचार्य श्रीवीरसेनयुक्तै प्रतिष्ठित हुवड, जातीय वध गोत्रे गाधी भूपा भार्या राज सुत गाधी, मना, भार्या-काऊ सुत रूडा भार्या लाडिकि सघवी मना केन श्री आदिनाथ चतुर्विशतिका प्रतिष्ठापिता।

मदिर लूणकरणजी पाड्या जयपुर

२ भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या—२९३

३ ,, ,, ,, २९३

४ प्रशस्ति सग्रह ,, ४७

स्थान दिया हुआ है उसी के आधार पर इनके विहार का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। सवत् १५१८ मे सोजत नगर मे थे और वहा इन्होंने सभवत. अपनी प्रथम ऐतिहासिक रचना 'गुर्वावलि' को समाप्त किया था। सवत् १५३६ मे गोढिलीनगर मे विराज रहे थे यही इन्होंने यशोधर चरित्र (सस्कृत) को समाप्त किया था तथा फिर यशोधर चरित (हिन्दी) को भी इसी नगर मे निबद्ध किया था।

साहित्य-सेवा

सोमकीर्ति अपने समय के प्रमुख साहित्य सेवी थे। सस्कृत एव हिन्दी दोनो मे ही उनकी रचनाये उपलब्ध होती हैं। राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे इनकी अब तक निम्न रचनाये प्राप्त हो चुकी हैं—

सस्कृत रचनाये

(१) सप्तव्यसनकथा

(२) प्रद्युम्नचरित्र

(३) यशोधरचरित्र

राजस्थानी रचनायें

(१) गुर्वावलि

(२) यशोधर रास

(३) रिषभनाथ की धूलि

(४) मल्लिगीत

(५) आदिनाथ विनती

(६) त्रेपनक्रिया गीत

इन रचनाओ का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है-

(१) सप्तव्यसनकथा

यह कथा साहित्य का अच्छा ग्रन्थ है जिसमे सात व्यसनो[1] के आधार पर सात कथायें दी हुई है। ग्रन्थ के भी सात ही सर्ग हैं। आचार्य सोमकीर्ति ने इसे सवत् १५२६ मे माघ सुदी प्रतिपदा को समाप्त किया था।

---

१ जैनाचार्यों ने—जुआ खेलना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या सेवन, पर स्त्री सेवन, तथा मद्य एव मास सेवन करने को सप्त व्यसनो मे गिनाया है।

रस नयन समेते वाण युक्तेन चन्द्रे (१५२६)
गतवति सति नून विक्रमस्यैव काले
प्रतिपदि धवलाया माघमासस्य सोमे
हरिभदिनमनोज्ञे निर्मितो ग्रन्थ एष ॥७१॥

(२) प्रद्युम्नचरित्र

यह इनका दूसरा प्रवन्ध काव्य है जिसमे श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन-चरित अङ्कित है। प्रद्युम्न का जीवन जैनाचार्यों को अत्यधिक आकर्षित करता रहा है। अब तक विभिन्न भाषाओ मे लिखी हुई प्रद्युम्न के जीवन पर २५ से भी अधिक रचनायें मिलती हैं। प्रद्युम्न चरित सुन्दर काव्य है जो १६ सर्गों मे विभक्त है। इसका रचना काल स० १५३१ पौष सुदी १३ बुधवार है।

सवत्सरे सत्तिथिसज्ञके वै वर्षेऽत्र त्रिशैकयुते (१५३१) पवित्रे
विनिर्मित पौषसुदेश्च तस्या त्रयोदशीव बुधवारयुक्ता ॥१६९

(३) यशोधर चरित्र

कवि 'यशोधर' के जीवन से सभवत बहुत प्रभावित थे इसलिए इन्होने सस्कृत एव हिन्दी दोनो मे ही यशोधर के जीवन का यशोगान गाया है। यशोधर चरित्र आठ सर्गो का काव्य है। कवि ने इसे सवत् १५३६ मे गोढिली (मारवाड) नगर में निवद्ध किया था।

नदीतटाख्यगच्छे वशे श्रीरामसेनदेवस्य
जातो गुणार्णवैकश्च श्रीमान् श्रीभीमसेनेति ॥६०॥
निर्मित तस्य शिष्येण श्री यशोधरसज्ञक।
श्रीसोमकीर्त्तिमुनिना विशोध्याऽधीयता बुधा ॥६१॥
वर्षे षटत्रिंशसख्ये तिथि पर गणना युक्त सवत्सरे (१५३६) वै।
पचम्या पौषकृष्णे दिनकरदिवसे चोत्तरास्य हि चद्रे।
गोढिल्या मेदपाटे जिनवरभवने शीतलेन्द्ररम्ये।
सोमादिकीर्त्तिनेद नृपवरचरित निर्मित शुद्धभक्त्या ॥

राजस्थानी रचनाये

(१) गुर्वावलि

यह एक ऐतिहासिक रचना है जिसमे कवि ने अपने सघ के पूर्वाचार्यों का सक्षिप्त वर्णन दिया है। यह गुर्वावलि सस्कृत एव हिन्दी दोनो भाषाओ मे लिखी हुई

है। हिन्दी में गद्य पद्य दोनों का ही उपयोग किया गया है। भाषा वैचित्र्य की दृष्टि से रचना का अत्यधिक महत्व है। सोमकीर्ति ने इसे संवत् १५१८ में समाप्त किया था इसलिए उस समय की प्रचलित हिन्दी गद्य की इस रचना से स्पष्ट झलक मिलती है। यह कृति हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास की विलुप्त कड़ी को जोड़ने वाली है।

इस पट्टावली में काष्ठासंघ का अच्छा इतिहास है। कृति का प्रारम्भ काष्ठा संघ के ४ गच्छों से होता है जो नन्दीतटगच्छ, माथुरगच्छ, बागडगच्छ, एवं लाडबागड गच्छ के नाम से प्रसिद्ध थे। पट्टावली में आचार्य अर्हद्‌बलि को नन्दीतट गच्छ का प्रथम आचार्य लिखा है। उसके पश्चात अन्य आचार्यों का संक्षिप्त इतिहास देते हुए ८७ आचार्यों का नामोल्लेख किया है। ८७ वे भट्टारक आचार्य सोमकीर्त्ति थे। इस गच्छ के आचार्य रामसेन ने नरसिंहपुरा जाति की तथा नेमिसेन ने भट्टपुरा जाति की स्थापना की थी। नेमिसेन पर पद्मावती एवं सरस्वती दोनों की कृपा थी और उन्हें आकाशगामिनी विद्या सिद्ध थी।

रचना का प्रथम एवं अन्तिम भाग निम्न प्रकार है —

नमस्कृत्य जिनाधीशान्, सुरासुरनमस्कृतान्।
वृषभादिवीरपर्यंतान् वक्ष्ये श्रीगुरुपद्धित ॥१॥
नमामि शारदा देवीं विवुधानन्ददायिनीम्।
जिनेन्द्रवदनाभोज, हंसनी परमेश्वरीम् ॥२॥
चारित्रार्णवगंभीरान् नत्वा श्रीमुनिपुंगवान्।
गुरुनामावली वक्ष्ये समासेन स्वशक्तित ॥३॥
दूहा–जिण चुवीसह पायनमी, समरवि शारदा माय।
कट्ठ संघ गुण वर्णवु, पणमवि गणहर पाइ ॥४॥

× × × × ×

काम कोह मद मोह, लोह आवतुटालि।
कट्ठ संघ मुनिराउ, गच्छ इणी परि अजूयालि॥
श्रीलक्ष्मसेन पट्टोधरण पावपक छिप्पि नही।
जो नरह नरिंदे वदीइ, श्री भीमसेन मुनिवरसही॥
सुर गिरि सिरि को चडै, पाउ करि अति बलवन्तो।
कवि रणायर नीर तीर पुहु तउय तरतौ॥
को आयास पमाण हत्थ करि गहि कमतो।
कट्ठसंघ संघ गुण परिलहिविह कोइ लहतो॥
श्री भीमसेन पट्टह धरण गछ सरोमणि कुलतिलौ।
जाणति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्त्ति मुनिवर भलौ॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु,
अक्कवार पचमी, बहुल पख्यह बखाणु ।
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोझीत्रि पुरवरि,
सत्तासी वर-पाट तणु भवघ जिणि परि ॥
जिनवर सुपास भवनि कीउ, श्री सोमकीर्त्ति बहुभावधरि ।
जयवतउ रवि तलि विस्तरु, श्री शान्तिनाथ सुपसाउ करि ॥

२ यशोधर रास —

यह कवि की दूसरी बडी रचना है जो एक प्रकार से प्रवन्व काव्य है । इस रचना के सम्बन्ध मे अभी तक किसी विद्वान् ने उल्लेख नही किया है। इसलिए यशोधर रास कवि की अलभ्य कृतियो मे से दूसरी रचना है । सोमकीर्त्ति ने सस्कृत मे भी यशोधर चरित्र की रचना की थी जिसे उन्होने सवत् १५३६ मे पूर्ण किया था । 'यशोधररास' सभवत इसके बाद की रचना है जो इन्होने अपने हिन्दी, राजस्थानी गुजराती भाषा भाषा पाठको के लिए निवद्ध की थी ।

"आचार्य सोमकीर्ति" ने 'यशोधर रास' को गुढलीनगर के शीतलनाथ स्वामी के मन्दिर मे कार्तिक सुदी प्रतिपदा को समाप्त किया था ।

सोधीय एहज रास करीय सावुवली थापिचुए ।
कातीए उजलि पाखि पडिवा बुधचारि कीउए ॥
सीतलु ए नाथि प्रासादि गुढली नयर सोहामणु ए ।
रिधि वृद्धि ए श्रीपास पासाउ हो जो निति श्रीसघह घरिए ।
श्री गुरुए चरण पसाउ श्री सोमकीरति सूरि भणुए ॥

'यशोघर रास' एक प्रवन्ध काव्य है, जिसमें राजा यशोघर के जीवन का मुख्यत वर्णन है । सारा काव्य दश ढालो में विभक्त है । ये ढालें एक प्रकार से सर्ग का काम देती हैं । कवि ने यशोघर की जीवन कथा सीधो प्रारम्भ न करके साधु युगल से कहलायी है, जिसे सुनकर राजा मारिदत्त स्वय भी हिसक जीवन को छोडकर जैन साधु की दीक्षा धारण कर लेता है एव चडमारि देवी का प्रमुख उपासक भी हिसावृत्ति को छोडकर अहिसक जीवन व्यतीत करता है । 'रास' की समूची कथा अहिसा को प्रतिपादित करने के लिये कही गई है, किन्तु इसके अतिरिक्त रास में मन्य वर्णन भी अच्छे मिलते हैं । 'रास' मे एक वर्णन देखिए—जिसमे बसन्त ऋतु आने पर वन मे कोयल कूज उठती है एव मोरो की झकार सुनाई देती है—

कोइल करइं टहुकडाए, मधुकर झंकार करी ।
जातज सब तणीअे वनह मझार वन देखी गुनिराउ मणि ।
इहाँ नही सुख काज सुजनार यतिवर रहितु आवि साज ॥

राजा यशोधर ने बाल्यावस्था मे कौन-कौन से ग्रथो का अध्ययन किया —इसका एक वर्णन पढिये—

राउ अति तव सह सहतु, गुणउ नरेसर आज ।
पंडित जेह सुजाणीउ, सीधो सु जे सुत काज ॥
गुणनि काव्य अलंकार, तर्क सिद्धान्त प्रमाण ।
भरहनाट छदसु पिंगल, नाटक ग्रथ पुराण ॥
आगम ज्योतिष वैदक हय नर पशुगनु जेह ।
पंच पख्यानो सेरी राउ सइ करवानो तेह ॥
सालो सालि विरोहीड, रुठा मनावीड जेम ।
कागल पत्र समाचार, रसोयनी पाई तेम ॥
इन्द्रजाल रस भेद जे स्नग नइ भूषनु कर्म ।
पाप निवारण बादन नृत्य नाटि जे मर्म ॥

कवि के समय मे एक विद्वान के लिए किन २ ग्रथो का अध्ययन आवश्यक था, यह इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है ।

'यशोधर रास' की भाषा राजस्थानी है, जिसमे कही कही गुजराती के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है । वर्णन शैली की दृष्टि से रचना यद्यपि साधारण है लेकिन यह उस समय की रचना है, जब कि सूरदास, मीरा एव तुलसीदास जैसे कवि साहित्याकाश मे मडराये भी नही थे । ऐसी अवस्था मे हिन्दी भाषा के अध्ययन की दृष्टि से रचना उत्तम है एव साहित्य के इतिहास मे उल्लेखनीय है । १६ वी शताब्दि की इतनी प्राचीन रचना इतने अच्छे ढग से लिखी हुई बहुत कम मिलेगी ।

३ आदिनाथ विनती

यह एक लघु स्तवन है [1] जिसमे 'आदिनाथ' का यशोगान गाया गया है । यह स्तवन नैणवा के शास्त्र भन्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है ।

५ त्रेपनक्रियागीत

श्रावको के पालने योग्य त्रेपन क्रियाओ की इस गीत मे विशेषता वर्णित की गई है । अन्तिम पद्य देखिए—

सोमकीर्त्ति गुरू केरा वाणी, भवीक जनि मनि आणी
त्रिपन क्रिया जे नर गाई, ते स्वर्ग मुगति पथ वाइ ।।
सहीए त्रिपन किरिया पालु, पाप मिथ्यातज टालु ।।

५ ऋषभनाथ की धूल—इसमे ४ ढाल है, जिनमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के सक्षिप्त जीवन कथा पर प्रकाश डाला गया है। भाषा पूरे रूप मे जन भाषा है। प्रथम ढाल को पढ़िये—

प्रणमवि जिणवर पाउ, तु गड त्रिहु भवन नुए ।
समरवि सरसति देव तु सेवा सुरनर करिए ।।
गाइसु आदि जिणद आणद अति उपजिए ।।
कौशल देश मझार तु सुमार गुण आगलुए ।
नाभि नरिंद सुरिंद जिसु सुरपुर वराए ।
मुरा देवी नाम अरघगि सुरगि रमा जिसी ए ।
राउ राणी सुख सेजि सुहेजाइ नितु रमिए ।
इ द्र आदेश सुवेस आवीस सुर किन्यकाए ।
केवि सिर छत्र धरति करति केवि धूपणाए ।
केवि उगट केइ अ गि सुचगि पूजा धणीए ।
केवि अमर वहू भगि आभगीय आणवहिए ।
केवि सयन अनि आसन भोजन विधि करिए ।
केवि खडग धरी हाथि सो सावइ नितु फरिए ।।
मुरा देवि भगति चिकाजि सुलाज न मनि धरिए ।
जू जूया करि सवि वेपु तु, मामन परिहरिए ।
गरम सोधकरि भाव तु गाइ सुव जिन तणाए ।
वरसि अहूठए कोडि कर्र जोडि सो व्रण तणीए ।
दिव दिन नाभि निवार मो त्रारि वा दु ख घणीए ।
एक दिवस मुरा देवो सो भेवीड जक्षणीए ।
पुढीय सेजि समाधि सु आभकोद आसणीए ।

तिणि कारणि तुझ पय कमलो सरण पयवउ हेव,
राखि क्रिया करे महरीय राव कि केव ।
नव विधि जिस धरि सपजिए अहनिशि जपता नाम ।
आवि तीर्थंकर आदिगुरू आदिनाथ आदिदेव ।
श्री सोमकीर्त्ति मुनिवर भणिए भवि-भवि तुझ पाय सेव ।।

—आदिनाथ वीनति

उक्त कृति नैणवां (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में मे संग्रहीत है। गुटका ब्र. यशोधर द्वारा लिखित है। ब्र. यशोधर भ. सोमकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे।

मूल्यांकन—

'सोमकीर्ति' ने संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के माध्यम से जगत् को अहिंसा का सन्देश दिया। यही कारण है कि इन्होंने यशोधर के जीवन को दोनों भाषाओं में निबद्ध किया। भक्तिकाव्य के लिखने में इनकी विशेष रुचि थी। इसीलिए इन्होंने 'ऋषभनाथ की धूल' एवं 'आदिनाथ-विनती' की रचना की थी। इनके अभी और भी पद मिलने चाहिए। सोमकीर्ति की इतिहास-कृतियों में भी रुचि थी। गुर्वावलि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह रचना जैनाचार्यों एवं भट्टारकों की विलुप्त कड़ी को जोड़ने वाली है।

कवि ने अपनी कृतियों में 'राजस्थानी भाषा' का प्रयोग किया है। ब्रह्म जिनदास के समान उसकी रचनाओं में गुजराती भाषा के शब्दों का इतना अधिक प्रयोग नहीं हो सका है। यही नहीं इनकी भाषा में सरसता एवं लचकीलापन है। छन्दों की दृष्टि से भी वह राजस्थानी के अधिक निकट है।

कवि की दृष्टि से वही राज्य एवं उसके ग्राम, नगर श्रेष्ठ माने जाने चाहिए, जिनमें जीव वध नहीं होता है, सत्याचरण किया जाता हो तथा नारी समाज का जहां अत्यधिक सम्मान हो। यही नहीं, जहा के लोग अपने परिग्रह-संचय की सीमा भी प्रतिदिन निर्धारित करते हो और जहा रात्रि को भोजन करना भी वर्जित हो?

वास्तव मे इन सभी सिद्धान्तों को कवि ने अपने जीवन मे उतार कर फिर उनका व्यवहार जनता द्वारा सम्पादित कराया जाना चाहा था।

'सोमकीर्त्ति' ने अपने दोनों काव्यों मे 'जैनदर्शन' के प्रमुख सिद्धान्त 'अहिंसा' एवं 'अनेकान्तवाद' का भी अच्छा प्रतिपादन किया है।

नारी समाज के प्रति कवि के अच्छे विचार नहीं थे। 'यशोधर रास' मे स्वयं महारानी ने जिस प्रकार का आचरण किया और अपने रूपवान पति को धोखा देकर एक कोढी के पास जाना उचित समझा तो इस घटना से कवि को नारी-समाज को कलंकित करने का अवसर मिल गया और उसने अपने रास मे निम्न शब्दों मे उसकी भर्त्सना की—

---

१ धर्म अहिंसा मनि धरी ए मा, बोलि म कूडिय साखि।
चोरीय वात तुं मां करे से मा, परनारि सहि टाली।
परिग्गह सख्या नितु करे ए, गुरुवाणि सदापालि॥

नारी विसहर वेल, नर वंचेवाए घडीए।
नारीयें नागज मोहल, नारी नरक गती सदीए।
कुटिल पणानी सोणि, नारी नीचह गामिनीए।
साचु न बोलि वाणि, वीधिण सापिण अगनि सिखाए।।

एक स्थान पर आचार्य सोमकीर्ति ने आत्महत्या को बड़ा भारी पाप बताया और कहा—"आतम हित्या पाप जिरह देता लागसि"

इस प्रकार 'आ० सोमकीर्ति' अपने समय के हिन्दी एवं सस्कृत के प्रतिनिधि कवि थे इसलिए उनकी रचनाओं को हिन्दी साहित्य में उचित सम्मान मिलना चाहिए।

भट्टारक ज्ञानभूषण

अब तक की खोज के अनुसार ज्ञानभूषण नाम के चार भट्टारक हुए हैं। इसमें सर्व प्रथम भ. सकलकीर्त्ति की परम्परा में भट्टारक भुवनकीर्त्ति के शिष्य थे जिनका विस्तृत वर्णन यहां दिया जा रहा है। दूसरे ज्ञानभूषण भ. वीरचन्द्र के शिष्य थे जिनका सम्बन्ध सूरत शाखा के भ. देवेन्द्रकीर्त्ति की परम्परा में था। ये संवत् १६०० से १६१६ तक भट्टारक रहे। तीसरे ज्ञानभूषण का सम्बन्ध अटेर शाखा से रहा था और इनका समय १७ वीं शताब्दि का माना जाता है। और चौथे ज्ञानभूषण नागौर जाति के भट्टारक रत्नकीर्त्ति के शिष्य थे। इनका समय १८ वीं शताब्दि का अन्तिम चरण था।

प्रस्तुत भ. ज्ञानभूषण पहिले भ. विमलेन्द्र कीर्त्ति के शिष्य थे और बाद में इन्होंने भ. भुवनकीर्त्ति को भी अपना गुरु स्वीकार कर लिया। ज्ञानभूषण एवं ज्ञानकीर्त्ति ये दोनों ही सगे भाई एवं गुरु भाई थे और वे पूर्वा गोलालारे जाति के श्रावक थे। लेकिन संवत् १५३५ में सागवाड़ा एवं नोगाम में एक साथ तथा एक ही दिन आयोजित होने के कारण दो भट्टारक परम्पराएं स्थापित हो गयी। सागवाड़ा में होने वाली प्रतिष्ठा के संचालक थे भ. ज्ञानभूषण और नोगाम की प्रतिष्ठा महोत्सव का संचालन ज्ञानकीर्त्ति ने किया। यहीं से भ. ज्ञानभूषण बडसाजनों के भट्टारक माने जाने लगे और भ. ज्ञानकीर्त्ति लोहडसाजनों के गुरु कहलाने लगे।

देखिए भट्टारक पट्टावलि—शास्त्र भण्डार भ. यश कीर्त्ति दि० जैन सरस्वती भवन ऋषभदेव (राज)

एक नन्दिसंघ की पट्टावली से ज्ञात होता है कि ये गुजरात के रहने वाले थे। गुजरात में ही उन्होंने सागार धर्म धारण किया, अहीर (आभीर) देश में ग्यारह प्रतिमाएं धारण की और वाग्वर या वागड देश में दुर्धर महाव्रत ग्रहण किए। तलव देश के यतियों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। तैलव देश के उत्तम पुरुषों ने उनके चरणों की वन्दना की, द्रविड देश के विद्वानों ने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्र में उन्हें बहुत यश मिला, सौराष्ट्र के धनी श्रावकों ने उनके लिए महामहोत्सव किया, रायदेश (ईडर के आस पास का प्रान्त) के निवासियों ने उनके वचनों को अतिशय प्रमाण माना। मेरुभाट (मेवाड) के मूर्ख लोगों को उन्होंने प्रतिबोधित किया, मालवे के भव्य जनों के हृदय-कमल को विकसित किया, मेवात में उनके अध्यात्म रहस्यपूर्ण व्याख्यान से विविध विद्वान् श्रावक प्रसन्न हुए। कुरुजांगल के लोगों का अज्ञान रोग दूर किया, वैराठ (जयपुर के आस पास) के लोगों को उभय मार्ग (सागार अनगार) दिखलाये, नमियाड (नीमाड) में जैन धर्म की प्रभावना की। भैरव राजा ने उनकी भक्ति की, इन्द्रराज ने चरण पूजे, राजाधिराज देवराज ने चरणों की आराधना की। जिन धर्म के आराधक मुदलियार, रामनाथराय, बोम्मरसराय, कल्पराय, पाण्डुराय आदि राजाओं ने पूजा की और उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की। व्याकरण-छन्द-अलंकार-साहित्य-तर्क-आगम-अध्यात्म आदि शास्त्र रूपी कमलों पर विहार करने के लिए वे राज हंस थे और शुद्ध ध्यानामृत-पान की उन्हें लालसा थी [1]। उक्त विवरण कुछ अतिशयोक्ति-पूर्ण भी हो सकता है लेकिन इतना तो अवश्य है कि ज्ञानभूषण अपने समय के प्रसिद्ध सन्त थे और उन्होंने अपने त्याग एवं विद्वत्ता से सभी को मुग्ध कर रखा था।

ज्ञानभूषण भ० भुवनकीर्त्ति के पश्चात् सागवाड़ा में भट्टारक गादी पर बैठे। अब तक सबसे प्राचीन उल्लेख सम्वत् १५३१ वैशाख बुदी २ का मिलता है जब कि इन्होंने डूंगरपुर में आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव का संचालन किया था। उस समय डूंगरपुर पर रावल सोमदास एवं रानी गुराई का शासन था [2]। श्री जोहारपुरकर ने ज्ञानभूषण का भट्टारक काल संवत १५३४ से माना है [3] लेकिन यह काल

१ देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास
पृष्ठ संख्या ३८१-३८२

२ संवत् १५३१ वर्षे वैसाख बुदी ५ बुधे श्री मूलसंघे भ० श्री सकलकीर्त्ति-स्तत्पट्टे भ. भुवनकीर्त्तिदेवास्तत्पट्टे भ श्री ज्ञानभूषणदेवस्तदुपदेशात् मेघा भार्या टीगू प्रणमति श्री गिरिपुरे रावल श्री सोमदास राज्ञी गुराई सुराज्ये।

३ देखिये-भट्टारक सम्प्रदाय-पृष्ठ संख्या-१५८

किस आधार पर निर्धारित किया है इसका कोई उल्लेख नही किया। श्री नाथूराम प्रेमी ने भी 'जैन साहित्य और इतिहास मे' इनके काल के सबन्ध से कोई निश्चित मत नही लिखा। केवल इतना ही लिखकर छोड दिया कि 'विक्रम सवत १५३४-३५ और १५३६ के तीन प्रतिमा लेख और भी हैं जिनसे मालूम होता है कि उक्त सवतो मे ज्ञानभूषण भट्टारक पद पर थे। डा० प्रेमसागर ने अपनी "हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि"[1] मे इनका भट्टारक काल सवत १५३२-५७ तक समय स्वीकार किया हैं। लेकिन डूगरपुर वाले लेख से यह स्पष्ट है कि ज्ञानभूषण सवत् १५३१ अथवा इससे पहिले भट्टारक गादी पर बैठ गये थे। इस पद पर वे सवत् १५५७-५८ तक रहे। सवत १५६० मे उन्होने तत्वज्ञान तरगिणी की रचना समाप्त की थी इसकी पुष्पिका मे इन्होने अपने नाम के पूर्व 'मुमुक्षु' शब्द जोडा है जो अन्य रचनाओ मे नही मिलता। इससे ज्ञात होता है कि इसी वर्ष अथवा इससे पूर्व ही इन्होंने भट्टारक पद छोड दिया था।

सवत् १५५७ तक ये निश्चित रूप से भट्टारक रहे। इसके पश्चात इन्होने अपने शिष्य विजयकीर्त्ति को भट्टारक पद देकर स्वय साहित्य साधक एव मुमुक्षु बन गये। वास्तव मे यह भी उनके जीवन मे उत्कृष्ट त्याग था क्योकि उस युग मे भट्टारको की प्रतिष्ठा, मान सम्मान बडे ही उच्चस्तर पर थी। भट्टारको के कितने ही शिष्य एव शिष्याए होती थी, श्रावक लोग उनके विहार के समय पलक पावडे विछाये रहते थे तथा सरकार की ओर से भी उन्हे उचित सम्मान मिलता था। ऐसे उच्च पद को छोडकर केवल आत्म चिंतन एव साहित्य साधना मे लग जाना ज्ञानभूषण जैसे सन्त से ही हो सकता था।

ज्ञानभूषण प्रतिभापूर्ण साधक थे। उन्होने आत्म साधना के अतिरिक्त ज्ञानाराधना, साहित्य साधना, सास्कृतिक उत्थान एव नैतिक धर्म के प्रचार मे अपना सपूर्ण जीवन खपा दिया। पहिले उन्होने स्वय ने अध्ययन किया और शास्त्रो के गम्भीर अर्थ को समझा। तत्वज्ञान की गहराइयो तक पहुँचने के लिए व्याकरण, न्याय सिद्धान्त के बडे २ ग्रथो का स्वाध्याय किया और फिर साहित्य-सृजन प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम उन्होंने स्तवन एव पूजाष्टक लिखे फिर प्राकृत ग्रथो की टीकाए लिखी। रास एव फागु साहित्य की रचना कर साहित्य को नवीन मोड दिया और अन्त मे अपने सपूर्ण ज्ञान का निचोड तत्वज्ञान तरगिणी मे डाल दिया।

साहित्य सृजन के अतिरिक्त सैकडो ग्रथों की प्रतिलिपिया करवा कर साहित्य के भण्डारो को भरा तथा अपने शिष्य प्रशिष्यो को उनके अध्ययन के लिए प्रोत्साहित

---

१ देखिये हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ सख्या ७३

किया तथा समाज को विजयकीर्ति एवं शुभचन्द्र जैसे मेधावी विद्वान दिए। बौद्धिक एवं साहित्यिक उत्थान के अतिरिक्त इन्होंने सांस्कृतिक पुनर्जागरण में भी पूर्ण योग दिया। आज भी राजस्थान एवं गुजरात प्रदेश के सैकड़ों स्थानों के मंदिरों में उनके द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्तियां विराजमान हैं। सह-अस्तित्व की नीति को स्वयं में एवं जन मानस में उतारने में इन्होंने अपूर्व सफलता प्राप्त की थी और सारे भारत को अपने विहार से पवित्र किया। देशवासियों को उन्होंने अपने उपदेशामृत का पान कराया एवं उन्हें बुराइयों से बचने के लिए प्रेरणा दी। ज्ञानभूषण का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। श्रावकों एवं जनता को वश में कर लेता उनके लिए अत्यधिक सरल था। जब वे पद यात्रा पर निकलते तो मार्ग के दोनों ओर जनता कतार बांधे खड़ी रहती और उनके श्रीमुख से एक दो शब्द सुनने को लालायित रहती। ज्ञानभूषण ने श्रावक धर्म का नैतिक धर्म के नाम से उपदेश दिया। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के नाम पर एक नया सन्देश दिया। इन्हें जीवन में उतारने के लिए वे घर घर जाकर उपदेश देते और इस प्रकार वे लोगों की श्रद्धा एवं भक्ति के प्रमुख-सम्बोधन गए। श्रावकों के दैनिक षट्कर्म को पालन करने के लिए वे अधिक जोर देते।

प्रतिष्ठाकार्य संचालन

भारतीय एवं विशेषतः जैन संस्कृति एवं धर्म की सुरक्षा के लिये उन्होंने प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार, नवीन मंदिर निर्माण, पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठायें, सांस्कृतिक समारोह, उत्सव एवं मेलों आदि के आयोजनों को प्रोत्साहित किया। ऐसे आयोजनों में वे स्वयं तो भाग लेते ही थे अपने शिष्यों को भी भेजते एवं अपने भक्तों से भी उनमें भाग लेने के लिये उपदेश देते।

भट्टारक बनते ही इन्होंने सर्व प्रथम संवत् १५३१ में डूंगरपुर में २३" × १८" अवगाहना वाले सहस्रकूट चैत्यालय की प्रतिष्ठा का सञ्चालन किया, इनमें से ६ चैत्यालय तो डूंगरपुर के ऊंडा मन्दिर में ही विराजमान हैं। इस समय डूंगरपुर पर रावल सोमदास का राज्य था। इन्हीं के द्वारा संवत् १५३४ फाल्गुण सुदी १० में आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव के समय की प्रतिष्ठापित मूर्तियां कितने ही स्थानों पर मिलती हैं[1]।

---

१ संवत् १५३४ वर्षे फाल्गुण सुदी १० गुरौ श्री मूलसंघे भ. सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री भुवनकीर्त्तिस्तत् भ. ज्ञानभूषणगुरूपदेशात् हूं बड ज्ञातीय सोह वाईदो भार्या छिवाई सुत सा. डूंगा भगिनी वीरवास भगनी प्रनाडी भार्या सान्ता, एते नित्यं प्रणमंति।

की प्रतिमा डूंगरपुर के ऊंडे मन्दिर में विराजमान[1] है। यह सम्भवतः आपके कर कमलों से सम्पादित होने वाला अन्तिम समारोह था। इसके पश्चात् संवत् १५५७ तक इन्होंने कितने आयोजनों में भाग लिया इसका अभी कोई उल्लेख नहीं मिल सका है। संवत् १५६०[2] व १५६१[3] में सम्पन्न प्रतिष्ठाओं के अवश्य उल्लेख मिले हैं। लेकिन ये दोनों ही इनके पट्ट शिष्य भ० विजयकीर्ति द्वारा सम्पन्न हुए थे। उक्त दोनों ही लेख डूंगरपुर के मन्दिर में उपलब्ध होते हैं।

साहित्य साधना

ज्ञानभूषण भट्टारक बनने से पूर्व और इस पद को छोड़ने के पश्चात् भी साहित्य-साधना में लगे रहे। ये जबरदस्त साहित्य-सेवी थे। प्राकृत संस्कृत हिन्दी गुजराती एवं राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी में मौलिक कृतियां निबद्ध की और प्राकृत ग्रंथों की संस्कृत टीकाएं लिखी। यद्यपि संख्या की दृष्टि से इनकी कृतियां अधिक नहीं है फिर भी जो कुछ है वे ही इनकी विद्वत्ता एवं पांडित्य को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त हैं। श्री नाथूराम जी प्रेमी ने इनके "तत्वज्ञानतरंगिणी, सिद्धान्तसार भाष्य, परमार्थोपदेश, नेमिनिर्वाण की पञ्जिका टीका, पञ्चास्तिकाय, दशलक्षणोद्यापन, आदीश्वर फाग, भक्तामरोद्यापन, सरस्वतीपूजा" ग्रन्थों का उल्लेख किया है[4]। पंडित परमानन्द जी ने उक्त

---

१. संवत् १५५२ वर्षे जेठ वदी ७ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ श्री सकलकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्ति तत्पट्टे भ श्री ज्ञानभूषण गुरूपदेशात् हूंबड ज्ञातीय डूंगरण भार्या साणी सुत नाना भार्या हीरु सुत सांगा भार्या पहुती नेमिनाथ एतं नित्यं प्रणमति।

२. संवत् १५६० वर्षे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे भ श्री विजयकीर्तिगुरूपदेशात् बाई श्री प्रोद्धन श्रीबाई श्रीविनय श्रीविमल पल्लिवत उद्यापने श्री चन्द्रप्रभ ।

३. संवत १५६१ वर्षे चैत्र वदी ८ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे भट्टारक श्री सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भ. श्री भुवनकीर्त्ति तत्पट्टे भ श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे भ विजयकीर्त्ति गुरूपदेशात् हूंबड ज्ञातीय श्रेष्ठि लखमण भार्या मरगदी सुत श्रे० समधर भार्या मचकू सुत श्रे० गंगा भार्या वल्लि सुत हरखा हीरा मठा नित्य श्री आदीश्वर प्रणमति बाई मचकू पिता दोसी रामा भार्या पूरी पुत्री रंगी एते प्रणमति।

४ देखिये प नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास—पृष्ठ – ३८२

रचनाओ के अतिरिक्त सरस्वती स्तवन, आत्म सबोधन आदि का और उल्लेख किया है[1]। इधर राजस्थान के जैन ग्रन्थ भडारो की जब से लेखक ने खोज एव छानबीन की है तब से उक्त रचनाओ के अतिरिक्त इनके और भी ग्रन्थो का पता लगा है। अब तक इनकी जितनी रचनाओ का पता लग पाया है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

सस्कृत ग्र थ

१ आत्मसबोधन काव्य	६ भक्तामर पूजा[4]
२ ऋषिमडल पूजा[2]	७ श्रुत पूजा[5]
३ तत्वज्ञान तरगिनी	८ सरस्वती पूजा[6]
४ पूजाष्टक टीका	९ सरस्वती स्तुति[7]
५ पञ्चकल्याणकोद्यापन पूजा[3]	१० शास्त्र मडल पूजा[8]

हिन्दी रचनायें

१. आदीश्वर फाग	४ षट्कर्म रास
२ जलगालण रास	५ नागद्रा रास
३ पोसह रास	

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त अभी इनकी और भी कृतियाँ उपलब्ध होने की सभावना है। अब यहां आत्मसबोधन काव्य, तत्वज्ञानतरगिणी, पूजाष्टक टीका, आदीश्वर फाग, जलगालन रास, पोसह रास एव षट्कर्म रास का सक्षिप्त वर्णन उपस्थित किया जा रहा है।

आत्मसबोधन काव्य

अपभ्र श भाषा मे इसी नाम की एक कृति उपलब्ध हुई है जिसके कर्त्ता १५ वी शताब्दि के महापडित रइघू थे। प्रस्तुत आत्मसबोधन काव्य भी उसी काव्य

१ देखिये प परमानन्द जी का "जैन-ग्रथ प्रशस्ति-सग्रह"

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भडारो की ग्रथ सूची भाग चतुर्थ पृष्ठ सख्या–४६३

३. वही पृष्ठ सख्या ६५०

४. वही पृष्ठ सख्या ५२३

५ वही पृष्ठ सख्या ५३७

६ वही पृष्ठ सख्या ५१५

७ वही पृष्ठ सख्या ६५७

की रचनाओं पर लिखा हुआ जान पड़ता है।[1] इसकी एक प्रति जयपुर के बाबा दुलीचन्द के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है लेकिन प्रति अपूर्ण है और उसमे प्रारम्भ का प्रसंग पृष्ठ नहीं है। यह एक आध्यात्मिक ग्रंथ है और कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से जान पड़ता है।

२ तत्वज्ञानतरंगिणी

इसे ज्ञानभूषण की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। इसमे शुद्ध आत्म तत्व की प्राप्ति के उपाय बतलाये गये है। रचना अधिक बड़ी नहीं है किन्तु कवि ने उसे १८ अध्यायों मे विभाजित किया है। इसकी रचना सं० १५६० मे हुई थी जब ये भट्टारक पद छोड़ चुके थे और आत्मतत्व की प्राप्ति के लिए मुमुक्षु बन चुके थे। रचना काव्यत्वपूर्ण एव विद्वत्ता को लिए हुये है।

भेदज्ञान विना न शुद्धचिद्रूप ध्यानसंभव
भवेन्नैव यथा पुत्र संभूति जनक विना ॥१०।२॥

× × × ×

न द्रव्येण न कालेन न क्षेत्रेण प्रयोजन ।
केनचिन्नैव भावेन न लब्धे शुद्धचिदात्मके ॥७।४॥
परमात्मा पर ब्रह्म चिदात्मा सर्वदृक् शिव ।
नामानीमान्यहो शुद्धचिद्रूपस्यैव केवलं ॥८।४॥

× × × ×

ये नरा निरहंकारह वितन्वति प्रतिक्षण ।
अर्द्धं ततंश्च चिद्रूप प्राप्नुवन्ति न सशय ॥४।१०॥

३. पूजाष्टक टीका—

इसकी एक हस्तलिखित प्रति संभवनाथ दि० जैन मदिर उदयपुर में संग्रहीत है। इसमे स्वय ज्ञानभूषण द्वारा विरचित आठ पूजाओं की स्वोपज्ञ टीका है। कृति मे १० अधिकार है और उसकी अन्तिम पुष्पिका निम्न प्रकार है—

इति भट्टारक श्री भुवनकीर्त्तिशिष्यमुनिज्ञानभूषणविरचितायां स्वकृताष्टकदशकटीकायां विद्वज्जनवल्लभसंज्ञायां नन्दीश्वरद्वीपजिनालयार्चनवर्णनीय नामा दशमोऽधिकार ॥

यह ग्रन्थ ज्ञानभूषण ने जब मुनि थे तब निबद्ध किया गया था। इसका रचना काल संवत् १५२८ एव रचना स्थान डूंगरपुर का आदिनाथ चैत्यालय है।[1]

१ श्रीमद् विक्रमभूपराज्यसमयातीतेऽवसुद्वीन्द्रियक्षोणी—
सम्मितहायके गिरपुरे नाभेयचैत्यालये ।
अस्ति श्री भुवनादिकीर्त्तिमुनयस्तस्यांसि संसेविना,
स्वोक्ते ज्ञानविभूषणेन मुनिना टीका शुभेय कृता ॥१॥

४. आदिश्वर फाग

'आदीश्वर फाग' इनकी हिन्दी रचनाओ मे प्रसिद्ध रचना है। फागु सज्ञक काव्यो मे इस कृति का विशिष्ट स्थान है। जैन कवियो ने काव्य के विभिन्न रूपो मे सस्कृत एव हिन्दी मे साहित्य लिखा है उससे उनके काव्य रसिकता की स्पष्ट झलक मिलती है। जैन कवि पक्के मनो वैज्ञानिक थे। पाठको की रुचि का वे पूरा ध्यान रखते थे इसलिये कभी फागु, कभी रास, कभी वेलि एव कभी चरित सज्ञक रचनाओ से पाठको के ज्ञान की अभिवृद्धि करते रहते थे।

'आदीश्वर फाग' इनकी अच्छी रचना है, जो दो भाषा मे निबद्ध है इसमे भगवान आदिनाथ के जीवन का सक्षिप्त वर्णन है जो पहले सस्कृत एव फिर हिन्दी में वर्णित है। कृति मे दोनो भाषाओ के ५०१ पद्य हैं जिनमे २६२ हिन्दी के तथा शेष २३९ पद्य सस्कृत के है। रचना की श्लोक स० ५९१ है।

कवि ने रचना के प्रारम्भ मे विषय का वर्णन निम्न छन्द मे किया है—

आहे प्रणमयि भगवति सरसति जगति विबोधन माय।
गाइस्यू आदि जिणद, सुरिंदवि वदित पाय॥२॥

× × × ×

आहे तस घरि मरुदेवी रमणीय, रमणीय गुण गणखाणि।
रूपिर नही कोइ तोलइ बोलइ मधुरीय वाणि॥१०॥

माता मरुदेवी के गर्भ मे आदिनाथ स्वामी के आते ही देवियो द्वारा माता की सेवा की जाने लगी। नाच-गान होने लगे एव उन्हें प्रतिपल प्रसन्न रखा जाने लगा।

आहे एक कटी तटि वाधइ हसतीय रसना लेवि।
नेउर कांबीय लांबीय एक पहिरावइ देवि॥१७॥

आहे अ गुलीइ पगि वीछीया वीछीयनु आकार।
पहिरावइ अ गुथला, अ गूठइ सणगार॥१८॥

आहे कमल तणी जिसी पाखडी आखडी आजइ एक।
सीदूर घालइ सइथइ गूथइ वेणी एक॥१९॥

आहे देवीय तेवड तेवडी केवडी ना लेई फूल।
प्रगट मुकट रचना करइ तेह तणू नहीं भूल॥२०॥

आदिनाथ का जन्म हुआ। देवो एव इन्द्रो ने मिलकर खूब उत्सव मनाये। पाडुक शिला पर ले जाकर अभिषेक किया और बालक का नाम ऋषभदेव रखा गया—

आहे अभिषव पूरउ कीधउ कीयउ अ गि विलेय।
आगीय अ गि कारवाउ कीधउ वहु आक्षेप ॥८४॥
आहे आणीय बहुत विभूषण दूषण रहित अभग।
पहिराव्या ते मनि रली वली वली जोअइ अ ग ॥८५॥
आहे नाम वृषभ जिन दीघउ कीधउ नाटक चग।
रूप निरुपम देखीय हरखिइ भरीया अ ग ॥८६॥

'बालक आदिनाथ' दिन २ बडे होने लगे। उनको खिलाने, पिलाने, स्नान कराने आदि के लिये अलग अलग सेविकाए थी। देविया अलग थी। इसी 'बाल-लीला' एक वर्णन देखिए —

आहे देवकुमार रमाडइ मातज माउर क्षीर।
एक घरइ मुख आगलि आणीय निरमल नीर ॥९३॥
आहे एक हृणावइ ल्यावइ काडवि नटावीय बाल।
नीति नहीय नहीय सलेखन नइ मुखि लाल ॥९४॥
आहे आगीय अ गि अनोपम उपम रहित शरीर।
टोपीय उपीय मस्तकि बालक छइ परवीर ॥९५॥
आहे कानेय कु डल झलकइ मलकइ नेउर पाइ।
जिम जिम निरखइ हरखइ हियडइ तिय तिय माइ ॥१६॥

आदिनाथ ने बडे ठाट बाट से राज्य किया। उनके राज्य मे सारी प्रजा आनन्द मे रहती थी। वे इन्द्र के समान राज्य-कार्य करते थे।

आहे नाभि नरेश सुरेश, मिलीनइ दीधउ राज।
सर्व प्रजा व्रज हरखीउ, हरखीउ देव समाज ॥१५४॥

एक दिन नीलजना नामकीदेव नर्तकी उनके सामने नृत्य कर रही थी कि वह देखते २ मर गयी। आदिनाथ को यह देख कर जगत से उदासीनता हो गयी।

आहे धिग २ इह ससार, वेकार अपार असार।
नही सम मार समान कुमार रमा परिवार ॥१६४॥
आहे घर पुर नगर नही निज रज सम राज अकाज।
हय गय पयदल चल मल सरिखउ नारि समाज ॥१६५॥

आहे आयु कमल दल सम चचल चपल शरीर ।
यौवन धन इव अथिर करम जिय करतल नीर ॥१६६॥
आहे भोग वियोग समन्वित रोग तणू घर अ ग ।
मोह महा मुनि निंदित निंदित नारीय सग ॥१६७॥
आहे छेदन भेदन वेदन दीठीय नरग मझारि ।
भामिनी भोग तणइ फलि तउ किम वाछइ नारि ॥

इस प्रकार 'आदिनाथ फाग' हिन्दी की एक श्रेष्ठ रचना है। इसकी भाषा को हम 'गुजराती प्रभावित राजस्थानी का नाम दे सकते है।

रचनाकाल —यद्यपि 'ज्ञान भूषण' ने इस रचना का कोई समय नही दिया है, फिर भी यह सवत् १५६० पूर्व की रचना है—इसमे कोई सन्देह नही है। क्योकि तत्वज्ञानतरगिणी (सवत् १५६०) भ० ज्ञानभूषण की अन्तिम रचना गिनी जाती है।[1]

उपलब्धि स्थान —'ज्ञान भूषण' की यह रचना लोकप्रिय रचना है। इसलिए राजस्थान के कितने ही शास्त्र-भण्डारों मे इसकी प्रतिया मिलती हैं। आमेर शास्त्र भण्डार मे इसकी एक प्रति सुरक्षित है।

५ पोसह रास

यह यद्यपि व्रत-विधान के महात्म्य पर आधारित रास हैं, लेकिन भाषा एव शैली की दृष्टि से इसमे रासक काव्य जैसी सरसता एव मधुरता आ गयी है। 'पोषह रास' के कर्त्ता के सम्बन्ध मे विभिन्न मत हैं। प परमानन्द जी एव डॉ प्रेमसागर जी के मतानुसार यह कृति भ वीरचन्द के शिष्य भ ज्ञानभूषण की होनी चाहिए, जब कि स्वय कृति मे इस सम्बन्ध मे कोई उल्लेख नहीं मिलता। कवि ने कृति के अन्त मे अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

वारि रमणिय मुगतिज सम अनुप सुख अनुभवइ ।
भव म कारि पुनरपि न आवइ इह वू फलजस गमइ ।
ते नर पोसह कान भावइ एणि परि पोसह धरइज नर नारि सुजण ।
ज्ञान भूषण गुरु इम भणइ, ते नर करइ वरवाण ॥१११॥

---

१ डॉ० प्रेमसागर जी ने इस कृति का जो सवत् १५५१ रचनाकाल वतलाया है वह सभवत सही नहीं है। जिस पद्य को उन्होंने रचनाकाल वाला पद्य माना है, वह तो उसकी श्लोक सख्या वाला पद्य है

हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृष्ठ स० ७५

वैसे इस रास की 'भाषा' अपभ्रंश प्रभावित भाषा है, किन्तु उसमे लावण्य की भी कमी नही है।

नसार तणउ विनासु किम तुमह राम चितवउ।
भोउगु मोहनुपास वनीयवतो नेह नित चीइ ॥९८॥

इस रास की राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे कितनी ही प्रतिया मिलती है।

६. पट्कर्म रास

यह कर्म-सिद्धांत पर आधारित लघु रासक काव्य है जिसमे, इस प्राणी को प्रतिदिन देव पूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, सयम, तप एव दान–इन पट्कर्मों के पालन करने का सुन्दर उपदेश दिया गया है। इसमे ५३ छन्द है और अन्तिम छन्द मे कवि ने अपने नाम का किस प्रकार परि-उल्लेख किया है, उसे देखिये—

सुणउ श्रावक सुणउ श्रावक एह पट्कर्म्म।
घरि रहता जे आचरइ, ते नर पर भवि स्वर्ग पामइ।
नरपति पद पामी करीय, नर सघला नइ पाउ नामइ।
समकित धरता जु धरइ, श्रावक ए आचार।
ज्ञानभूपण गुरु इम भणइ, ते पामइ भवपार ॥

७ जलगालन रास

यह एक लघु रास है, जिसमे जल छानने की विधि का वर्णन किया गया है। इसकी शैली भी पट्कर्म रास एव पोसह रास जैसी है। इसमे ३३ पद्य हैं। कवि ने अपने नाम का अन्तिम पद्य मे उल्लेख किया है —

गलउ पाणीय गलउ पाणीय य तन मन रगि,
हृदय सदय कोमल धरु धरम तणू एह मूल जाणउ।
कुह्यू नीलू गध करइ ते पाणी तुप्ति धरिम आणउ।
पाणीय आणीय यतन करी, जे गलसिइ नर-नारि।
श्री ज्ञान भूपण गुरु इम भणइ, ते तरसिइ ससारि ॥३३॥

'भ० ज्ञानभूपण' की मृत्यु सवत् १५६० के बाद किसी समय हुई होगी। लेकिन निश्चित तिथि की अभी तक खोज नही हो सकी है।

ग्रथ लेखन कार्य

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त अक्षयनिधि पूजा आदि और भी कृतिया हैं।

रचनायें निबद्ध करने के अतिरिक्त ज्ञानभूषण ने ग्रन्थो की प्रतिलिपिया करवा कर शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत कराने मे भी खूब रस लिया है। आज भी राजस्थान के शास्त्र भण्डरो में इनके शिष्य प्रशिष्यो द्वारा लिखित कितनी ही प्रतिया उपलब्ध होती हैं। जिनका कुछ उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है, —

१ सवत् १५४० आसोज बुदी १२ शनिवार को ज्ञानभूषण के उपदेश से धनपाल कृत भविष्यदत्त चरित्र की प्रतिलिपि मुनि श्री रत्नकीर्त्ति को पठनार्थ भेट दी गई।

प्रशास्ति सग्रह-पृष्ठ स १४९

२ सवत् १५४१ माह बुदी ३ सोमवार डूँगरपुर मे इनकी गुरु बहिन शाति गौतम श्री के पठनार्थ आशाधर कृत धर्मामृतपजिका की प्रतिलिपि की गयो।

(ग्रन्थ सख्या-२९० शास्त्र भडार ऋषभदेव)

३ सवत् १५४९ आषाढ सुदी २ सोमवार को इनके उपदेश से वसुनदि पचविंशति की प्रति ब्र माणिक के पठनार्थ लिखी गई।

ग्रन्थ स २०४ समवनाथ मन्दिर उदयपुर।

३ सवत् १५५३ मे गिरिपुर (डूँगरपुर) के आदिनाथ चैत्यालय मे सकल-कीर्त्ति कृत प्रश्नोत्तर श्रावकाचार की प्रतिलिपि इनके उपदेश से हूँबड ज्ञातोय श्रेष्ठि ठाकुर ने लिखवाकर माघनदि मुनि को भेट की।

भट्टारकीय शास्त्र भडार अजमेर ग्रन्थ स १२२

४ सवत् १५५५ मे अपनी गुरु बहिन के लिये ब्रह्म जिनदास कृत हरिवश पुराण की प्रतिलिपि कराई गयी।

प्रशास्ति सग्रह-पृष्ठ ७३

५ सवत् १५५५ आषाढ बुदी १४ कोटस्याल के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे ज्ञान-भूषण के शिष्य ब्रह्म नरसिंह के पढने के लिये कातन्त्र रुपमाला वृत्ति की प्रतिलिपि करवा कर भेंट की गई।

सभवनाथ मदिर शास्त्र भडार उदयपुर
ग्रन्थ सख्या-२०९

६ सवत् १५५७ मे इनके उपदेश से महेश्वर कृत शब्दभेदप्रकाश की प्रतिलिपि की गई।

ग्रन्थ सख्या-११२ अग्रवाल मदिर उदयपुर

पद देकर स्वय साहित्य सेवा मे लग गये।

विजयकीर्ति के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध मे अभी कोई निचिश्त जानकारी उपलब्ध नही हो सकी है लेकिन भ० शुभचन्द के विभिन्न गीतो के आधार पर ये शरीर गे कामदेव के समान सुन्दर थे। इनके पिता का नाम साह् गगा तथा माता का नाम कुअरि था।

साहा गगा तनय करउ विनय शुद्ध गुरु
शुभ वमह् जात कुअरि मात परमपर
साक्षादि सुवुद्ध जी कीइ शुद्ध दलित तम ।
सुरसेवत पाय मारीत माय मथित तम ॥१०॥
शुभचन्द्र कृत गुरुछन्द गीत।

वाल्यकाल मे ये अधिक अध्ययन नही कर सके थे। लेकिन भ०ज्ञानभूषण के सपर्क मे आते ही इन्होंने सिद्धान्त ग्र थो का गहरा अध्ययन किया। गोमट्टसार लब्धि-सार त्रिलोकसार आदि सैद्धान्तिक ग्र थो के अतिरिक्त न्याय, काव्य, व्याकरण आदि के ग्र थो का भो अच्छा अध्ययन किया और समाज मे अपनी विद्वता की अद्भुत छाप जमा दी

लब्धि सु गुमट्टसार सार त्रैलोक्य मनोहर।
कर्कश तर्क वितर्क काव्य कमलाकर दिणकर।
श्री मूलसघि विख्यात नर विजयकीर्ति वांछित करण।
जा चादसूर ता लगि तपो जयह सूरि शुभचद्र सरण।

इन्होने जव साधु जीवन मे प्रवेश किया तो ये अपनी युवावस्था के उत्कर्ष पर थे। सुन्दर तो पहिले से ही थे किन्तु यौवन ने उन्हे और भी निखार दिया था। इन्होंने साधु वनते ही अपने जावन को पूर्णत सयमित कर लिया और कामनाओ एव षटरस व्यजनो से दूर हट कर ये साधु जीवन की कठोर साधना मे लग गये। ये अपनी साधना में इतने तल्लीन हो गये कि देश भर मे इनके चरित्र की प्रशंसा होने लगी।

भ० शुभचन्द्र ने इनकी सुन्दरता एव सयम का एक रूपक गीत मे बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। रूपक गीत का सक्षिप्त निम्न प्रकार है।

जव कामदेव को भ० विजयकीर्ति की सुन्दरता एव कामनाओ पर विजय का पता चला तो वह ईर्ष्या से जल भुन गया और क्रोधित होकर सन्त के सयम को डिगाने का निश्चय किया।

नाद एह् वेरि वग्गि रगि कोई नावीमो ।
मूलसघि पट्ट वघ विविह भावि भावीयो ।
तसह् भेरी ढोल नाद वाद तेह उपन्नो ।
भरिए मार तेह् नारि कवरए आज नीपन्नो ।

कामदेव ने तत्काल देवागनाओ को बुलाया और विजयकीर्ति के सयम को भग करने की आज्ञा दी लेकिन जब देवागनाओ ने विजयकीर्ति के बारे मे सुना तो उन्हें अत्यधिक दुख हुआ और सन्त के पास जाने मे कष्ट अनुभव करने लगी । इस पर कामदेव ने उन्हें निम्न शब्दो से उत्साहित किया ।

वयरा सुनि नव कामिरगी दुख धरिह महत ।
कही विमासरा मझहवी नवि वार्यो रहि वत ।।१३।।
रे रे कामरिग म करि तु दुखह
इन्द्र नरेन्द्र मगाव्या भिखह ।
हरि हर वभमि कीया रकह् ।
लोय सव्व मम वसाहु निसकह् ।।१४।।

इसके पश्चात् क्रोध, मान, मद एव मिथ्यात्व की सेना खडी की गई । चारो ओर वसन्त ऋतु जैसा सुहावनी ऋतु करदी गई जिसमे कोयल कुहु कुहु करने लगी और भ्रमर गु जरने लगे । भेरी बजने लगी । इन सब ने सन्त विजयकीर्ति के चारो ओर जो माया जाल बिछाया उसका वर्णन कवि के शब्दो मे पढिये ।

वाल्लत खेलत चालत धावत धूरात
धूजत हाक्कत पूरत मोडत
तुदत भजत खजत मुक्कत मारत रगेरा
फाडत जाराुत घालत फेडत खग्गेरा ।
जाणीय मार गमण रमरा य तीसो ।
वोल्यावइ निज वल सकल सुधीसो ।
राय गणयता गयो वहु युद्ध कती ।।१८।।

कामदेव की सेना आपस मे मिल गई । बाजे बजने लगे । कितने ही सैनिक नाचने लगे । धनुषबारा चलने लगे और भीषरा नाद होने लगा । मिथ्यात्व तो देखते ही डर गया और कहने लगा कि इस सन्त ने तो मिथ्यात्व रूपी महान विकार को पहिले ही पी डाला है । इसके पश्चात् कुमति की बारी आयी लेकिन उसे भी कोई सफलता नही मिली । मोह की सेना भी शीघ्र ही भाग गई । अन्त मे स्वय कामदेव ने कर्म रूपी सेना के साथ उस पर आक्रमरा किया ।

महामयण महीमर चडीयो गयवर, कम्मह परिकर साथि कियो
मछर मद माया व्यसन विकाया, पाखड राया साथि लियो।

उधर विजयकीर्ति ध्यान मे तल्लीन थे। उन्होने शम, दम एव यम के द्वारा कामदेव और उसके साथियो की एक भी नही चलने दी जिससे मदन राज को उसी क्षण वहा से भागना पडा।

छूटा छूट करीय तिहाँ लगा, मयणराय तिहा ततक्षण भग्गा
आगति यो मयणाधिय नासइ, ज्ञान खडक मुनि अ तिहि प्रकासइ ।।२७।।

इस प्रकार इस गीत मे शुभचन्द्र ने विजयकीर्ति के चरित्र की निर्मलता, ध्यान की गहनता एव ज्ञान की महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस गीत मे उनके महान व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

विजयकीर्ति के महान व्यक्तित्व की सभी परवर्ती कवियो एव भट्टारको ने प्रशसा की है। ब्र० कामराज ने उन्हें सुप्रचारक के रूप मे स्मरण किया है।[1] भ० सकलभूषण ने यशस्वी, महामना, मोक्षसुखाभिलाषी आदि विशेषणो से उनकी कीर्ति का बखान किया है।[2] शुभचन्द्र तो उनके प्रधान शिष्य थे ही, उन्होने अपनी प्राय सभी कृतियो मे उनका उल्लेख किया है। श्रेणिक चरित्र मे यतिराज, पुण्यमूर्ति आदि विशेषणो से अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।

जयति विजयकीर्ति पुन्यमूर्ति सुकीर्ति
जयतु च यतिराजो भूमिपै स्पृष्टपाद।
नयनलिनहिमाशु ज्ञानभूपस्य पट्टे
विविध पर-विवादि क्षमाधरे वज्रपात ।।

: श्रेणिकचरित्र

भ० देवेन्द्रकीर्ति एव लक्ष्मीचन्द चादवाड ने भी अपनी कृतियो मे विजयकीर्ति का निम्न शब्दो मे उल्लेख किया है।

---

१ विजयकीर्तियो भवन भट्टारकोपदेशिन ।।७।।
जयकुमार पुराण

२ भट्टारक श्रीविजयादिकीर्तिस्तदीयपट्टे वरलब्धकीर्ति।
महामना मोक्षसुखाभिलाषी बभूव जैनावनी याच्यंपाद ।।
उपदेशरत्नमाला

१ विजयकीर्ति तस पटधारी, प्रगट्या पूरण सुखकार रे ।
प्रद्युम्न प्रबन्ध

२ तिन पट विजयकीर्ति जैवत, गुरू अन्यमति परवत समान
श्रेणिक चरित्र

सास्कृतिक सेवा

विजयकीर्ति का समाज पर जवरदस्त प्रभाव होने के कारण समाज की गतिविधियो मे उनका प्रमुख हाथ रहता था। इनके भट्टारक काल मे कितनी ही प्रतिष्ठाए हुई। मन्दिरो का निर्माण एव जीर्णोद्धार किया गया। इसके अतिरिक्त सास्कृतिक कार्यक्रमो के सम्पादन मे भी इनका योगदान उल्लेखनीय रहा। सर्वप्रथम इन्होंने सवत् १५५७ १५६० और उसके पश्चात सवत् १५६१, १५६४,१५६८, १५७० आदि वर्षों मे सम्पन्न होने वाली प्रतिष्ठाओ मे भाग लिया और जनता को मार्गदर्शन दिया। इन सवतो मे प्रतिष्ठित मूर्तिया डूगरपुर, उदयपुर आदि नगरो के मन्दिरो मे मिलती हैं। सवत् १५६१ मे इन्होने सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान एव सम्यक-चारित्र की महत्ता को प्रतिष्ठापित करने के लिए रत्नत्रय की मूर्ति को प्रतिष्ठापित किया।[1]

स्वर्णकाल—विजयकीर्ति के जीवन का स्वर्णकाल सवत् १५५२ से १५७० तक का माना जा सकता है। इन १८ वर्षों मे इन्होने देश को एक नयी सास्कृतिक चेतना दी तथा अपने त्याग एव तपस्वी जीवन से देश को आगे बढाया। सवत् १५५७ मे इन्हे भट्टारक पद अवश्य मिल गया था। उस समय भट्टारक ज्ञानभूषण जीवित थे क्यो कि उन्होने सवत् १५६० मे 'तत्वज्ञान तरगिणी' की रचना समाप्त की थी। विजयकीर्ति ने समवत स्वय ने कोई कृति नही लिखी। वे केवल अपने विहार एव प्रवचन से ही मार्ग दर्शन देते रहे। प्रचारक की दृष्टि से उनका काफी ऊचा स्थान बन गया था और वे बहुत से राजाओ द्वारा भी सम्मानित थे[2]। वे शास्त्रार्थ एव वाद विवाद भी करते थे और अपने अकाट्य तर्कों से अपने विरोधियो से अच्छी टक्कर लेते थे। जब वे बहस करते तो श्रोतागण मत्रमुग्ध हो जाते और उनकी तर्कों को सुनकर उनके ज्ञान की प्रशसा किया करते। भ० शुभचन्द्र ने अपने एक गीत में इनके शास्त्रार्थ का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

१ भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ १४४

२ य पूज्यो नृपमल्लिभैरवमहादेवेन्द्रमुख्यैर्नृपै ।
षटतर्कागमशास्त्रकोविदमतिजाग्रद्यशश्चन्द्रमा ।।
भव्याभोरुहभास्कर शुभकर ससारविच्छेदक ।
सो व्याच्छ्रीविजयादिकीर्तिमुनियो भट्टारकाधीश्वर । वही पृष्ठ १०

वादीय वाद विटव वादि मिगाल मद गजन ।
वादीय कु द कुदाल वादि श्रावय मन रजन ।
वादि तिमिर हर भूरि, वारि नीर सह सुधाकर ।
वादि विटवन वीर वादि निगाए गुए सागर ।
वादीन विवुध सरसति गछि मूलसघि दिगवर रह ।
कहिइ ज्ञानभूपण तो पट्टि श्री विजयकीर्ति जागी यतिवरह ।५।

इनके चरित्र ज्ञान एव सयम के सम्बन्ध मे इनके शिष्य शुभचन्द्र ने कितने ही पद्य लिखे हैं उनमे से कुछ का रसास्वादन कीजिये ।

सुरनर खग भर चारुचद्र चर्चित चरणद्वय ।
समयसार का सार हस भर चिंतित चिन्मय ।
दक्ष पक्ष शुभ मुक्ष लक्ष्य लक्षरण पतिनायक
ज्ञान दान जिनगान अथ चातक जलदायक
कमनीय मूर्ति सु दर सुकर धम्म शर्म कल्याए कर ।
जय विजयकीर्ति सूरीश कर श्री श्री वर्द्धन सौख्य वर ॥७॥
विशद विसवद वादि वरन कु ड गरु भेपज ।
दुर्नय वनद समीर वीर वदित पद पकज ।
पुन्य पयोधि सुचद्र चद्र चामीकर सुन्दर ।
स्फूर्ति कीर्ति विख्यात मुमूर्त्ति सोभित सुभ सवर ।
ससार सघ वहु दयी हर नागरमनि चारित्र घरा ।
श्री विजयकीर्ति सूरीस जयवर श्री वर्द्धन पकहर ॥८॥

'भ० विजयकीर्त्ति' के समय मे सागवाडा एव नोतनपुर की समाज दो जातियो मे विभक्त थी । 'विजयकीर्त्ति' वडसाजनो के गुरु कहलाने लगे थे । जब वे नोतनपुर आये तो विद्वान श्रावको ने उनसे शास्त्राथ करना चाहा लेकिन उनकी विद्वता के सामने वे नही ठहर सके ।[२]

शिष्य परम्परा—

'विजयकीर्त्ति' के कितने ही शिष्य थे । उनमे से भ शुभचन्द्र, बूचराज, ब्र. यशोधर आदि प्रमुख थे । बूचराज ने एक विजयकीर्त्ति गीत लिखा है, जिसमे विजयकीर्त्ति के उज्ज्वल चरित्र की अत्यधिक प्रशसा की गई है । वे सिद्धान्त के मर्मज्ञ थे

---

१ तिणि दिव वडिसाजनि सागवाडि सातिनाथनि प्रतिष्ठा श्री विजयकर्त्ति कीनी ।

२ वही भट्टारक पट्टावलि, शास्त्र भण्डार डू गरपुर ।

तथा चारित्र सम्राट थे।[1] इनके एक अन्य शिष्य ब्र यशोधर ने अपने कुछ पदो मे विजयकीर्ति का स्मरण किया है तथा एक स्वतत्र गीत मे उनकी तपस्या, विद्वत्ता एव प्रसिद्धि के बारे मे अच्छा परिचय दिया है। गीत[2] का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है —

अनेक राजा चलण सेवि मालवी मेवाड ।
गूजर सोरठ सिंधु सहिजि अनेक भड भूपाल ॥
दक्षण मरहठ चीण कुकण पूरवि नाम प्रसिद्ध ।
छत्रीस लक्षण कला बहुतरि अनेक विद्यारिधि ॥
आगम वेद सिद्धान्त व्याकरण भावि भवीयण सार ।
नाटक छन्द प्रमाण सूझि नित जपि नवकार ॥
श्री काष्टा सघि कुल तिलुरे यती सरोमणि सार ।
श्री विजयकीरति गिरुउ गणधर श्री सघकरि जयकार ॥४॥

---

१ पूरा पद देखिये — लेखक द्वारा सम्पादित— राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ-सूची, चतुर्थ भाग— पृ स ६६६-६७ । महावीर-भवन, जयपुर ।

२ विजयकीर्त्ति गीत, रजिस्टर न ७, पृ स ६० ।

ब्रह्म बूचराज

'रूपक काव्यो' के निर्माता 'ब्रह्म बूचराज' हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित कवि हैं। इनकी एक रचना 'मयण जुज्झ' इतनी अधिक लोकप्रिय रही कि राजस्थान के कितने ही भण्डारो मे उसकी प्रतिलिपिया उपलब्ध होती हैं। इनकी सभी कृतियां उच्चस्तर की है। 'बूचराज' भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। इसलिए उनकी प्रशसा मे उन्होने एक 'विजयकीर्ति गीत' लिखा, जिसका उल्लेख हम भ विजयकीर्ति के परिचय मे पहिले ही कर चुके हैं। विजयकीर्ति के अतिरिक्त ये 'भ० रत्नकीर्ति' के भी सम्पर्क मे रहे थे। इसलिए उनके नाम का उल्लेख भी 'भुवनकीर्ति गीत' मे किया गया है।[1]

'बूचराज' राजस्थानी विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक किसी भी कृति मे उन्होंने अपने जन्म स्थान एव माता-पिता आदि का परिचय नही दिया है, लेकिन इन रचनाओ की भाषा के आधार पर एव भ० विजयकीर्ति के शिष्य होने के कारण इन्हे राजस्थानी विद्वान् ही मानना अधिक तर्क सगत होगा। वैसे ये सन्त थे। 'ब्रह्मचारी' पद इन्होने धारण कर लिया था। इसलिये धर्म प्रचार एव साहित्य-प्रचार की दृष्टि से ये उत्तरी भारत मे विहार किया करते थे। राजस्थान, पजाब, देहली एव गुजरात इनके मुख्य प्रदेश थे। सवत् १५९१ मे ये हिसार मे थे और उस वर्ष वही चातुर्मास किया था। इसलिए १५९१ की भादवा शुक्ला पचमी के दिन इन्होने "सतोष जय तिलक" को समाप्त किया था। सवत् १५८२ मे ये चम्पावती (चाटसू) मे और इस वर्ष फाल्गुन सुदी १४ के दिन इन्हे 'सम्यक्त्व कौमुदी' की प्रतिलिपि भेंट स्वरूप प्रदान की गयी थी।[2]

---

१. सुर तरु सघ वालिउ चितामणि दुहिए दुहि।
महो घरि घरि ए पच सबद वाजहि उछरगिहिए॥
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि।
जिणह मन्दिर अवही अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसम माल चढावइ॥
बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटि उदयोसह गुरो।
श्री भुवनकीर्त्ति आसीरवादहि सघ कलियो सुरतरो॥
—लेखक द्वारा सम्पादित राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग

२. "सवत् १५८२ फाल्गुन सुदि १४ शुभ दिने चपावती नगरे
एतान् इद शास्त्र कौमुदी लिखाप्य कर्मक्षय निमित्तं ब्रह्म बूचाय दत्त॥
—लेखक द्वारा सपादित प्रशस्ति सग्रह-पृ ६३.

इन्होंने अपनी कृतियो मे बूचराज के अतिरिक्त बूचा, वल्ह, वील्ह, अथवा वल्हव नामो का उपयोग किया है। एक ही कृति मे दोनो प्रकार के नाम प्रयोग मे आये हैं। इनकी रचनाओ के आधार से यह कहा जा सकता है कि बूचराज का व्यक्तित्व एव मनोवल बहुत ही ऊचा था। उन्होने अपनी रचनाएँ या तो भक्ति एव स्तवन पर आधारित की है अथवा उपदेश परक हैं-जिसमें मानव-मात्र को काम-वासना पर विजय प्राप्त करने तथा सन्तोष पूर्वक जीवन-यापन करने का उपदेश दिया गया है।

समय

कविवर के समय के बारे मे निश्चित तो कुछ भी नही कहा जा सकता लेकिन इनकी रचनाओ के आधार पर इनका समय सवत् १५३० से १६०० तक का माना जा सकता है। इस तरह उन्होने अपने जीवन-काल में भट्टारक भुवनकीर्त्ति, ज्ञानभूषण एव विजयकीर्त्ति का समय देखा होगा तथा इनके सानिध्य मे रहकर बहुत कुछ सीखने का अवसर भी प्राप्त किया होगा। ऐसा लगता है कि ये ग्रहस्था-वस्था के पश्चात् सवत् १५७५ के आस पास ब्रह्मचारी बने होगे तथा उसी के पश्चात् इनका ध्यान साहित्य रचना की ओर गया होगा। 'मयण जुज्झ' इनकी प्रथम रचना है जिसमें इन्होंने भगवान आदिनाथ द्वारा कामदेव पर विजय प्राप्त करने के रूप मे सभवत स्वय के जीवन का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कवि की अभी तक जिन रचनाओ की खोज की जा सकी है वे निम्न प्रकार है।

१ मयणजुज्झ (मदनयुद्ध)
२ सतोष जयतिलक
३ चेतन पुद्गल धमाल
४ टडाणा गीत
५ नेमिनाथ वसतु
६ नेमीश्वर का बारहमासा
७ विभिन्न रागो मे लिखे हुए ८ पद
८ विजयकीर्त्ति गीत

१ मयणजुज्झ

यह एक रूपक काव्य[1] है जिसमे भगवान् ऋषभदेव द्वारा कामदेव पराजय का वर्णन है। यह एक आध्यात्मिक रूपक काव्य है, जिसका प्रमुख उद्देश्य "मनो-

१ साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन जयपुर के एक गुटके मे इसकी एक प्रति सग्रहीत है।

विकारो के अधीन रहने पर मानव को मोक्ष की उपलब्धि नही हो सकती।" इसको पाठको के समक्ष प्रस्तुत करना है। काम मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्राप्त करने मे बहुत बडी बाधा है, मोह, माया, राग एवं द्वेष काम के प्रवल सहायक है। वसन्त काम का दूत है, जो काम की विजय के लिए पृष्ठ भूमि बनाता है लेकिन मानव अनन्त शक्ति एव ज्ञान वाला है यदि वह चाहे तो सभी विकारो पर विजय प्राप्त कर सकता है। और इसी तरह भगवान ऋषभदेव भी अपने आत्मिक गुणो के द्वारा काम पर विजय प्राप्त करते हैं। कवि ने इस रूपक को बहुत ही सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है।

वसन्त कामदेव का दूत होने के कारण उसकी विजय के लिये पहिले जाकर अपने अनुरूप वातावरण बनाता है। वसन्त के आगमन का वृक्ष एव लतायें तक नव पुष्पो से उसका स्वागत करती हैं। कोयल कुहू कुहू की रट लगा कर, एव भ्रमर पक्ति गुन्जार करती हुई उसके आगमन की सूचना देती है। युवतिया अपने आपको सज्जित करके भ्रमण करती है। इसी वर्णन को कवि के शब्दो मे पढिए.

वज्यउ नीसाण वसत आयउ, छल्लकु द सिखिल्लिय।
सुगध मलया पवण झुल्लिय, अव कोइल्ल कुल्लिय।
रूण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिह छाइय।
गावति गीय वजति वीणा, तरुणि पाइक आइय ॥३७॥

जिन्ह कडिल केस कलाव, कु तिल मग मुत्तिय धारिय।
जिन्ह वीण भवयग लसंति चदन गु थि कुसुमण वारिय।
जिन्ह भवह धुणहर घनिय समुहर नवण बाण चडाइय।
गावत गीय वजति वीणा, तरुणि पाइक आइय ॥३८॥

मदन (कामदेव) भी ऐसा वैसा योद्धा नही जो शीघ्र ही अपनी पराजय स्वीकार करले, पहिले वह अपने प्रतिपक्षियो की शक्ति परीक्षा करता है और इसके लिए अपने प्रधान सहायक मोह को भेजता है। वह अपने विरोधियो के मन मे विकार उत्पन्न करता है।

मोह चल्लिउ साथि कलिकालु।
जह हु तउ मदन भट्ट, तहमु जाद कुमनु कीयउ।
गढु विषमउ धम्मु पुरू, तहसु सधनु सवूहि लिघउ।
दोनउ चल्ले पँज करि, गव्व धरयउ मन मगहि।
पवन सबल जब उच्छलहि, घण कर केव रहाहि ॥८७॥

गाथा

रहहि सुकिव घणघट, जुडिया जह सवल गजि गजघट ।
सभिविडि चले सुभर, पधाणउ कीयउ मडि मोह ॥८८॥

अन्त में भावात्मक युद्ध होता है और सबसे पहिले भगवान् आदिनाथ राग को वैराग्य से जीत लेते हैं

परियउ तिमरु जिउ देखि भाणु, आगिउ छोडि सो पम्म ठाणु ।
उठि रागु चल्यउ गरजत गहीरु, वैरागु हव्यउ तनि तसु तीस ॥१०९॥

फिर क्या था, भगवान् आदिनाथ एक एक योद्धा को जीतते गए । क्रोध को क्षमा से, मद को मार्दव से, माया को आर्जव से, लोभ को सन्तोष से जीत लिया । अन्त मे पहिले मोह, तथा बाद मे काम से युद्ध हुआ । लेकिन वे भी ध्यान एव विवेक के सामने न टिक सके और अन्त मे उन्हे भी हार माननी पडी ।

'मयण जुज्झ' को कवि ने सवत् १५८६ मे समाप्त किया था,[1] जिसका उल्लेख कवि ने रचना के अन्तिम छन्द मे किया है । यह रूपक काव्य अभी तक अप्रकाशित है । इसकी प्रतिलिपि राजस्थान के कितने ही भण्डारो में मिलती है ।

२ सतोष जय तिलक

यह कवि का दूसरा रूपक काव्य है ।[2] इसमे सन्तोष की लोभ पर विजय का वर्णन किया गया है । काव्य मे सन्तोप के प्रमुख अ ग हैं—शील, सदाचार, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, क्षमा एव सयम । लोभ के प्रमुख अ गो मे असत्य, मान, क्रोध, मोह, माया, कलह, कुव्यसन, एव अनाचार आदि हैं । वास्तव में कवि ने इन पात्रों की नयोजना कर जीवन के प्रकाश और अन्धकार पक्ष की उद्भावना मौलिक रूप मे की है । कवि ने आत्म तत्व की उपलब्धि के लिए निवृत्ति मार्ग को विशेष महत्व दिया है । काव्य का सन्तोष नायक है एव लोभ प्रतिनायक ।

---

१ राइ विक्कम तणउ सवतु नवासियन पनरसे ।
सबदरुति आसु बखाणउ , तिथि पडिया सुकल पखु ।
सुसनिश्चवारु वरु णिखित्तु जणउ, तिणि दिलि वल्ह सु स पडिउ ।
मयण जुज्झु सुविसेसु करत पढत निसुणत नर, जयउ स्वामि रिसहेस ॥१५६॥

२ 'दि० जैन मन्दिर नागदा' बू दी (राजस्थान) के गुटका न० १७४ में इसकी प्रति सग्रहीत है ।

जब वे दोनो युद्ध मे अवतरित होते हैं तो उनकी शक्ति का कवि ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है

षट् पद छन्द

आयउ भूठु परधानु, मतु तत्त खिरिग कीयउ ।
मानु कोहु अरू दोहु मोहु, इकु युद्धउ थीयउ ।
माया कलहि कलेसु थापु, सतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ, आइ अद्धम्मि किगउ पखु ।
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ रागि दोपि आइरु लहिउ ।
अप्पणउ सयनु वल देखि करि लोहु राउ तव गहगहिउ ।।७२।।

× × × ×

गीतिका छन्द

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु, न्यानु चरित सवरो ।
वैरागु, तपु, करूणा, महाव्रत खिमा चित्ति सजमु थिरु ।
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु, द्धंम्मु सो आकिंचणो ।
इन मेलि दलु सतोप राजा, लोम सिउ मडइ रणो ।।७६।।

रचना मे लोभ के अवगुणो का विस्तृत वर्णन किया गया है, क्योकि अनादि काल से चारो गतियो मे घूमने पर भी यह लोभ किसी का पीछा नही छोडता ।

गाथा

भमियउ अनादिकाले चहुगति, मझम्मि जीउ बहु जोनी ।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यह दारुणु लौम प्रचडु ।।१४।।

दोहा

दारुणु लीभ प्रचडु यहु, फिरि फिरि बहु दु ख दीय ।
व्यापि रह्या बलि अप्पइ , लख चउरासी जीय ।।१५।।

लोभ तेल के समान है, जैसे जल मे तेल की वून्द पडते ही वह चारो ओर फैल जाती है, उसी प्रकार लोभ को किंचित मात्रा भी इस जीव को चतुर्गति मे भ्रमण कराने मे समर्थ है । भगवान् महावीर ने ससार मे लोभ को सबसे वुरा पाप कहा है । लोभ ने साधुओ तक को नही छोडा । वे भी मन के मध्य "मोक्ष रूपी लक्ष्मी को पाने की इच्छा से फिरते हैं । इन्ही भावो को कवि के शब्दो मे पढिए—

जिव तेल बून्द जल माहि पडइ, सा पसरि रहे भाजनइ छाइ ।
तिल लोभु करइ राईस चारु, प्रगटावे जगि मे रह विथारु ।।२२।।

× × × ×

वरण मझि मुनीसर जे वसहि, सिव रमणि लोभु तिन हियइ माहि ।
इकि लोभि लग्गि पर भूमि जाहि, पर करहि सेव जीउ जीउ मणहि ।।२४।।

× × × ×

मणवु तिजचहे नर सुरह, हीडावे गति चारि ।
वीर भणइ गोइम निसुणि, लोभ बुरा ससारि ।।४५।।

'सतोप जय तिलक' को कवि ने हिसार नगर मे सवत् १५९१ मे समाप्त किया था । इसका स्वय कवि ने अपनी रचना के अन्त मे उल्लेख किया है ।

सतोपह जयतिलउ जपिउ, हिसार नयर मझ मे ।
जे सुणहि भविय इक्कमनि, ते पावहि वछिय मुक्ख ।।११९।।

सवति पनरह इक्याण भद्दवि, सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे जेउ, तहि जाणि वभनामेण ।।१३०।।

'सतोप जय तिलक' कृति प्राचीन राजस्थानी की एक सुन्दर रचना है, जिसकी भाषा पर अपभ्र श का अधिक प्रभाव है । अकारान्त शब्दो को उकारात वनाकर प्रयोग करना कवि को अधिक अभीष्ट था । इसमे १३१ पद्य हैं । जो साटिक, रड, रगिक्का, गाथा, षटपद्, दोहा, पद्धडी, अडिल्ल, रासा, चदाइणु, गीतिका, तोटक, आदि छन्दो मे विभक्त हैं । रचना भापा विज्ञान क अध्ययन की दृष्टि मे उत्तम है । यह अभी तक अप्रकाशित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ बून्दी (राजस्थान) के गुटका सख्या १७४ मे सग्रहीत है ।

३ चेतन पुद्गल धमाल [1]

यह कवि के रूपक काव्यो मे सवसे उत्तम रचना है । कवि ने इसमे जीव एव पुद्गल के पारस्परिक सम्वन्धो का तुलनात्मक अध्ययन किया है । "चेतन सुणु ! निरगुण जड सिउ सगति कीजइ" को वह वार वार दोहराता है । वास्तव मे यह एक सम्वादात्मक काव्य है जिसके जीव एव जड 'अजीव' दोनो नायक है । स्वय

१ शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर नागवा बून्दी के गुटका सख्या १७४ मे इसकी प्रति सग्रहीत है ।

कवि ने प्रारम्भिक मगलाचरण के पश्चात् काव्य के मुख्य विषय को पाठको के समक्ष निम्न शब्दो मे उपस्थित किया है—

पच प्रमिष्टी वन्दि कवि, ए पणमी धरिभाउ ।
चेतन पुद्गल दहूक, सादु विवादु सुणावो ।।३२।।

प्रारम्भ मे चेतन वाद विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहता है कि जड पदार्थ से किसी को प्रीति नही करनी चाहिए क्योकि वह स्वय विध्वसनशील है । जड के साथ प्रेम बढाकर अपने अापका उपकार सोचना सर्प को दूध पिलाकर उससे अच्छे स्वभाव की आशा करने के समान है ।

जिनि कारि जाणी आपणी, निश्चे बूडा होइ ।
खीरु पब्या विसहरि मुखे, ताते क्या फल होई ।।३७।।

चेतन के प्रश्न का जड ने जो सुन्दर उत्तर दिया उसे कवि के शब्दो मे पढिए—

चेतन चेति न चालई, कहउत माने रोसु ।
आये बोलत सौ फिरे, जडहि लगावइ दोसु ।।३८।।

× × × ×

छह रस भीयण विविह परि, जो जह नित सीचेइ ।
इन्दी होवहि पडवडी, तउ पर धम्मु चलेइ ।।४०।।

इस प्रकार पूरा रूपक सवाद पूर्ण है, चेतन और पुद्गल के सुन्दर विवाद होता है । क्योकि जड और चेतन का सम्बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है वह उसी प्रकार है, जिस प्रकार काष्ठ मे अग्नि एव तिलो मे तेल रहता है ।

जिउ वैसन्दरु कट्ठ महि, तिल महि तेलु भिजेउ ।
आदि अनादिहि जाणिये, चेतन पुद्गल एव ।।५४।।

एक प्रसग पर चेतन पदार्थ जड से कहता है कि उसे सदैव दूसरो का भला करना चाहिए । यदि अपना बुरा होता हो तो भी उसे दूसरो का भला करना चाहिए ।

भला करन्तिहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा जाणि ।
तो भी भला न छोडिये, उत्तम यह परवाणु ।।७०।।

लेकिन इसका पुद्गल के द्वारा दिया हुआ उत्तर भी पढिए ।

भला भला सहु को कहे, मरमु न जाणे कोइ ।
काया सोई मीत रे, भला न किस ही होइ ।।७१।।

किन्तु इससे भी अधिक व्यग निम्न पद्य मे देखिए—

जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ।
तिउ इसु काया सग ते, मोखही जीयहा जाए ॥७३॥

रचना के कुछ सुन्दर पद्य, पाठको के अवलोकनार्थ दिए जा रहे हैं—

जिउ ससि मडणु रमणिका, दिन का मण्डणु भाणु।
तिम चेतन का मण्डणा, यहु पुद्गल तू जाण ॥७८॥

× × × ×

काय कलेवरु वसि सुहु, जतनु करन्तिहि जाइ।
जिव जिव पाचे तूवडी, तिव तिव अति करवाइ ॥८१॥

× × × ×

फूलु मरइ परमलु जीवइ, तिसु जाणे सहु कोई।
हसु चलइ काया रहइ, किवस वराबरि होइ ॥८३॥

× × × ×

काया की निंदा करइ, आपु न देखइ जोइ।
जिउ जिउ भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ ॥९०॥

× × × ×

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कहिया आदि अनादि।
छह खड भोगे चक्कवै, काया के परसादि ॥९६॥

× × × ×

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु।
जे गुण होवहि गोरडी, तउ वन छाडे ताहु ॥९९॥

× × × ×

मोती उपना सीप महि, विडि माथावे लोइ।
तिउ जीउ काया सगते, सिउपुरि वासा होइ ॥१०४॥

× × × ×

कालु पच मारुद्, यहु, चित्त न किसही ठाइ।
इदी सुखु न मोखु हुइ, दोनउ खोवहि काए ॥११४॥

× × × ×

गहु राजगु अथिर मणी, तिगु ऊपरि पगु देहि ।
रे जीव मूढ न जाणही, इय गइ तिय मोहियेहि ॥१२४॥

× × × ×

उत्तिमु नाहमु मोह मनु, बुद्धि पगासमु जाणि ।
ए सत्त जिनि मनि दिढु लिया, ते पहुँता निरवाणि ॥१३५॥

'चेतन पुद्गल धमाल' मे १३६ पद्य है, जिनमे १३१ पद्य दीपक राग के तथा शेष ५ पद्य अष्ट पद षट्पद छन्द मे है । कवि ने इस रचना मे अपने दोनो ही नामो का उल्लेख किया है । रचना काल का इसमे कही उल्लेख नही हुआ है किन्तु संभवत यह कृति रचनाकाल संवत् १५९१ के बाद की लिखी हुई है क्योकि भाषा एव शैली की दृष्टि से इसका रूप अत्यधिक निखरा हुआ है । धमाल का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है...

जिन मुगति सरूपी, तु निकल मनु राया ।
इनु जड के संग ते, भमिया करमि भमाया ।
तजि चवन जिया गुणि, तजि करम सवारो ।
भजि जिन गुण हीरो, तेम याहु विवहारो ।
विवहार यहु गुन जाणि जीयडे करहु इन्द्रिय दमना ।
निरजरहु सगरा कर्म तेहि, जान तनि गुणजनो ॥
जे चतन श्री जिण वीरि भासे, ताहु नित धारह हीया ।
इय भणइ बूचा सदा निम्मल, मुगति सरूपी जीया ॥१३६॥

४ टंडाणा गीत

यह एक उपदेशात्मक गीत है । जिसका प्रधान विषय "इनि ससारे दुख भण्डारे क्या गुण देखि लुभाणावे" है । कवि ने प्राणी मात्र को ससार मे सजग रहते हुए शुद्ध जीवन यापन करने का उपदेश दिया है क्योकि जिस ससार ने उसे अनादि काल से ठगा है, फिर भी यह प्राणी उसी पर विश्वास करता रहता है ।

गीत की भाषा शुद्ध हिन्दी है, जो अपभ्रंश के प्रभाव से रहित है । कवि ने रचना मे अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त और कोई परिचय नही दिया है ।

सिवि सरूप सहज ले लावे, ध्यावे अंतर झाणावे ।
जपति बूचा जिय तुम पावौ, वंछित सुख निरवाणावे ॥१५॥

रचना का नाम 'टडाणा गीत' प्रारम्भिक पद्य के कारण दिया गया है। वैसे टडाणा शब्द यहा ससार के लिये प्रयुक्त हुआ है। टडाणा, टाडा शब्द से बना है, जिसका अर्थ व्यापारियो का चलता समूह होता है। ससार भी प्राणियो के समूह का ही नाम है, जहा सभी वस्तुए अस्थिर हैं।

गीत के छन्द पाठको के अवलोकनार्थ दिये जा रहे है

> मात पिता सुत सजन सरीरा, दुहु सब लोगि विराणावे।
> इयण पख जिमि तरवर वासै, दसहुँ दिशा उडाणावे ॥
>
> विषय स्वारथ सब जग वछे, करि करि बुधि विनाणावे।
> छोडि समाधि महारस नूपम, मधुर विंदु लपटाणावे ॥

इसकी एक प्रति जयपुर के शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधा के एक गुटके के सग्रह मे है।

५ नेमिनाथ वसतु

यह वसत आगमन का गीत है। नेमिनाथ विवाह होने से पूर्व ही तोरण द्वार से सीधे गिरनार पर जाकर तप धारण कर लेते हैं। राजुल को लाख समझाने पर भी वह दूसरा विवाह करने को तैयार नही होती और वह भी तपस्विनी का जीवन यापन का निश्चय कर लेती है। इसके बाद वसन्त ऋतु आती हैं। राजुल तपस्विनी होते हुए भी नवयौवना थी। उसका प्रथम अनुभव कैसा होगा, इसे कवि के शब्दो मे पढिए

> अमृत अवु लउ मोर के, नेमि जिणु गढ गिरनारे।
> म्हारे मनि मधुकरु निह वसइ, सजमु कुसमु मझारो ॥२॥
>
> सखिय वसत सुहाल रे, दीसइ सोरठ देसो।
> कोइल कुहकह, मधुकर सारि सब वणइ पइसो ॥३॥
>
> विवलसिरी यह महकैइरे, भवरा रुणझुण कारो।
> गावहि गति स्वरास्वरि, गध्रव गढ गिरनारे ॥४॥

लेकिन नेमिनाथ ने तो साधु जीवन अगीकार कर लिया था और वे मोक्ष लक्ष्मी का वरण करने के लिए तैयारी कर रहे थे, इसलिये वे अपने सयम के साथ फाग खेल रहे थे। क्षमा का वे पान चवाते और उससे राग का उगाल निकालते।

> मुक्ति रमणि रगि रातेउ, नेमि जिणु खेलइ फागो।
> सरस तवोल समा रे, रासे राग उगालो।

राजुल समुद्रविजय की लाडली कुमारी थी, लेकिन अब तो उसने भी व्रत अंगीकार कर लिए थे। जब नेमिनाथ तपस्वी जीवन बिताने लगे तो वह क्यो पीछे रहती, उसने भी सयम धारण कर लिया.

समुद्रविजयराइ लाडिलउ, अपूरब देस विसालो।
नव रस रसियउ नेमि जिणु, नव रस रहित रसालो ॥७॥

विरस विलासणि भो लयो, समुद विजय राइवालो।
नेमि छयलि तिहुयणि छलियउ, माणिणि मलियउ मारू ॥८॥

राजुल द्वेन देइखत दिनु रमह, सजम सिरिख सुजाणो।
जणु जागइ तव सोवइ, जागह सूतइ लोगो।

रचना में २३ पद्य हैं,[1] अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है

वल्हि विपक्खणु, सखीय वधण जाइ।
मूल सघ मुख मडया, पद्मनन्दि सुपसाइ।
वल्हि वसतु जु गावहि, सो सखि रलिय कराइ ॥

६. नेमिश्वर का बारहमासा[2]

यह एक छोटी सी रचना है, जिसमे नेमिनाथ एव राजुल के प्रथम १२ महिनो का सक्षिप्त वर्णन दिया हुआ है। वर्णन सुन्दर एव सरस है, रचना मे १२ पद्य हैं।

७ विभिन्न रागो में लिखे हुए आठ पद

कवि के उपलब्ध आठ पद आध्यात्मिक भावो से पूर्ण ओतप्रोत हैं। पद लम्बे हैं, तथा राग धनासरी, राग गौडी, राग वडहस, राग दीपक, राग सुहड, राग विहागड, तथा राग आसावरी मे लिखे हुए हैं। राग गौडी वाले पद के अतिरिक्त सभी पदो मे कवि ने अपना बूचराज नाम लिखा है। केवल उसी पद मे वल्ह नाम दिया है। एक पद मे भगवान को फूलमाला चढाने का उल्लेख आया है। उस समय किये गये फूलो का नाम देखिए।

राइ चपा, अरू केवडा, लालो, मालवी मरूवा जाइवे
कुद मयकद अरू केवडा लालो रेवती बहु मुसकाय।

गौडी राग वाला पद अत्याधिक सुन्दर है, उसे भी पाठको के पठनार्थ अविकल रूप मे दिया जा रहा है।

---

१. इसकी एक प्रति महावीर भवन जयपुर के सग्रह में है।
२. वही

रग हो रग हो रगु करि जिणवरु ध्याइये ।
रग हो रग होइ सुरग सिउ मनु लाइये ।।

लाइये यहु मनुरग इस सिउ अवर रगु पतगिया ।
धुलि रहइ जिउ मजीठ कपड़े तेव जिण चतुरगिया ।।

जिव लगनु वस्तरु रगु तिवलगु, इसहिं कान रगाव हो ।
कवि वल्ह लालचु छोडु झूठा रगि जिणवरु ध्यान हो ।।१।।

रग हो रग हो पच महाव्रत पालिये ।
रग हो रग हो सुख अनत निहालीहे ।।

निहालि यहि सुख अनत जीयडे आठमद जिनि खिउ करे।
पचिंदिया दिढु लिया समकतु करम वघण निरजरे ।।

इय विषय विषयर नारि परधनु देखि चित्तु न टाल हो ।
कवि वल्ह लालचु छोडि झूठा रगि पच व्रत पाल हो ।।२।।

रग हो रग हो दिढु करि सीयलु राखीये ।
रग हो रग हो ज्ञान वचन मनि भाखीये ।

भाषिये निज गुर ज्ञानवाणी रागु रोसु निवारहो ।
परहरहु मिथ्या करहु सवरू हीयइ समकतु धार हो ।।

वाईस प्रीसह सहहु अनुदिनु देह सिउ मडहु वलो ।
कवि वल्ह लालचु छोडि झूठा रगु दिढ करि सीयलो ।।३।।

रग हो रग हो मुकति वरणी मनु लाइये ।
रग हो रग हो भव ससारि न आइये ।।

आइये नहु ससारि सागरि जीय वहु दुखु पाइये ।
जिसु वाभु चहु गति फिर्या लोडे सोई मारगु ध्याइये ।

त्रिभुवणह तारणु देउ अरहतु सुगुण निजु गाइये ।
कवि वल्ह लालचु छोडि झूठा मुकति सिउ रगु लाइये ।।४।।

८ विजयकीर्ति गीत

यह कवि का एक ऐतिहासिक गीत है जिसमें भ० विजयकीर्ति का तपस्वी जीवन की प्रशसा की गयी है एव देश के अनेक शासको के नाम भी गिनाये हैं जो उन्हे अत्यधिक सम्मानित करते थे ।

मूल्याकन

'बूचराज' की कृतियो के अध्ययन के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होने हिन्दी–साहित्य की अपूर्व सेवा की थी। उनकी सभी कृतिया काव्यत्व, भाषा एव शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय कृतिया हैं, जिनको हिन्दी–साहित्य के इतिहास मे उचित स्थान मिलना ही चाहिए। कवि ने अपने तीनो ही रूपक काव्यो मे काव्य की वह धारा बहायी है जिसमे पाठकगण स्नान करके अपने जीवन को शान्त, सयमित, शुद्ध एव सतोषपरक बना सकते हैं। कवि ने विभिन्न छन्दो एव राग–रागनियो मे अपनी कृतियो को निबद्ध करके अपने छन्द–शास्त्र का ही परिचय नही दिया, किन्तु लोक-धुनो की भी लोक प्रियता का परिचय उपस्थित किया है। इन कृतियो के माध्यम से कवि ने समाज को सरल एव सरस भाषा मे आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया था और लेखक की दृष्टि मे वह अपने मिशन मे अत्यधिक सफल हुआ है। कवि जैन दर्शन के पुद्गल एव चेतन के सम्बन्ध से अत्यधिक परिचित था। अनादिकाल से यह जीव जड को अपना हितैषी समझता आरहा है और इसी कारण जगत के चक्कर मे फसना पडता है। जीव और जड के इस सम्बन्ध की पोल 'चेतन पुद्गल धमाल' मे कवि ने खोल कर रखदी है। इसी तरह सन्तोष एव काम वासना पर विजय प्राप्त करने का जो सुन्दर उपदेश दिया है—वह भी अपने ढग का अनोखा है। पात्रो के रूप मे प्रस्तुत विषय को उपस्थित करके कवि ने उसमे सरसता एव पाठको की उत्सुकता को जाग्रत किया है। कवि के अब तक जो विभिन्न रागो मे लिखे हुए आठ पद मिले हैं, उनमे उन्ही विषयो को दोहराया गया है। कवि का एक ही लक्ष्य था और वह था जगत के प्राणियो को सुमार्ग पर लगाने का।

सत कवि यशोधर

हिन्दी एव राजस्थानी भापा के ऐसे सैकडो साहित्य सेवी हैं जिनकी सेवाओ का उल्लेख न तो भापा साहित्य के इतिहास मे ही हो पाया है और न अन्य किसी रूप मे उनके जीवन एव कृतियो पर प्रकाश डाला जा सका है। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात एव देहली के समीपवर्त्ती पजावी प्रदेश मे यदि विस्तृत साहित्यिक सर्वेक्षण किया जावे तो आज भी हमे सैकडो ही नही किन्तु हजारो कवियो के बारे में जानकारी उपलब्ध हो सकेगी जिन्होने जीवन पर्यंत साहित्य-सेवाकी थी किन्तु कालान्तर मे उनको एव उनकी कृतियो को सदा के लिये भुला दिया गया। इनमे से कुछ कवि तो ऐसे मिलेंगे जिन्हें न तो अपने जीवन काल मे ही प्रशसा के दो शब्द मिल सके और न मृत्यु के पश्चात् ही उनकी साहित्यिक सेवा के प्रति दो आंसू बहाये गये।

सन्त यशोधर भी ऐसे ही कवि हैं जो मृत्यु के बाद भी जनसाधारण एव विद्वानो की दृष्टि से सदा ओझल रहे। वे दृढनिष्ठ साहित्य सेवी थे। विक्रमीय १६ वी शताब्दी में हिन्दी की लोकप्रियता मे वृद्धि तो रही थी लेकिन उसके प्रचार मे शासन का किञ्चित भी सहयोग नही था। उस समय मुगल साम्राज्य अपने वैभव पर था। सर्वत्र अरवी एव फारसी का दौर दौरा था। महाकवि तुलसीदास का उस समय जन्म भी नही हुआ था और सूरदास को भी साहित्य-गगन मे इतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नही हो सकी थी। ऐसे समय मे सन्त यशोधर ने हिन्दी भापा की उल्लेखनीय सेवा की। यशोधर काष्ठा सघ मे होने वाले जैन सन्त सोमकीर्त्ति के प्रशिष्य एव विजयसेन के शिष्य थे। बाल्यकाल मे ही ये अपने गुरु की वाणी पर मुग्ध हो गये और ससार को असार जानकर उससे उदासीन रहने लगे। युवा होते २ इन्होंने घर बार छोड दिया और सन्तो की सेवा मे लीन रहने लगे। ये आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सन्त सकलकीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भट्टारक विजयकीर्त्ति की सेवा मे रहने का भी इन्हें सौभाग्य मिला और इसीलिये उनकी प्रशसा मे भी इनका लिखा हुआ एक पद मिलता है। ये महाव्रती थे तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह इन पांच व्रतो को पूर्ण रूप से अपने जीवन मे उतार लिया था। साधु अवस्था मे इन्होने गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र एव उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तो मे विहार करके जनता को बुराइयो से बचने का उपदेश दिया। ये समवत स्वय गायक भी थे और अपने पदो को गाकर सुनाया करते थे।

साहित्य के पठन-पाठन मे इन्हे प्रारम्भ से ही रुचि थी। इनके दादा गुरु

सोमकीर्त्ति सस्कृत एव हिन्दी के अच्छे विद्वान थे जिनका हम पहिले परिचय दे चुके है। इसलिये उनसे भी इन्हे काव्य-रचना मे प्रेरणा मिली होगी । इसके अतिरिक्त भ० विजयसेन एव यशकीर्त्ति से भी इन्हे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। इन्होने स्वय बलिभद्र चौपई (सन् १५२८) मे भ० विजयसेन[1] का तथा नेमिनाथ गीत एव अन्य गीतो मे भ० यशकीर्त्ति का उल्लेख किया है। इसी तरह भ० ज्ञानभूषण के शिष्य भ० विजयकीर्त्ति[2] का भी इन पर वरद हस्त था। ये नेमिनाथ के जीवन से सभवत अधिक प्रभावित थे। अत इन्हों ने नेमिराजुल पर अधिक साहित्य लिखा है। इसके अतिरिक्त ये साधु होने पर भी रसिक थे और विरह श्रृगार आदि की रचनाओ मे रुचि रखते थे।

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहा हुआ तथा कितनी आयु के पश्चात् उनका स्वर्गवास हुआ हमे इस सम्बन्ध मे अभी तक कोई प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध नही हो सकी। सोमकीर्त्ति का भट्टारक काल स० १५२६ से १५४० तक का माना जाता है।[3] यदि यह सही है कि इन्हे सोमकीर्त्ति केचरणो मे रहने का अवसर मिला था तो फिर इनका जन्म सवत् १५२० के आस पास होना चाहिये। अभी तक इनकी जितनी रचनायें मिली है उनमे से केवल दो रचनाओ मे इनका रचना काल दिया हुआ है। जो सवत् १५८१ (सन् १५२४) तथा सवत् १५८५ (सन् १५२८) है। अन्य रचनाओ मे केवल इनके नामोल्लेख के अतिरिक्त अन्य विवरण नही मिलता। जिस गुटके मे इनकी रचनाओ का सग्रह है वह स्वय इन्ही के द्वारा लिखा गया है तथा उसका लेखनकाल सवत् १५८५ जेष्ठ सुदी १२ रविवार का है। इसके

---

१. श्री रामसेन अनुक्रमि हुआ, यसकीरति गुरु जाणि।
श्री विजयसेन पठि थापीया, महिमा मेर समाण ।।१८६।।

तास सिष्य इम उच्चरि, ब्रह्म यशोधर जेह।
भूमडलि दणी पर तपि, तारहु रास चिर एह ।।१८७।।

❀ ❀ ❀ ❀

२ श्री यसकीरति सुपसाउलि, ब्रह्म यशोधर भणिसार।
चलण न छोडउ स्वामी, तह्म तणां मुझ भवचा दु ख निवार ।।६८।।

❀ ❀ ❀ ❀

बाग वाणी वर मांगु मात दि, मुझ अविरल वाणी रे ।
यसकीरति गुरु गाउ गिरिया, महिमा मेर समाणी रे ।।
आवु आवु रे भवीयण मनि रलि रे ।।

३. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ सख्या-२९८

अतिरिक्त इन्होने सोमकीर्त्ति के प्रशिष्य भ० यश कीर्ति को भी गुरु के रूप मे स्मरण किया है। जो सवत् १५७५ के आस पास भट्टारक वने होगे। इसलिये इनका समय सवत् १५२० से १५९० तक का मान लेना युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

यशोधर की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी है किन्तु आशा है कि सागवाडा, ईडर आदि स्थानो के जैन ग्रन्थालयो मे इनका और भी साहित्य उपलब्ध हो सकता है। यशोधर प्रतिलिपि करने का भी कार्य करते थे। अभी इनके द्वारा लिपि-बद्ध नैणवा (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार मे एक गुटका उपलब्ध हुआ है जिसमे कितने ही महत्वपूर्ण पाठो का सकलन दिया हुआ है। कवि के द्वारा निबद्ध सभी सभी रचनायें इस गुटके मे सग्रहीत हैं। इसकी लिपि सुन्दर एव सुपाठ्य है।

१, नेमिनाथ गीत

इसमे २२ वें तीर्थकर नेमिनाथ के जीवन की एक झलक मात्र है। पूरी कथा २८ पद्यो मे समाप्त होती है। गीत की रचना सवत् १५८१ मे वसपालपुर (वास-वाडा) मे समाप्त की गई थी।

सवत पनर एकासीहजी वसपालपुर सार।
गुण गाया श्री नेमिनाथ जी, नवनिधि श्री सघवार हो स्वामी।

गीत मे राजुल की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उसे मृगनयनी, हसगामनी वतलाया है। इसके कानो मे झूमके, ललाट पर तिलक एव नाग के समान लटकती हुई उसकी वेणी सुन्दरता में चार चाद लगा रही थी। इसी वर्णन को कवि के शब्दो मे पढिये—

रे हस गमणीय मृगनयणीय स्तवण झाल झवूकती।
तप तपिय तिलक ललाट, सुन्दर वेणीय वासुडा लटकती।
खलिकत चूडीय मुखि वारीय नयन कज्जल सारती।
मलयतीय मेगल मास आसो इम बोली राजमती ॥३॥

गीत की भाषा पर राजस्थानी का अत्यधिक प्रभाव है।

२ नेमिनाथ गीत

राजुल नेमि के जीवन पर यह कवि का दूसरा गीत है। इस गीत मे राजुल नेमिनाथ को अपने घर बुलाती हुई उनकी वाट जोह रही है। गीत छोटा सा है जिसमें केवल ५ पद्य हैं। गीत की प्रथम पक्ति निम्न प्रकार है—

नेम जी आवु न घरे घरे।
वाटडीयां जोइ सिवयामा (ला) डली रे ॥

३ मल्लिनाथ गीत

इस गीत मे ९ छन्द हैं जिसमें तीर्थंकर मल्लिनाथ के गर्भ, जन्म, वैराग्य, ज्ञान एव निर्वाण महोत्सव का वर्णन किया गया है। रचना का अन्तिम पाठ निम्न प्रकार है—

ब्रह्म यशोघर वीनवी हू , हर्षि तह्य तणु दास रे।
गिरिपुरय स्वामीय मडणु, श्री सघ पूरवि श्रास रे॥९॥

४ नेमिनाथ गीत

यह कवि का नेमिनाथ के जीवन पर तीसरा गीत है। पहिले गीतो से यह गीत वडा है और वह ६९ पद्यो मे पूर्ण होता है। इसमे नेमिनाथ के विवाह की घटना का प्रमुख वर्णन है। वर्णन सुन्दर, सरस एव प्रवाह युक्त है। राजुलि–नेमि के विवाह की तैय्यारिया जोर शोर से होने लगी। सभी राजा महाराजाओ को विवाह मे सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण पत्र भेजे गये। उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम आदि सभी दिशाओ के राजागण उस वरात मे सम्मिलित हुये। इसे वर्णन को कवि के शब्दो मे पढिये —

कु कम पत्री पाठवी रे, शुभ आवि अतिसार।
दक्षिण मरहटा मालवी रे, कु कण कन्नड राउ॥

गूजर मडल सोरठीयारे, सिन्धु सवाल देश।
गोपाचल नु राजाउरे, ढीली आदि नरेस॥२३॥

मलवारी प्रासु पाडनेर, खुरसाणी सवि ईस।
वागडी उदल मजकरी रे, लाड गउडना धाम॥२४॥

कवि ने उक्त पद्यो मे दिल्ली को 'ढीली' लिखा है। १२वी शताब्दी के अपभ्र श के महाकवि श्रीधर ने भी अपने पास चरिउ मे दिल्ली को 'ढिल्ली' शब्द से सम्बोधित किया था।[1]

वरातियो के लिये विविध फल मंगाये गये तथा अनेक पकवान एव मिठाइया वनवायी गई। कवि ने जिन व्यञ्जनो के नाम गिनाये हैं उनमे अधिकाश राजस्थानी मिष्ठान्न हैं। कवि के शब्दो मे इसका आस्वादन कीजिये—

---

१. विक्कमणरिंद सुपसिद्ध कालि, ढिल्ली पट्टणि घण कण विसालि।
सनवासी एयारह सरगिह, परिवाडिए वरिसह परिगएहि॥

पकवान नीपजि नित नवा रे, माडी मुरकी सेव ।
खाजा खाजडली दही थरां रे, रेफे घेवर हेव ।।२५।।

मोतीया लाडू मू ग तणा रे, सेवइया अतिसार ।
काकरीय पड सूघीयारे, साकिरि मिश्रित सार ।।२६।।

सालीया तदुल सपडारे, उज्जल अखड अपार ।
मू ग मडोरा अति भला रे, घृत अखडी धार ।।२७।।

राजुल का सौन्दर्य अवर्णनीय था । पावों के नूपुर मधुर शब्द कर रहे थे वे ऐसे लगने थे मानो नेमिनाथ को ही बुलारहे हो । कटि पर सुशोभित 'कनकती' चमक रही थी । अ गुलियो मे रत्नजटित अ गूठी, हाथो में रत्नो की ही चूडिया तथा गले मे नवलख हार सुशोभित था । कानो मे झूमके लटक रहे थे । नयन कजरारे थे । हीरो से जडी हुई ललाट पर राखडी (बोरला) चमक रही थी । इसकी वेणी दण्ड उतार (ऊपर से मोटी तथा नीचे से पतली) थी इन सब आभूषणो से वह ऐसी लगती थी कि मानो कही कामदेव के धनुष को तोडने जा रही हो—

पायेय नेउर रणझणिरे, घूघरी नु घमकार ।
कटियअ सोहि रुडी मेखला रे झूमणु झलक सार ।।

रत्नजडित रूडी मुद्रकारे, करियल चूडीतार ।
वाहि बिठा रूडा बहिरखा रे, हयिडोलि नवलखहार ।।

कोटिय टोडर रूयडु रे, श्रवणे झबकि झाल ।
नानविट टीलु तप तपि रे, खीटलि खटकि चालि ।।

बाकीय भमरि सोहामणी रे, नयले काजल रेह ।
कामिधनु जाणे तोडीउरे, नर मग पाडवा एह ।। ४६ ।।

हीरे जडी रूडी राखडी, वेणी दड उतार ।
मयणि पन्नग जाणं पासीउरे, गोफणु लहि किसार ।।

नेमीकुमार ९ खण के रथ मे विराजमान थे जो रत्न जडित था तथा जिसमे हांसना, जाति के घोडे जुते हुये थे । नेमिकुमार के कानो मे कुण्डल एव मस्तक पर छत्र सुशोभित थे । वे श्याम वर्ण के थे तथा राजुल की सहेलिया उनकी ओर संकेत करके कह रही थी यही उसके पति हैं ?

नवखणु रथ सोअ्रणमि रे, रयण मडित सुविसाल ।
हासना अश्व जिणि जोतस्या रे, लह लहधि जाय अपार ।। ५१ ।।

कानेय कुंडल तपि तपि रे, मस्तकि छत्र सोहंति।
सामला व्रण सोहाम णुरे, सोई राजिल तोरू कंत ।।५२।।

इस प्रकार रचना मे घटनाओ का अच्छा वर्णन किया गया है। अन्त मे कवि ने अपने गुरु को स्मरण करते हुए रचना की समाप्ति की है।

श्री यसकीरति सुपसाउलि, ब्रह्म यशोधर भणिसार।
चलण न छोडउ स्वामी तणा, मुझ भवचा दु.ख निवार ।।६८।।
भणसि जिनेसर सांभलि रे, धन धन ते अवतार।
नव निधि तस घरि उपजि रे, ते तरसि रे संसार ।।६९।।

भाषा-गीत की भाषा राजस्थानी है। कुछ शब्दो का प्रयोग देखिये—

गासु –गाउ गा (१) काइ करु–क्या करू (१) नीकल्या रे–निकला (६) तह्म, अह्म (८) तिहा (२१) नेउर (४३) आपणा (५३) तोरू (तुम्हारा) मोरू (मेरा) (५०) उतावलु (१३) पाठवी (२२)

छन्द—सम्पूर्ण गीत गुडी (गौडी) राग मे निवद्ध है।

५ वलिभद्र चौपई—यह कवि की अब तक उपलब्ध रचनाओ मे सबसे बडी रचना है। इसमे १८९ पद्य हैं जो विभिन्न ढाल, दूहा एवं चौपई आदि छन्दो मे विभक्त हैं। कवि ने इसे संम्वत् १५८५ मे स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर मे सम्पूर्ण[1] किया था।

रचना मे श्रीकृष्ण जी के भाई वलिभद्र के चरित का वर्णन है। कथा का संक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

द्वारिका पर श्री कृष्ण जी का राज्य था। वलभद्र उनके बडे भाई थे। एक वार २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ का उधर विहार हुआ। नगरी के नरनारियो के साथ वे दोनो भी दर्शनार्थ पधारे। वलभद्र ने नेमिनाथ से जब द्वारिका के भविष्य के बारे मे पूछा तो उन्होंने १२ वर्ष वाद द्वीपायन ऋषि द्वारा द्वारिका दहन की भविष्यवाणी की। १२ वर्ष वाद ऐसा ही हुआ। श्रीकृष्ण एवं बलराम दोनो जंगल में चले गये और जब श्रीकृष्ण जी सो रहे थे तो जरदकुमार ने हरिण के धोखे मे इन पर वाण चला दिया जिससे वही उनकी मृत्यु हो गई। जरदकुमार को जब वस्तु-स्थिति का पता लगा तो वह बहुत पछताये लेकिन फिर क्या होना था। बलभद्र जी

१. संवत् पनर पच्यासीर, स्कन्ध नगर मझारि।
भवणि अजित जिनवर तणी, ए गुण गाया सारि ।।१८८।।

श्रीकृष्ण जी को अकेला छोडकर पानी लेने गये थे, वापिस आने पर जब उन्हें मालूम हुआ तो वे बड़े शोकाकुल हुए एव रोने लगे और अपने भाई के मोह से छह मास तक उनके मृत शरीर को लिए घूमते रहे। अन्त मे एक मुनि ने जब उन्हे ससार की असारता बतलाई तो उन्हें भी वैराग्य हो गया और अन्त मे तपस्या करते हुए निर्वाण प्राप्त किया। चौपई की सम्पूर्ण कथा जैन पुराणो के आधार पर निबद्ध है।

चौपई प्रारम्भ करने के पूर्व सर्व प्रथम कवि ने अपनी लघुता प्रगट करते हुए लिखा है कि न तो उसे व्याकरण एव छद का बोध है और न उचित रूप से अक्षर ज्ञान ही है। गीत एव कवित्त कुछ आते नही हैं लेकिन वह जो कुछ लिख रहा है वह सब गुरु के आशीर्वाद का फल है—

न लहु व्याकरण न लहु छन्द, न लहु अक्षर न लहु बिन्द।
हू मूरख मानव मतिहीन, गीत कवित्त नवि जाणु कही ॥२॥
सूरज ऊग्यु तम हरि, जिय जलहर बूढि ताप।
गुरु वयणे पुण्य पामीइ, झडि भवतर पाप ॥५॥
मूरख परिण जे मति लहि, करि कवित अतिसार।
ब्रह्म यशोधर इम कहि, ते सहि गुरु उपगार ॥६॥

उस समय द्वारिका वैभव पूर्ण नगरी थी। इसका विस्तार १२ योजन प्रमाण था। वहा सात से तेरह मजिल के महल थे। बडे बडे करोडपति सेठ वहा निवास करते थे। श्रीकृष्ण जी याचको को दान देने मे हर्षित होते थे, अभिमान नही करते थे। वहा चारो ओर वीर एव योद्धा दिखलाई देते थे। सज्जनो के अतिरिक्त दुर्जनो का तो वहा नाम भी नही था।

कवि ने द्वारिका का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इन्द्रपुरी अवतार।
बार जोयण ते फिर तु बसि, ते देखी जन मन उलसि ॥११॥
नव खण तेर खणा प्रासाद हह श्रेणि सम लागु वाद।
कोटीधज तिहा रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नही मणा ॥१२॥
याचक जननि देइ दान, न हीयडि हरष नही अभिमान।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नही दुर्जणा ॥१३॥
जिण भवने धज बड फरहरि, शिखर स्वर्ग सु वातज करि।
हेम मूरति पोढी परिमाण, एके रत्न अमूलिक जाण ॥१४॥

द्वारिका नगरी के राजा थे श्रीकृष्ण जी जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर थे। वे छप्पन करोड यादवो के अधिपति थे। इन्ही के बडे भाई थे बलभद्र। स्वर्ण के समान जिनका शरीर था। जो हाथी रूपी शत्रुग्रो के लिए सिंह थे तथा हल जिनका आयुध था। रेवती उनकी पटरानी थी। बड़े २ वीर एव योद्धा उनके सेवक थे। वे गुणो के भण्डार तथा सत्यव्रती एव निर्मल-चरित्र के धारण करने वाले थे—

तस बधव अति रूयडु रोहिण जेहनी मात।
बलिभद्र नामि जाणयो, वसुदेव तेहनु तात ॥२८॥

कनक वर्ण सोहि जिसु, सत्य शील तनुवास।
हेमधार वरसि सदा, ईहण पूरि आस ॥२९॥

अरीयण मद गज केशरी, हल आयुध करिसार।
सुहड सुभट सेवि सदा, गिरुउ गुणह भडार ॥३०॥

पटराणी तस रेवती, शील सिरोमणि देह।
धर्म धुरा झालि सदा, पतिसु अविहड नेह ॥३१॥

उन दिनो नेमिनाथका विहार भी उधर ही हुआ। द्वारिका की प्रजा ने नेमिनाथ का खूब स्वागत किया। भगवान श्रीकृष्ण, बलभद्र आदि सभी उनकी वदना के लिए उनकी सभागृह मे पहुँचे। बलभद्र ने जब द्वारिका नगरी के बारे मे प्रश्न पूछा तो नेमिनाथ ने उसका निम्न शब्दो मे उत्तर दिया—

दूहा— सारी वाणी सभली, बोलि नेमि रसाल।
पूरव भवि अक्षर लखा, ते किम थाइ आल ॥७१॥

चुपई—द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी सघार।
मद्य भाड जे नामि कही, तेह थकी वली जलसि सही ॥

पौरलोक सवि जलसि जिसि, बे बधव नीकससु तिसि।
तह्य सहोदर जरा कुमार, ते हनि हाथि मारि मोरार ॥

बार बरस पूरि जे तलि, ए कारण होसि ते तलि।
जिणवर वाणी अमीय समान, सुणीय कुमर तव चाल्यु रानि ॥८०॥

बारह वर्ष पश्चात् वही समय आया। कुछ यादवकुमार अपेय पदार्थ पीने से उन्मत्त हो गए। वे नाना प्रकार की क्रियायें करने लगे। द्वीपायन मुनि को जो बन मे तपस्या कर रहे थे वे देखकर चिढाने लगे।

तिणि अवसरि ते पीछु नीर, विकल रूप ते थया शरीर।
ते परवत था पीछावलि, एकि विसि एक धरणी टलि ॥८२॥

एक नाचि एक गाइ गीत, एक रोइ एक हरषि चित्त ।
एक नासि एक उ डलि धरि, एक सुइ एक क्रीडा करि ॥८३॥

इरिण परि नगरी आवि जिसि, द्विपायन मुनि दीठु तिसि ।
कोप करीनि ताडि ताम, देर गालवली लेई नाम ॥८४॥

द्वीपायन ऋषि के शाप से द्वारिका जलने लगी और श्रीकृष्ण जी एव वलराम अपनी रक्षा का कोई अन्य उपाय न देखकर वन की ओर चले गये । वन मे श्री कृष्ण की प्यास बुझाने के लिए वलभद्र जल लेने चले गये । पीछे से जरदकुमार ने सोते हुये श्रीकृष्ण को हरिण समझ कर वाण मार दिया । लेकिन जव जरदकुमार को मालूम हुआ तो वे पश्चाताप की अग्नि मे जलने लगे । भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हे कुछ नही कहा और कर्मों की विडम्वना से कौन वच सकता है यही कहकर धैर्य धारण करने को कहा—

कहि कृष्ण सुणि जराकुमार, मूढ परिण मम वोलि गमार ।
ससार तणी गति विषमी होइ, हीयडा माहि विचारी जोइ ॥११२॥

करमि रामचन्द वनिगउ, करमि सीता हरणज भउ ।
करमि रावण राज ज टली, करमि लक विभीषण फली ॥११३॥

हरचन्द राजा साहस धीर, करमि अधमि घरि आण्यु वीर ।
करमि नल नर चूकु राज, दमयन्ती वनि कीधी त्याज ॥११४॥

इतने मे वही पर वलभद्र आ गये और श्री कृष्ण जी को सोता हुआ जानकर जगाने लगे । लेकिन वे तब तक प्राणहीन हो चुके थे । यह जानकर बलभद्र रोने लगे तथा अनेक सम्बोधनो से अपना दुःख प्रकट करने लगे । कवि ने इसका वहुत ही मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है ।

जल विण किम रहि माछलु, तिम तुझ विणु बध ।
विरीइ वनडिउ सासीउ, असला रे सघ ॥१३०॥

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त वैराग्य गीत विजय कीर्ति गीत एव २५ से भी अधिक पद उपलब्ध हो चुके हैं । अधिकांश पदो मे नेमि राजुल के वियोग का कथानक है जिनमें प्रेम, विरह एव शृगार की हिलोरें उठती हैं । कुछ पद वैराग्य एव जगत् की वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालने वाले है ।

मूल्यांकन

'ब्रह्म यशोधर' की अब तक जितनी कृतिया उपलब्ध हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि वे हिन्दी के अच्छे विद्वान थे । उनकी काव्य शैली परिमार्जित थी

भी विषय को सरस छन्दो मे प्रस्तुत करते थे। उन्होने नेमिनाथ के जीवन पर कितने ही गीत लिखे, लेकिन सभी गीतो मे अपनी २ विशेषताए है। उन्होने राजुल एव नेमिनाथ को लेकर कुछ शृंगार रस प्रधान पद एव गीत भी लिखे है और उनमे इस रस का अच्छा प्रतिपादन किया है। राजुलके सौन्दर्य वर्णनमे वे अपने पूर्व कवियो से कभी पीछे नही रहे। उन्होने राजुलके आभूषणो का एव बारातके लिए बनने वाले व्यञ्जनो का अत्यधिक सुन्दर वर्णन मे भी वे पाठको के हृदय को सहज ही द्रवित कर देते है। जब कवि राजुल के शब्दो को दोहराता है, 'नेमजी आवुन घरे घरे' तो पाठको को नेमिनाथ के विरह से राजुल की क्या मनोदशा हो रही होगी— इसका सहज ही पता चल जाता है।

'बलिभद्र रास'–जो उनकी सबसे अच्छी काव्य कृति है-श्री कृष्ण एव बलराम के सहोदर प्रेम की एक उत्तम कृति है। यह भी एक लघुकाव्य है, जो भाषा एव शैली की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। यशोधर कवि के काव्यो की एक और विशेषता यह है कि इन कृतियो की भाषा भी अधिक निखरी हुई है। उन पर गुजराती भाषा का प्रभाव कम एव राजस्थानी का प्रभाव अधिक है। इस तरह यशोधर अपने समय के हिन्दी के अच्छे कवि थे।

—

भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य-प्रेमी, धर्म-प्रचारक एव शास्त्रों के प्रबल विद्वान थे। जब वे भट्टारक बने उस समय भट्टारक सकलकीर्ति, एव उनके पट्ट शिष्य, प्रशिष्य भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण एव विजयकीर्ति ने अपनी सेवा, विद्वत्ता एव सास्कृतिक जागरूकता से इतना अच्छा वातावरण बना लिया था कि इन सन्तो के प्रति जैन समाज मे ही नही किन्तु जैनेतर समाज मे भी अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। शुभचन्द्र ने भट्टारक ज्ञानभूषण एव भट्टारक विजयकीर्ति का शासनकाल देखा था। विजयकीर्ति के तो लाडले शिष्य ही नही थे किन्तु उनके शिष्यो में सबसे अधिक प्रतिभावान् सन्त थे। इसलिए विजयकीर्ति की मृत्यु के पश्चात् इन्हे ही उस समय के सबसे प्रतिष्ठित, सम्मानित एव आकर्षक पद पर प्रतिष्ठापित किया गया।

इनका जन्म सवत् १५३०-४० के मध्य कभी हुआ होगा। ये जब बालक थे तभी से इनका इन भट्टारको से सम्पर्क स्थापित हो गया। प्रारम्भ में इन्होंने अपना समय सस्कृत एव प्राकृत भाषा के ग्रन्थो के पढने मे लगाया। व्याकरण एव छन्द शास्त्र में निपुणता प्राप्त की और फिर भ. ज्ञानभूषण एव भ विजयकीर्ति के सानिध्य में रहने लगे। श्री वी पी जोहाकरपुर के मतानुसार ये सवत् १५७३ में भट्टारक बने।[1] और वे इसी पद पर सवत् १६१३ तक रहे। इस तरह शुभचन्द्र ने अपने जीवन का अधिक भाग भट्टारक पद पर रहते हुये ही व्यतीत किया। बलात्कारगण की ईडर शाखा की गद्दी पर इतने समय तक सभवत ये ही भट्टारक रहे। इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा एवं पद का खूब अच्छी तरह सदुपयोग किया और इन ४० वर्षों मे राजस्थान, पजाब, गुजरात एव उत्तर प्रदेश मे साहित्य एव सस्कृति का उत्साहप्रद वातावरण उत्पन्न कर दिया।

शुभचन्द्र ने प्रारम्भ मे खूब अध्ययन किया। भाषण देने एव शास्त्रार्थ करने की कला भी सीखी। भ० बनने के पश्चात् इनकी कीर्ति चारो ओर व्याप्त हो गयी राजस्थान के अतिरिक्त इन्हे गुजरात, महाराष्ट्र, पजाब एव उत्तर प्रदेश के अनेक गाँव एव नगरो से निमन्त्रण मिलने लगे। जनता इनके श्रीमुख से धर्मोपदेश सुनने को अधीर हो उठती इसलिये ये जहा भी जाते भक्त जनो के पलक पावडे बिछ जाते।

---

१ देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या १५८

इनकी वाणी में आकर्षण था इसलिये एक ही बार के सम्पर्क मे वे किसी भी अच्छे व्यक्ति को अपना भक्त बनाने मे समर्थ हो जाते। समय का पूरी तरह सदुपयोग करते। जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ खोना इन्हे अच्छा नही लगता था। ये अपनी साथ ग्र थों के ढेर के ढेर एव लेखन सामग्री रखते। नवीन साहित्य के निर्माण मे इनकी अधिक रुचि थी। इनकी विद्वत्ता से मुग्ध होकर भक्त जन इनसे ग्र थ निर्माण के लिये प्रार्थना करते और ये उनके आग्रह से उसे पूरा करने का प्रयत्न करते। अपने शिष्यो द्वारा ये ग्र थो की प्रतिलिपिया करवाते और फिर उन्हे शास्त्र भण्डारो मे विराजमान करने के लिये अपने भक्तो से आग्रह करते। सवत् १५९० मे ईडर नगर के हूवड जातीय श्रावको ने ब्र० तेजपाल के द्वारा पुण्यास्रव कथा कोश की प्रति लिखवा कर इन्हे भेंट की थी। सवत् १५९९ में डू गरपुर के आदिनाथ चैत्यालय मे इन्ही के उपदेश से अ गप्रज्ञप्ति की प्रतिलिपि करवा कर विराजमान की गयी थी। चन्दना चरित को इन्होने वाग्वर (वागड) मे निबद्ध किया और कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका को सवत् १६१३ मे सागवाडा मे समाप्त की। इसी तरह सवत् १६१७ मे पाण्डव-पुराण को हिसार (पजाब) मे किया गया।

विद्वत्ता

शुभचन्द्र शास्त्रो के पूर्ण मर्मज्ञ थे। ये षट् भाषा कवि-चक्रवर्ति कहलाते थे। छह भाषाओ में सभवतः सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श, हिन्दी, गुजराती एव राजस्थानी भाषायें थी। ये त्रिविध विद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम एव परमागम) के ज्ञाता थे। पट्टावलि के अनुसार ये प्रमाण-परीक्षा, पत्र परीक्षा, पुष्प परीक्षा (?) परीक्षा-मुख, प्रमाण-निर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुदचद्र, न्याय विनिश्चय, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमल-मार्त्तण्ड, आप्तमीमासा, अष्टसहस्री, चितामणिमीमासा विवरण वाचस्पति, तत्त्व कौमुदी आदि न्याय ग्रन्थो के, जैनेन्द्र, शाकटायन ऐन्द्र, पाणिनी, कलाप आदि व्याकरण ग्रन्थो के, त्रैलोक्यसार गोम्मट्टसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सुविज्ञप्ति, अध्यात्माष्टसहस्री (?)और छन्दोलकार आदि महाग्रन्थो के पारगामी विद्वान् थे।[1]

शिष्य परम्परा

वैसे तो भट्टारको के सघ मे कितने ही मुनि, ब्रह्मचारी, साध्विया तथा विद्वान्-गण रहते थे। इसलिए इनके सघ में भी कितने ही साधु थे लेकिन कुछ प्रमुख शिष्य थे जिनमे सकलभूषण, ब्र तेजपाल, वर्णी क्षेमचद्र, सुमतिकीर्त्ति, श्रीभूषण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आचार्य सकलभूषण ने अपने उपदेश रत्नमाला मे

---

१. देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत-जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ सख्या ३८३

भट्टारक शुभचन्द्र का नाम बडे ही आदर के साथ लिया है और अपने आपको उनका शिष्य लिखने में गौरव का अनुभव किया है। यही नही करकुण्ड चरित्र को तो शुभचन्द्र ने सकल भूषण की सहायता से ही समाप्त किया था। वर्णी श्रीपाल ने इन्हे पाण्डवपुराण की रचना मे सहायता दी थी। जिसका उल्लेख शुभचन्द्र ने पाण्डव-पुराण[1] की प्रशस्ति में सुन्दर ढग से किया है —

सुमतिकीर्त्ति इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पट्ट शिष्य बने थे। ये भी प्रकाड विद्वान् थे और इन्होने कितने ही ग्रन्थो की रचना की थी। इस तरह इन्होंने अपने सभी शिष्यो को योग्य बनाया और उन्हे देश एव समाज सेवा करने को प्रोत्साहित किया।

प्रतिष्ठा समारोहों का सचालन

अन्य भट्टारको के समान इन्होने भी कितनी ही प्रतिष्ठा-समारोहों मे भाग लिया और वहा होने वाले प्रतिष्ठा विधानो को सम्पन्न कराने में अपना पूर्ण योग दिया। भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित आज भी कितनी ही मूर्त्तियाँ उदयपुर, सागवाडा, डू गरपुर, जयपुर आदि मन्दिरो मे विराजमान हैं। पचायतो की ओर से ऐसे प्रतिष्ठा-समारोहो मे सम्मिलित होने के लिए इन्हें विधिवत निमन्त्रण-पत्र मिलते थे। और वे सघ सहित प्रतिष्ठाओ में जाते तथा उपस्थित जन समुदाय को धर्मोपदेश का पान कराते। ऐसे ही अवसरो पर ये अपने शिष्यो का कभी २ दीक्षा समारोह भी मनाते जिससे साधारण जनता भी साधु जीवन की ओर आकर्षित होती। सवत् १६०७ मे इन्ही के उपदेश से पञ्चपरमेष्टि की मूर्त्ति की स्थापना की गई थी[1]।

इसी समय की प्रतिष्ठापित एक ११½"×३०" अवगाहना वाली नदीश्वर द्वीप के चैत्यालयो की धातु की प्रतिमा जयपुर के लश्कर के मन्दिर में विराजमान है। यह प्रतिष्ठा सागवाडा में स्थित आदिनाथ के मन्दिर मे महाराजाधिराज श्री आसकरण के शासन काल मे हुई थी। इसी तरह सवत् १५८१ मे इन्ही के उपदेश से हूंबड

---

१ शिष्यस्तस्य समृद्धिबुद्धिविशदो यस्तर्कवेदीवरो,
वैराग्यादिविशुद्धिवृन्दजनक श्रीपालवर्णीमहान।
सशोध्याखिलपुस्तक वरगुणं सत्पांडवानामिद।
तेनालेखि पुराणमर्थनिकर पूर्वं वरे पुस्तके॥

१ सवत् १६०७ वर्षे वैशाख वदो २ गुरु श्री मूलसघे भ० श्री शुभचन्द्र गुरूपदेशात् हूंबड सखेश्वरा गोत्रे सा० जिना।

भट्टारक सम्प्रदाय-पृष्ठ सख्या १४५

जातीय श्रावक साह हीरा राजू आदि ने प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न करवाया था।[1]

साहित्यिक सेवा

शुभचन्द्र ज्ञान के सागर एवं अनेक विद्याओ मे पारगत थे।, वे वक्तृत्व-कला मे पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होंने जो साहित्य सेवा अपने जीवन मे की थी वह इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। अपने मघ की व्यवस्था तथा धर्मोपदेश एव आत्म साधना के अतिरिक्त जो भी समय इन्हें मिला उसका साहित्य-निर्माण मे ही सदुपयोग किया गया। वे स्वय ग्रन्थो का निर्माण करते, शास्त्र भण्डारो की सम्हाल करते, अपने शिष्यो से प्रतिलिपिया करवाते, तथा जगह २ शास्त्रागार खोलने की व्यवस्था कराते थे। वास्तव मे ऐसे ही सन्तो के सद्प्रयास से भारतीय साहित्य सुरक्षित रह सका है।

पाण्डवपुराण इनकी सवत् १६०८ की कृति है। उस समय साहित्यिक-जगत मे इनकी ख्याति चरमोत्कर्ष पर थी। समाज मे इनकी कृतिया प्रिय वन चुकी थी और उनका अत्यधिक प्रचार हो चुका था। सवत् १६०८ तक जिन कृतियो को इन्होने समाप्त कर लिया था[1] उनमें (१) चन्द्रप्रम चरित्र (२) श्रेणिक चरित्र (३) जीवधर चरित्र (४) चन्दना कथा (५) अष्टाह्निका कथा (६) सद्वृत्तिशालिनी (७) तीन चोवीसीपूजा (८) सिद्धचक्र पूजा (९) सरस्वती पूजा (१०) चितामणिपूजा (११) कर्मदहन पूजा (१२) पार्श्वनाथ काव्य पजिका (१३) पल्य व्रतोद्यापन (१४) चारित्र शुद्धिविधान (१५) सशयवदन विदारण (१६) अपशब्द खण्डन (१७) तत्व निर्णय (१८) स्वरूप सवोधन वृत्ति (१९) अध्यात्म तरगिणी (२०) चितामणि प्राकृत व्याकरण (२१) अ गप्रज्ञप्ति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उक्त साहित्य भ० शुभचन्द्र के कठोर परिश्रम एव त्याग का फल है। इसके पश्चात इन्होने और भी कृत्तिया लिखी।[2] सस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त इनकी कुछ रचनायें हिन्दी मे भी उपलब्ध होती हैं। लेकिन कवि ने पाण्डव पुराण मे उनका कोई उल्लेख नही किया

---

१. संवत् १५८१ वर्षे पोष ववी १३ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री ज्ञानभूषण तत्पट्टे श्री भ० विजयकीर्त्ति तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्र गुरूपदेशात् हूंबड जाति साह हीरा भा० राजू सुत सं० तारा द्वि० भार्या पोई सुत स० माका भार्या हीरा दे . .. भा० नारग दे भ्रा० रत्नपाल भा० विराला दे सुत रखभदास नित्य प्रणमति।

२. विस्तृत प्रशस्ति के लिए देखिये लेखक द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसग्रह पृष्ठ सख्या ७

है। राजस्थान के प्राय सभी ग्रन्थ भण्डारो मे इनकी अब तक जो कृतिया उपलब्ध हुई हैं वे निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत रचनाएं

१ चन्दप्रभ चरित्र
२ करकण्डु चरित्र
३ कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका
४ चन्दना चरित्र
५ जीवन्धर चरित्र
६ पाण्डवपुराण
७ श्रेणिक चरित्र
८ सज्जनचित्तवल्लभ
९ पार्श्वनाथ काव्य पंजिका
१० प्राकृत लक्षण टीका
११ अध्यात्मतरंगिणी
१२ अम्बिका कल्प
१३ अष्टाह्निका कथा
१४ कर्मदहन पूजा
१५ चन्दनषष्टिव्रत पूजा
१६ गणधरवलय पूजा
१७ चारित्रशुद्धिविधान
१८ तीस चौबीसी पूजा
१९. पञ्चकल्याणक पूजा
२० पल्यव्रतोद्यापन
२१ तेरहद्वीप पूजा
२२ पुष्पांजलिव्रत पूजा
२३ सार्द्धद्वयद्वीप पूजा
२४ सिद्धचक्र पूजा

हिन्दी रचनायें

१ महावीर छद
२ विजयकीर्त्ति छद
३ गुरु छद
४. नेमिनाथ छद
५ तत्त्वसार दूहा
६ दान छद
७ अष्टाह्निकागीत, क्षेत्रपालगीत एव पद आदि।

उक्त सूची के आधार पर निम्न तथ्य निकाले जा सकते हैं—

१ कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, सज्जन चित्त वल्लभ, अम्बिकाकल्प, गणधर वलय पूजा, चन्दनषष्टिव्रतपूजा, तेरहद्वीपपूजा, पञ्च कल्याणक पूजा, पुष्पांजलि व्रत पूजा, सार्द्धद्वयद्वीप पूजा एव सिद्धचक्रपूजा आदि संवत् १६०८ के पश्चात् अर्थात् पाण्डवपुराण के बाद की कृतिया हैं।

२ सद्वृत्तिशालिनी, सरस्वतीपूजा, चिंतामणिपूजा, संशय वदन-विदारण, अपशब्दखण्डन, तत्वनिर्णय, स्वरूपसंबोधनवृत्ति, एव अंगप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ अभी तक राजस्थान के किसी भण्डार मे प्रति उपलब्ध नही हो सके है।

३ हिन्दी रचनाओ का कवि द्वारा उल्लेख नही किया जाना इन रचनाओ का विशेष महत्त्व की कृतिया नहीं होना बतलाया जाता है क्योकि गुरु छन्द एव

मे से है। ग्रन्थ की भाषा क्लिष्ट एव समास बहुल है। लेकिन विषय का अच्छा प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ का एक पद्य देखिये —

जयतु जितविपक्ष• पालिताशेषशिष्यो
विदितनिजस्वतत्त्वश्चोदितानेकसत्व ।
अमृतविधुयतीश कुन्दकुन्दोगणेश
श्रुतसुजिनविवाद स्याद्विवादाविवाद ॥

इसकी एक प्रति कामा के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। प्रति १०'×४½" आकार की है तथा जिसमे १३० पत्र हैं। यह प्रति सवत् १७९५ पौष बुदी १ शनिवार को लिखी हुई है। समयसार पर आधारित यह टीका अभी तक अप्रकाशित है।

३ कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका

प्राकृतभाषा मे निबद्ध स्वामी कार्त्तिकेय की 'बारस अनुपेहा' एक प्रसिद्ध कृति है। इसमे आध्यात्मिक रस कूट २ कर भरा हुआ है। तथा ससार की वास्तविकता का अच्छा चित्रण मिलता है। इसी कृति की सस्कृत टीका भ० शुभचन्द्र ने लिखी जिससे इसके अध्ययन, मनन एव चिन्तन का समाज मे और भी अधिक प्रचार हुआ और इस ग्रन्थ को लोकप्रिय बनाने मे इस टीका को भी काफी श्रेय रहा। टीका करने मे इन्हे अपने शिष्य सुमतिकीर्त्ति से सहायता मिली जिसका इन्होने ग्रन्थ प्रशस्ति मे साभार उल्लेख किया है।[1] ग्रन्थ रचना के समय कवि हिसार (हरियाणा) नगर मे थे और इसे इन्होने सवत् १६०० माघ सुदी ११ के दिन समाप्त की थी[2]

अपनी शिष्य परम्परा मे सबसे अधिक व्युत्पन्नमति एव शिष्य वर्णी क्षीमचद्र के आग्रह से इसकी टीका लिखी गई थी।[3] टीका सरल एव सुन्दर है तथा गाथाओ

१ तदन्वये श्रीविजयादिकीर्त्ति तत्पट्टधारी शुभचन्द्रदेव ।
तेनेयमाकारि विशुद्धटीका श्रीमत्सुमत्यादिसुकीर्त्तिकीर्त्ते ॥४५॥

२ श्रीमत् विक्रमभूपते प॰मिते वर्षे शते षोडशे,
माघे मासिदशाग्रवह्निमहिते ख्याते दशम्यां तिथौ ।
श्रीमच्छ्रीमहीसार-सार-नगरे चैत्यालये श्रीपुरो ।
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्रदेवविहिता टीका सदा नन्दतु ॥५॥

३ वर्णी श्री क्षीमचन्द्रेण विनयेन कृत प्रार्थना ।
शुभचन्द्र-गुरो स्वामिन, कुरु टीका मनोहरा ॥६॥

के भावो की ऐसी व्याख्या अन्यत्र मिलना कठिन है । ग्रन्थ मे १२ अधिकार है । प्रत्येक अधिकार मे एक २ भावना का वर्णन है ।

४ जीवन्धर चरित्र

यह इनका प्रवन्ध काव्य है जिसमे जीवन्धर के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है । काव्य मे १३ सर्ग है । कवि ने जीवन्धर के जीवन को धर्मकथा के नाम से सम्बोधित किया है । इसकी रचना संवत् १६०३ मे समाप्त हुई थी । इस समय शुभचन्द्र किसी नवीन नगर मे विहार कर रहे थे । नगर मे चन्द्रप्रभ जिनालय था और उसीमे एक समारोह के साथ इस काव्य की समाप्ति की थी । [४]

५ चन्द्रप्रभ चरित्र

चन्द्रप्रभ आठवें तीर्थंकर थे । इन्ही के पावन चरित्र का कवि ने इस काव्य के १२ सर्गो मे वर्णन किया है । काव्य के अन्त मे कवि ने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि न तो वह छन्द अलकारो से परिचित है और न काव्य-शास्त्र के नियमो मे पारगत है । उसने न जैनेन्द्र व्याकरण पढी है, न कलाप एवं शाकटायन व्याकरण देखी है । उसने त्रिलोकसार एवं गोम्मटसार जैसे महान् ग्रंथो का अध्ययन भी नही किया है । किन्तु रचना भक्तिवश की गई है ।[५]

६ चन्दना–चरित्र

यह एक कथा काव्य है जिसमे सती चन्दना के पावन एवं उज्ज्वल जीवन का वर्णन किया गया है । इसके निर्माण के लिए कितने ही शास्त्रो एवं पुराणो का अध्ययन करना पडा था । एक महिला के जीवन को प्रकाश मे लाने वाला यह संभवत प्रथम काव्य है । काव्य मे पाच सर्ग हैं । रचना साधारणत अच्छी है तथा पढने योग्य है । इसकी रचना वागड प्रदेश के डूंगरपुर नगर मे हुई थी —

> शास्त्रण्यनेकान्यवगाह्य कृत्वा पुराणसल्लक्षणकानि भूय ।
> सच्चदना चारु चरित्रमेतत् चकार च श्री शुभचन्द्रदेव ।।९५।।
>
> × × × ×
>
> वाग्वरे वाग्वरे देशे, वाग्वरैः विदिते क्षितौ ।
> चदनाचरित चक्रे, शुभचन्द्रो गिरोपुरे ।।२०८।।

---

४ श्रीमद् विक्रम भूपतेर्वसुहत द्वैतेशते सप्तह,
वेदैर्न्यूनतरे समे शुभतरेपि मासे वरे च शुचौ ।
वारे गीष्पतिके त्रयोदश तिथौ सन्नूतने पत्तने ।
श्री चन्द्रप्रभधाम्नि वै विरचित चेदमया तोपयत ।।७।।

हिन्दी कृतिया

सस्कृत के समान हिन्दी मे भी 'शुभचन्द्र' की अच्छी गति थी। अब तक कवि की ७ मे भी अधिक लघु रचनाए उपलब्ध हो चुकी हैं और राजस्थान एव गुजरात के शास्त्र भण्डारो मे सभवत. और भी रचनाए उपलब्ध हो जावें।

१ महावीर छन्द—यह महावीर स्वामी के स्तवन के रूप मे है। पूरे स्तवन मे २७ पद्य हैं। स्तवन की भाषा सस्कृत-प्रभावित है तथा काव्यत्व पूर्ण है। आदि और अन्तिम भाग देखिये —

आदि भाग

प्रणमीय वीर विबुह जण रे जण, मदमइ मान महाभय भजण।
गुण गण वर्णन करीय बखाणु, यतो जण योगीय जोवन जाणु॥

मेह गेह गुह देश विदेहह, कु डलपुर वर पुहवि सुदेहह।
सिद्धि वृद्धि वर्द्धक सिद्धारथ, नरवर पूजित नरपति सारथ॥

अन्तिम भाग —

सिद्धारथ मुत सिद्धि वृद्धि वाछित वर दायक,
प्रियकारिणी वर पुत्र सप्तहस्तोन्नत कायक।

द्वासप्तति वर वर्ष आयु सिहाकसु म डित,
चामीकर वर वर्ण शरण गोतम यती मडित।

गर्भ दोप दूषण रहित शुद्ध गर्भ कल्याण करण,
'शुभचन्द्र' सूरि सेवित सदा पुहवि पाप पकह हरण॥

२ विजयकीर्ति छन्द

यह कवि की ऐतिहासिक कृति है। कवि द्वारा जिसमे अपने गुरू 'भ० विजयकीर्त्ति' की प्रशसा मे उक्त छन्द लिखा गया है। इसमे २९ पद्य हैं-जिसमें भट्टारक विजयकीर्त्ति को कामदेव ने किस प्रकार पराजित करना चाहा और उसमे उसे स्वय को किस प्रकार मु ह की खानी पडी इसका अच्छा वर्णन दे रखा है। जैन-साहित्य मे ऐसी बहुत कम कृतिया हैं जिनमे किसी एक सन्त के जीवन पर कोई रूपक काव्य लिखा गया हो।

रूपक काव्य की भाषा एव वर्णन शैली दोनो ही अच्छी हैं। इसके नायक हैं 'भ० विजयकीर्त्ति' और प्रतिनायक कामदेव हैं। मत्सर, मद, माया, सप्त व्यसन आदि कामदेव की सेना के सैनिक थे तथा क्रोध मान, माया और लोभ उसकी सेना

के नायक थे। 'भ० विजयकीर्त्ति' कब घबराने वाले थे, उन्होने शम, दम एव यम की सेना को उनसे भिड़ा दिया। जीवन मे पालित महाव्रत उनके अंग रक्षक थे तब फिर किसका साहस था, जो उन्हे पराजित कर सकता था। अन्त मे इस लडाई मे कामदेव बुरी तरह पराजित हुआ और उसे वहा से भागना पड़ा—

भागो रे मयण जाई अनग वेगि रे थाई।
पिसिर मनर माहि मुकारे ठाम।
रीति र पायरि लागी मुनि काहने वर मागी,
दुखि र काटि र जागी जपई नाम ॥
मयण नाम र फेडी आपणी सेना रे तेडी,
आपइ ध्यानती रेडी यतीग वरो।
श्री विजयकीर्त्ति यति अभिनवो,
गछपति पूरव प्रकट कीनि मुकनिकरो ॥२८॥

३ गुरु छन्द

यह भी ऐतिहासिक छन्द है जिसमे 'भ० विजयकीर्त्ति का' गुणानुवाद किया गया है। इस छन्द से विजयकीर्त्ति के माता-पिता का नाम कुअरि एव गगासहाय के नामो का प्रथम वार परिचय मिलता है। छन्द मे ११ पद्य हैं।

४ नेमिनाथ छन्द .

२५ पद्यो मे निवद्ध इस छन्द मे भगवान् नेमिनाथ के पावन जीवन का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा भी सस्कृत निष्ठ है। विवाह मे किस प्रकार आभूषणो एव वाद्य यन्त्रो के शब्द हो रहे थे—इसका एक वर्णन देखिये—

तिहा तड तडई तव लीय ना दिन वलीय भेद भभावजाइ,
झकारि रूडि सहित चू डी भेर नादह गज्जइ।
झण झणण करती टणण धरती सद्ध बोल्लइ झल्लरी।
घुम घुमक करती कण हरती एहवज्जि सुन्दरी ॥ १८ ॥
तण तणण टका नाद सुन्दर ताति मन्दर वण्णिया।
धम धमह नादि धणण करती घुग्घरी सुहकारीया।
भु भुक बोलइ सद्धि सोहइ एह भु गल सारय।
कण कणण को को नादि वादि सुद्ध सादि रम्मण ॥ १९ ॥

५ दान छन्द

यह एक लघु पद है, जिसमे कृपणता की निन्दा एव दान की प्रशसा की गई है। इसमे केवल २ पद्य हैं।

उक्त सभी पाचो कृतियाँ दि० जैन मन्दिर, पाटोदी, जयपुर के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत हैं।

६ तत्वसार दूहा

'तत्वसार दूहा' की एक प्रति कुछ समय पूर्व जयपुर के ठोलियो के मन्दिर के शास्त्र भडार मे उपलब्ध हुई थी। रचना मे जैन सिद्धान्त के अनुसार सात तत्वो का वर्णन किया गया है। इसलिए यह एक सैद्धान्तिक रचना है। तत्वो के अतिरिक्त साधारण जनता की समझ मे आसकने वाले अन्य कितने ही विषयो को कवि ने अपनी इस रचना मे लिया है। १६वी शताब्दी मे ऐसी रचनाओ के अस्तित्व से प्रकट होता है कि उस समय हिन्दी भाषा का अच्छा प्रचलन था। तथा काव्य, कथा चरित, फागु, वेलि आदि काव्यात्मक विषयो के अतिरिक्त सैद्धान्तिक विषयो पर भी रचनाएँ प्रारम्भ हो गई थी।

'तत्वसार दूहा' मे ९१ दोहे एव चौपई हैं। भाषा पर गुजराती का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, क्योकि भट्टारक शुभचन्द्र का गुजरात से पर्याप्त सम्पर्क था। यह रचना 'दुलहा' नामक श्रावक के अनुरोध से लिखी गयी थी। कवि ने उसके नाम का कितने ही पद्यो मे उल्लेख किया है—

> रोग रहित सगति सुखी रे, सपदा पूरण ठाण।
> धर्म बुद्धि मन शुद्धडी 'दुल्हा' अनुक्रमिजाण ॥ ६ ॥

तत्वो का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जिनेन्द्र ही एक परमात्मा है और उनकी वाणी ही सिद्धान्त है। जीवादि सात तत्वो पर श्रद्धान करना ही सच्चा सम्यग्दर्शन है।

> देव एक जिन देव रे, आगम जिन सिद्धान्त।
> तत्व जीवादिक सद्धहण, होइ सम्मत अभ्रात ॥ १७ ॥

मोक्ष तत्व का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—

> कर्म कलक विकरनो रे, नि शेष होयि नाश।
> मोक्ष तत्व श्री जिनकही, जाणवा भानु अन्यास ॥ २६ ॥

आत्मा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है। कि किसी की आत्मा उच्च अथवा नीच नही है, कर्मो के कारण ही उसे उच्च एव नीच की सज्ञा दी जाती है।

और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आत्मा तो राजा है-वह शूद्र कैसे हो सकती है।

उच्च नीच नवि अप्पा हुयि, कर्म कलक तणो की तु सोई।
ब्रभण क्षत्रिय वैश्य न शुद्र, अप्पा राजा नवि होय शुद्र ॥ ७ ॥

आत्मा की प्रशसा मे कवि ने आगे भी लिखा है —

अप्पा धनी नवि नवि निर्धन्न, नवि दुर्बल नवि अप्पा धन्न।
मूर्ख हर्ष द्वेष नविने जीव, नवि सुखी नवि दुखी अतीव ॥ ७१ ॥

× × × ×

सुगस अनत वल वली, रे अनन्त चतुष्टय ठाम।
इन्द्रिय रहित मनो रहित, शुद्ध चिदानन्द नाम ॥ ७७ ॥

रचना काल

कवि ने अपनी यह रचना कब समाप्त की थी-इसका उसने कोई उल्लेख नही किया है, लेकिन सभवत ये रचनाएँ उनके प्रारम्भिक जीवन की रचनाएँ रही हो। इसलिए इन्हे सोलहवी शताब्दी के अन्तिम चरण की रचना मानना ही उचित होगा। रचना समाप्त करते हुए कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है।

ज्ञान निज भाव शुद्ध चिदानन्द चीततो, मूको माया मेह गेह देहए।
सिद्ध तणा सुखजि मलहरहि, आत्मा भावि शुभ एहए।
श्री विजय कीर्ति गुरु मनी धरी, ध्याउ शुद्ध चिद्रूप।
भट्टारक श्री शुभचन्द्र भणि था तु शुद्ध सरूप ॥ ९१ ॥

कृति का प्रथम पद्य निम्न प्रकार है —

समयसार रस साभलो, रे सम रवि श्री समिसार।
समयसार सुख सिद्धना सीझि सुक्ख विचार ॥ १ ॥

मूल्याकन

भ. शुभचन्द्र की सस्कृत एव हिन्दी रचनायें एव भाषा, काव्यतत्व एव वर्णन शैली सभी दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। सस्कृत भाषा के तो ये अधिकारी आचार्य थे ही हिन्दी काव्य क्षेत्र मे भी वे प्रतिभावान कवि थे। यद्यपि हिन्दी भाषा मे उन्होंने कोई

वडा काव्य नही लिखा किन्तु अपनी लघु रचनाओ मे भी उन्होने अपनी काव्य निर्माण प्रतिभा की स्पष्ट छाप छोड दी है। उनका कार्य क्षेत्र वागड प्रदेश एव गुजरात प्रदेश का कुछ भाग था लेकिन इनकी रचनाओ मे गुजराती भाषा का प्रभाव नही के वरावर रहा है। कवि के हिन्दी काव्यो की भाषा सस्कृत निष्ठ है। कितने ही सस्कृत के शब्दो का अनुस्वार सहित ज्यो का त्यो ही प्रयोग कर दिया गया हैं। वे किसी भी कथा एव जीवन चरित को सक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने मे दक्ष थे। महावीर छन्द, नेमिनाथ छन्द इसी श्रेणी की रचनायें है।

सस्कृत काव्यो की दृष्टि से तो शुभचन्द्र को किसी भी दृष्टि मे महाकवि से कम नही कहा जा सकता। उनके जो विविध चरित काव्य हैं उनमे काव्यगत सभी गुण पाये जाते हैं। उनके सभी काव्य सर्गो मे विभक्त हैं एव चरित काव्यो मे अपेक्षित सभी गुण इन काव्यो मे देखने को मिलते हैं। काव्य रचना के साथ साथ ही उन्होने कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा की सस्कृत भाषा मे टीका लिखकर अपने प्राकृत भाषा के ज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया है। अध्यात्मतरगिणी की रचना करके उन्होने अध्यात्मवाद का प्रचार किया। वास्तव मे जैन सन्तो की १७-१८ वी शताब्दि तक यह एक विशेषता रही कि वे सस्कृत एव हिन्दी में समान गति से काव्य रचना करते रहे। उन्होंने किसी एक भाषा का ही पल्ला नही पकडा किन्तु अपने समय की प्रमुख भाषाओ मे ही काव्य रचना करके उनके प्रचार एव प्रसार मे सहयोगी बने। भ० शुभचन्द्र अत्यधिक उदार मनोवृत्ति के साधु थे। उन्होने अपने गुरू विजयकीर्त्ति के प्रति विभिन्न लघु रचनाओ मे भावभरी श्रद्धाजली अर्पित की है वह उनकी महानता का सूचक है। अब समय आगया है जब कवि के काव्यो की विशेषताओ का व्यापक अध्ययन किया जावे।

सन्त शिरोमणि वीरचन्द्र

भट्टारकीय वलात्कारगण शाखा के सस्थापक भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति थे, जो सत शिरोमणि भट्टारक पद्मनन्दि के शिष्यो मे से थे। जब देवेन्द्रकीर्त्ति ने सूरत मे भट्टारक गादी की स्थापना की थी, उस समय भट्टारक सकलकीर्ति का राजस्थान एव गुजरात मे जबरदस्त प्रभाव था और समवत इसी प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से देवेन्द्रकीर्त्ति ने एक और नयी भट्टारक सस्था को जन्म दिया। भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति के पीछे एव वीरचन्द्र के पहिले तीन और भट्टारक हुए जिनके नाम हैं विद्यानन्दि (स० १४९९-१५३७), मल्लिभूषण (१५४४-५५) और लक्ष्मीचन्द्र (१५५६-८२)। 'वीरचन्द्र' भट्टारक लक्ष्मीचन्द के शिष्य थे और इन्ही की मृत्यु के पश्चात् ये भट्टारक बने थे। यद्यपि इनका सूरतगादी से सम्बन्ध था, लेकिन ये राजस्थान के अधिक समीप थे और इस प्रदेश मे खूब विहार किया करते थे।

'सन्त वीरचन्द्र' प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। व्याकरण एव न्याय शास्त्र के प्रकाण्ड वेत्ता थे। छन्द, अलकार, एव सगीत शास्त्र के मर्मज्ञ थे। वे जहा जाते अपने भक्तो की सख्या बढ़ा लेते एव विरोधियो का सफाया कर देते। वाद-विवाद मे उनसे जीतना बडे २ महारथियो के लिए भी सहज नही था। वे अपने साधु जीवन को पूरी तरह निभाते और गृहस्थो को सयमित जीवन रखने का उपदेश देते। एक भट्टारक पट्टावली मे उनका निम्न प्रकार परिचय दिया गया है —

"तदवशमडन-कदर्पदर्पदलन-विश्वलोकहृदयरजनमहाव्रतीपुरदराणा, नवसहस्रप्रमुखदेशाधिपराजाधिराजश्रीअर्जुनजीवराजसभामध्यप्राप्तसन्मानाना, षोडशवर्षपर्यन्तशाकपाकपक्वान्नशाल्योदनादिसर्पिप्रभृतिसरसहारपरिवर्जिताना, दुर्वारवादिसगपर्वतीचूर्णीकरणवज्रायमानप्रथमवचनखडनपडिताना, व्याकरणप्रमेयकमलमार्त्तण्डछदोलकृतिसारसाहित्यसगीतसकलतर्कसिद्धान्तागमशास्त्रसमुद्रपारगताना, सकलमूलोत्तरगुणगणमणिमडितविबुधवरश्रीवीरचन्द्रभट्टारकाणा "

उक्त प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वीरचन्द्र ने नवसारी के शासक अर्जुन जीवराज से खूब सम्मान पाया तथा १६ वर्ष तक नीरस अहार का सेवन किया। वीरचन्द्र की विद्वत्ता का इनके बाद होने वाले कितने ही विद्वानो ने उल्लेख किया है। भट्टारक शुभचन्द्र ने अपनी कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा की सस्कृत टीका मे इनकी प्रशसा मे निम्न पद्य लिखा है :—

भट्टारकपदाधीश मूलसघे विदावरा ।
रमावीरेन्दु-चिद्रूप गुरवो हि गणेशिन ।।१०।।

भ० सुमतिकीर्ति ने इन्हे वादियो के लिए अजेय स्वीकार किया है और उनके लिए वज्र के समान माना है । अपनी प्राकृत पचसग्रह की टीका मे इनके यश को जीवित रखने के लिए निम्न पद्य लिखा है —

दुर्वारिदुर्वादिकपर्वताना वज्रायमानो वरवीरचन्द्र ।
तदन्वये सूरिवरप्रधानो ज्ञानादिभूषो गणिगच्छराज ।।

इसी तरह 'भ० वादिचन्द' ने अपनी सुभगसुलोचना चरित मे वीरचन्द्र की विद्वत्ता की प्रशसा की है और कहा है कि कौनसा मूर्ख उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर विद्वान् नही बन सकता ।

वीरचन्द्र समाश्रित्य के मूर्खा न विदो भथन् ।
त (श्रये) त्यक्त सार्वन्न दीप्त्या निर्जितकाञ्चनम् ।।

'वीरचन्द्र' जबरदस्त साहित्य सेवी थे । वे सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एव गुजराती के पारगत विद्वान थे । यद्यपि अब तक उनकी केवल ८ रचनाए ही उपलब्ध हो सकी हैं, लेकिन व ही उनकी विद्वत्ता का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं । इनकी रचनाओ के नाम निम्न प्रकार हैं—

१ वीर विलास फाग
२ जम्बूस्वामी वेलि
३ जिन आतरा
४ सीमधरस्वामी गीत
५ सबोध सत्ताणु
६ नेमिनाथ रास
७ चित्तनिरोध कथा
८ बाहुबलि वेलि

१. वीर विलास फाग

'वीर विलास फाग' एक खण्ड काव्य है, जिसमे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की जीवन की एक घटना का वर्णन किया गया है । फाग मे १३७ पद्य हैं । इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है । यह प्रति सवत् १६८६ मे भ० वीरचन्द्र के शिष्य भ० महीचन्द के उपदेश से लिखी गयी थी । ब्र० ज्ञानसागर इसके प्रतिलिपिकार थे ।

रचना के प्रारम्भ मे नेमिनाथ के सौन्दर्य एव शक्ति का वर्णन किया गया है, इसके पश्चात् उनकी होने वाली पत्नि राजुल की सुन्दरता का वर्णन मिलता है । विवाह के अवसर पर नगर की शोभा दर्शनीय हो जाती है तथा वहा विभिन्न उत्सव

मनाये जाते हैं। नेमिनाथ की बारात बड़ी सजधज से साथ आती है लेकिन तोरण द्वार के निकट पहुँचने के पूर्व ही नेमिनाथ एक बाड़े में बहुत से पशुओं को देखते हैं और जब उन्हें सारथी द्वारा यह मालूम होता है कि ये सभी पशु बरातियों के लिए एकत्रित किये गये हैं तो उन्हें तत्काल वैराग्य हो जाता है और वे वापस लौट कर गिरनार चले जाते हैं। राजुल को जब उनकी वैराग्य लेने की घटना का मालूम होता है, तो वह घोर विलाप करती है, अचानक [illegible] गिर पड़ती है। वह स्वयं भी अपने सब आभूषणों को उतार कर तपस्वी जीवन धारण कर लेती है। रचना के अन्त में नेमिनाथ के तपस्वी जीवन का भी अच्छा वर्णन मिलता है।

फाग सरस एवं सुन्दर है। फाग में सभी वर्णन अनूठे हैं और उनमें जीवन है तथा काव्यत्व के दर्शन होते हैं। नेमिनाथ की सुन्दरता का एक वर्णन देखिये—

पेलि कमल दल कोमल, सामल वरण शरीर।
त्रिभुवनपति त्रिभुवन तिलो, नीलो गुण गम्भीर ॥७॥

माननी मोहन जिनवर, दिन दिन देह दिपंत।
प्रबल प्रताप प्रभाकर, भवहर श्री भगवंत ॥८॥

लीला ललित नेमीश्वर, अलवेश्वर उदार।
उछलित पंकज पगली, अगटी रूपि अपार ॥९॥

अति कोमल गल गदल, अविमल वाणी विशाल।
अ गि अनोपम निरुपम, मदन''' निवास ॥१०॥

इसी तरह राजुल के सौन्दर्य वर्णन को भी कवि के शब्दों में पढ़िये—

कठिन सुपीन पयोधर, मनोहर अति उतंग।
चंपक वर्णी चन्द्राननी, माननी सोहि सुरंग ॥१७॥

हरणी हरती निज नयणोउ वयणोउ साह सुरंग।
दंत सुपंती दीपती, सोहती सिरवेणी बंध ॥१८॥

कनक केरी जसी पूतली, पातली पदमनी नारि।
सतीय शिरोमणि सुन्दरी, भवतरी अवनि मझारि ॥१९॥

ज्ञान-विज्ञान विचक्षणी, सुलक्षणी कोमल काय।
दान सुपात्रह पेखती, पूजती श्री जिनवर पाय ॥२०॥

राजमती रलीयामणी, सोहामणि सुमधुरीय वाणि।
भमर स्योली भामिनी, स्वामिनी सोहि सुराणी ॥२१॥

रूपि रभा सुतिलोत्तमा, उत्तम अ गि आचार।
परणितु पुण्यवती तेहनि, नेह करी नेमिकुमार ॥२२॥

'फाग' के अन्य सुन्दरतम वर्णनो मे राजुल–विलाप भी एक उल्लेखनीय स्थल है। वर्णनो के पढने के पश्चात् पाठको के स्वयमेव आसू वह निकलते है। इस वर्णन का एक स्थल देखिये —

कनकमि ककण मोडती, तोडती मिणिमिहार।
लू चती केश–कलाप, विलाप करि अनिवार ॥७०॥

नयणि नीर काजलि गलि, टलवलि भामिनी भूर।
किम कर कहि रे साहेलडी, विहि नडि गयो मझनाह ॥७१॥

काव्य के अन्त मे कवि ने जो अपना परिचय दिया है, यह निम्न प्रकार है —

श्री मूल सघि महिमा निलो, जती निलो श्री विद्यानन्द।
सूरी श्री मल्लिभूपण जयो, जयो सूरी लक्ष्मीचन्द ॥१३५॥

जयो सूरी श्री वीरचन्द गुणिद, रच्यो जिणि फाग।
गाता सामलता ए मनोहर, सुखकर श्री वीतराग ॥१३६॥

जीहा मेदिनी मेरु महीधर, द्वीप सायर जगि जाम।
तिहा लगि ए चदो, नदो सदा फाग ए ताम ॥१३७॥

रचनाकाल

कवि ने फाग के रचनाकाल का कही भी उल्लेख नही किया है। लेकिन यह रचना स० १६०० के पहिले की मालूम होती है।

२ जम्बूस्वामी वेलि

यह कवि की दूसरी रचना है। इसकी एक अपूर्ण प्रति लेखक को उदयपुर (राजस्थान) के खण्डेलवाल दि०जैन-मन्दिर के शास्त्र भडार में उपलब्ध हुई थी। वह एक गुटके मे सग्रहीत है। प्रति जीर्ण अवस्था मे है और उसके कितने ही स्थलो से अक्षर मिट गए हैं। इसमे अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित वर्णित है।

जम्बूस्वामी का जीवन जैन कवियो के लिए आकर्पक रहा है। इसलिए सस्कृत, अपभ्र श, हिन्दी, राजस्थानी एव अन्य भाषाओ मे उनके जीवन पर विविध कृतिया उपलब्ध होती हैं।

'वेलि' की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है, जिस पर डिंगल का प्रभाव

है। यद्यपि वेलि काव्यत्व की दृष्टि से उतनी उच्चस्तर की रचना नही है, किन्तु भापा के अध्ययन की दृष्टि से यह एक अच्छी कृति है। इसमे दूहा, त्रोटक एव चाल छदो का प्रयोग हुआ है। रचना का अन्तिम भाग जिसमे कवि ने अपना परिचय दिया है, निम्न प्रकार है —

श्री मूलसघे महिमा निलो, अने देवेन्द्र कीरति सूरि राय ।
श्री विद्यानदि वसुधा निलो, नरपति सेवे पाय ।।१।।

तेह वारें उदयो गति, लक्ष्मीचन्द्र जेण आण ।
श्री मल्लिभूषण महिमा घणो, नमे ग्यासुर्दीन सुलतान ।।२।।

तेह गुरुचरणकमलनमी, अने वेलि रची छे रसाल।
श्री वीरचन्द्र सूरीवर कहे, गाता पुण्य अपार ।।३।।

जम्बूकुमार केवली हवा, अमे स्वर्ग–मुक्ति दातार।
जे भवियण भावें भावसे, ते तरसे ससार ।।४।।

कवि ने इसमे भी रचनाकाल का कोई उल्लेख नही किया है ।

३ जिन आतरा

यह कवि की लघु रचना है, जो उदयपुर के उसी गुटके मे सग्रहीत है। इसमे २४ तीर्थंकरो के एक के वाद दूसरे तीर्थंकर होने मे जो समय लगता है--उसका वर्णन किया गया है। काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से रचना सामान्य है। भाषा भी वही है, जो कवि की अन्य रचनाओ की है। रचना का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है.—

सत्य शासन जिन स्वामीनू , जेहने तेहने रग।
हो जाते वशे भला, ते नर चतुर सुचग ।।६।।

जगें जनम्यू धन्य तेहनू , तेहनू जीव्यू सार ।
रग लागे जेहने मनें, जिन शासनह मझार ।।७।।

श्री लक्ष्मीचन्द्र गुरु गच्छपती, तिस पाटें सार शृ गार ।
श्री वीरचन्द्र गोरें कह्या, जिन आतरा उदार ।।८।।

४. संबोध सत्ताणु भावना

यह एक उपदेशात्मक कृति है, जिसमें ५७ पद्य हैं तथा सभी दोहो के रुप मे हैं। इसकी प्रति भी उदयपुर के उसी गुटके मे सग्रहीत है जिसमे कवि की अन्य

रचनाए हैं। भावना के अन्त मे कवि ने अपना परिचय भी दिया है, जो निम्न प्रकार है —

सूरि श्री विद्यानन्दि जयो, श्री मल्लिभूषण मुनिचन्द्र ।
तस पाटे महिमा निलो, गुरु श्री लक्ष्मीचन्द्र ॥९६॥

तेह कुलकमल दिवसपति, जपती यति वीरचन्द ।
सुणाता भणतां ए भावना, पामीइ परमानन्द ॥९७॥

भावना मे सभी दोहे शिक्षाप्रद हैं तथा सुन्दर भावो से परिपूर्ण हैं। कवि की कहने की शैली सरल एव अर्थगम्य है। कुछ दोहो का आस्वादन कीजिए —

धर्म धर्म नर उच्चरे, न धरे धर्मनो मर्म ।
धर्म कारन प्राणि हणे, न गणे निष्ठुर कर्म ॥३॥

× × × ×

धर्म धर्म सहु को कहो, न गहे धर्म नू नाम ।
राम राम पोपट पढे, बूझै न ते निज राम ॥६॥

× × × ×

धनपाले धनपाल ते, धनपाल नामे भिखारो ।
लाछि नाम लक्ष्मी तणू , लाछि लाकडा वहे नारी ॥७॥

× × × ×

दया बीज विण जे क्रिया, ते सघली अप्रमाण ।
शीतल सजल जल भरया, जेम चण्डाल न वाण ॥१९॥

× × × ×

धर्म मूल प्राणी दया, दया ते जीवनी माय ।
भाट भ्रांति न आणिए, आते धर्मनो पाय ॥२१॥

× × × ×

प्राणि दया विण प्राणी नें, एक न इछ्यू होय ।
तेल न बेलू पलिता, सूप न तोय विलोय ॥२२॥

× × × ×

कठ विहूण् गान जिम, जिम विण व्याकरणे वाणि ।
न सोहे धर्म दया विना, जिम भोयण विण पाणि ॥३२॥

× × × ×

नीचनी सगति परिहरो, धारो उत्तम ग्राचार ।
दुर्लभ भव मानव तणो, जीव तू ग्रालिम हार ॥४०॥

५. सीमन्धर स्वामी गीत

यह एक लघु गीत है–जिसमे सीमन्धर स्वामी का स्तवन किया गया है ।

६. चित्तनिरोधक कथा

यह १५ छन्दो की एक लघु कृति है, जिसमे चित्त को वश मे रखने का उपदेश दिया गया है । यह भी उदयपुर वाले गुटके मे ही सग्रहीत है । ग्रन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सूरि श्री मल्लिभूषण जयो जयो श्री लक्ष्मीचन्द्र ।
तास वश विद्यानिलु लाउ नीति शृ गार ।
श्री वीरचन्द्र सूरी भणी, चित्त निरोध विचार ॥१५॥

७ बाहूबलि वेलि

इसकी एक प्रति उदयपुर के खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है । यह एक लघु रचना है लेकिन इसमे विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया गया है । त्रोटक एव राग सिधु मुख्य छन्द हैं ।

८ नेमिकुमार रास

यह नेमिनाथ की वैवाहिक घटना पर एक लघु कृति है । इसकी प्रति उदयपुर के अग्रवाल दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित है । रास की रचना सवत् १६७३ मे समाप्त हुई थी जैसा कि निम्न छन्दो से ज्ञात होता है—

तेहनी भक्ति करी घणी, मुनि वीरचन्द दीधी वुधि ।
श्री नेमितणा गुण वर्णव्या, पामवा सघली रिधि ॥१६॥

सवत सोलताहोत्तरि, श्रावण सुदि गुरुवार ।
दशमी को दिन रुपडो, रास रच्चो मनोहार ॥१७॥

इस प्रकार 'भ० वीरचन्द्र' की अब तक जो कृतिया उपलब्ध हुई हैं–वे इनके साहित्य-प्रेम का परिचय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त हैं । राजस्थान एव गुजरात के शास्त्र–भण्डारो की पूर्ण खोज होने पर इनकी अभी और भी रचनाए प्रकाश मे आने की आशा है ।

संत सुमतिकीर्त्ति

'सुमतिकीर्त्ति' नाम वाले अब तक विभिन्न सन्तो का नामोल्लेख हुआ है, लेकिन इनमे दो 'सुमतिकीर्त्ति' एक ही समय मे हुए और दोनो ही अपने समय के अच्छे विद्वान् माने जाते रहे। इन दोनो मे एक का 'भट्टारक ज्ञानभूषण' के शिष्य रूप मे और दूसरे का 'भट्टारक शुभचन्द्र' के शिष्य रूप मे उल्लेख मिलता है। 'आचार्य सकलभूषण' ने 'सुमतिकीर्त्ति' का भट्टारक शुभचन्द्र' के शिष्य रूप मे अपनी उपदेशरत्नमाला मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

भट्टारकश्रीशुभचन्द्रसूरिस्तत्पट्टपकेरुहतिग्मरश्मि ।
त्रैविद्यवद्य सकलप्रसिद्धो वादीभसिंहो जयतात्धरिश्या ।।९।।

पट्टे तस्य प्रीणित प्राणिवर्ग शातोदात शीलशाली सुधीमान् ।
जीयात्सूरि. श्रीसुमत्यादिकीर्त्ति. गच्छाधीश कमुकान्तिकलावान् ।।१०।।

"सकल भूषण' ने 'उपदेशरत्नमाला' सवत् १६२७ में समाप्त कर दी थी और इन्होने अपने–आपको 'सुमतिकीर्त्ति' का 'गुरु भाई' होना स्वीकार किया है —

तस्याभूच्च गुरुभ्राता नाम्ना सकलभूषणः ।
सूरिर्जिनमते लीनमना सतोषपोषक ।।८।।

'ब्रह्म कामराज' ने अपने "जयकुमार पुराण' मे भी 'सुमतिकीर्त्ति' को भ० शुभचन्द्र का शिष्य लिखा है —

तेभ्यः श्रीशुभचन्द्र श्रीसुमतिकीर्त्ति सयमी ।
गुणकीर्त्याह्वया आसन् बलोत्कारगणेश्वर ।।८।।

इसके पश्चात् स० १७२२ मे रचित 'प्रद्युम्न–प्रबन्ध में भ० देवेन्द्र कीर्त्ति ने भी सुमतिकीर्त्ति को शुभचन्द्र का शिष्य लिखा है—

तेह पट्ट कुमुद पूरण समी, शुभचन्द्र भवतार रे।
न्याय प्रमाण प्रचड थी, गुरुवादी जलदशमी रे ।।

तस पट्टोधर प्रगटीया श्री सुमतिकीर्त्ति जयकार रे।
तस पट्ट धारक भट्टारक गुणकीर्त्ति गुण गण धार रे ।।४।।

एक दूसरे 'सुमतिकीर्त्ति' का उल्लेख भट्टारक ज्ञान भूषण के शिष्य के रूप

मे मिलता है। सर्व प्रथम भट्टारक ज्ञानभूषण ने कर्मकाण्ड टीका मे सुमतिकीर्त्ति की सहायता से टीका लिखना लिखा है'—

> तदन्वये दयाम्भोधि ज्ञानभूषो गुणाकरः ।
> टीका हो कर्मकाण्डस्य चक्रे सुमतिकीर्त्तियुक् ॥२॥

ये 'सुमतिकीर्ति' मूल संघ मे स्थित नन्दिसंघ बलात्कारगण एव सरस्वती गच्छ के भट्टारक वीरचन्द्र के शिष्य थे, जिनके पूर्व भट्टारक लक्ष्मीभूषण, मल्लिभूषण एव विद्यानन्दि हो चुके थे। सुमतिकीर्ति ने 'प्राकृत पंचसंग्रह'-टीका को संवत् १६२० भाद्रपद शुक्ला दशमी के दिन ईडर के ऋषभदेव के मन्दिर मे समाप्त की थी। इस टीका का संशोधन भी ज्ञानभूषण ने ही किया था।[1] इस प्रकार दोनो 'सुमतिकीर्त्ति' का समय यद्यपि एक सा है, किन्तु इनमे एक भट्टारक सकलकीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भ० शुभचन्द्र के शिष्य थे और दूसरे भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति की परम्परा मे होने वाले भट्टारक ज्ञानभूषण के शिष्य थे। 'प्रथम सुमतिकीर्त्ति' भट्टारक शुभचन्द्र के पश्चात् भट्टारक गादी पर बैठे थे, लेकिन दूसरे सुमतिकीर्त्ति संभवत भट्टारक नही थे, किन्तु ब्रह्मचारी अथवा अन्य पद धारी व्रती होंगे। यदि ऐसा न होता तो वे 'प्राकृत पंचसंग्रह टीका' मे भट्टारक ज्ञानभूषण के पश्चात् प्रभाचन्द का नाम नही गिनाते—

> भट्टारको भुवि ख्यातो जीयाच्छ्रीज्ञानभूषण ।,
> तस्य महोदये भानु. प्रभाचन्द्रो वचोनिधि ॥७॥

अब हम यहा 'भ० ज्ञानभूषण' के शिष्य 'सन्त सुमतिकीर्त्ति' की 'साहित्य-साधना' का परिचय दे रहे है।

'सुमतिकीर्त्ति' सन्त थे, और भट्टारक पद की उपेक्षा करके 'साहित्य-साधना' मे अपनी विशेष रुचि रखते थे। एक 'भट्टारक-विरुदावली' मे 'ज्ञानभूषण' की प्रशंसा करते समय जब उनके शिष्यो के नाम गिनाये तो सुमतिकीर्त्ति को सिद्धातवेदि एव निर्ग्रन्थाचार्य इन दो विशेषणो से निर्दिष्ट किया है। ये संस्कृत,प्राकृत, हिन्दी एव राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। साधु बनने के पश्चात् इन्होने अपना अधिकांश जीवन 'साहित्य-साधना' मे लगाया और साहित्य-जगत को कितनी ही रचनाए भेंट कर गये। इनकी अब तक निम्न रचनाए उपलब्ध हो चुकी हैं —

टीका ग्रंथ—

१ कर्मकाण्ड टीका २ पंचसंग्रह टीका

---

१. देखिये—प० परमानन्दजी द्वारा सम्पादित प्रशस्ति संग्रह'-पृ० स० ७५

हिन्दी रचनायें—

१ धर्म परीक्षा रास
२ जिनवर स्वामी वीनती
३ जिह्वा दत विवाद
४ वसत विद्या–विलास
५ पद–(काल अने तो जीव बहु परिभ्रमता)
६ शीतलनाथ गीत

उक्त रचनाओ का सक्षिप्त परिचय निम्न है —

१. कर्मकाण्ड टीका

आचार्य नेमिचन्द्र कृत कर्मकाण्ड (प्राकृत) की यह सस्कृत टीका है । जिसको लिखने मे इन्होने अपने गुरु भट्टारक ज्ञानभूपण को पूरी सहायता दी थी । यह भी अधिक समव है कि इन्होने ही इसकी टीका लिखी हो और भ० ज्ञानभूषण ने उसका सशोवन करके गुरु होने के कारण अपने नाम का प्रथम उल्लेख कर दिया हो । टीका सुन्दर है । इससे सुमतिकीर्त्ति की विद्वत्ता का पता लगता है ।[1]

२ प्राकृत पचसग्रह टीका

'पचसग्रह' नाम का एक प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ है, जो मूलत पाच प्रकरणो को लिए हुए है, और जिस पर मूल के साथ भाष्य चूर्णि तथा सस्कृत टीका उपलब्ध है । आचार्य अमितिगति' ने स० १०७३ मे प्राकृत पच सग्रह का सशोधन परिवर्द्धनादि के साथ पच सग्रह नामक ग्रन्थ वनाया था । इस टीका का पता लगाने का मुख्य श्रेय प० परमानन्दजी शास्त्री, देहली, को है ।[2]

३ धर्मपरीक्षा रास

यह कवि की हिन्दी रचना है, जिसका उल्लेख प० परमानन्दजी ने भी अपने प्रशस्ति सग्रह की भूमिका में किया है । इस ग्रन्थ की रचना हासोट नगर (गुजरात) मे हुई थी । रास की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है, जैसा कि कवि की अन्य रचनाओ की भाषा है । रास का रचना काल सवत् १६२५ है । रास का अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है —[3]

---

१ प्रशस्ति सग्रह. पृ० ७ के पूरे दो पद्य
२ देखिये—प० परमानन्दजी द्वारा सम्पादित–प्रशस्ति सग्रह–पृ० स० ७४
३ इसकी एक प्रति अग्रवाल दि० जैन मन्दिर उदयपुर (राजस्थान) मे सग्रहीत है ।

पंडित हेमे प्रेरघा घणु वणाय गने वीरदास ।
हासोट नगर पूरो हुवो, धर्म परीक्षा रास ॥

संवत् सोल पनचीसागे, मार्गसिर सुदि बीज वार ।
रास रच्यो रलियामणो, पूर्ण कियो छे सार ॥

४ जिनवर स्वामी वीनती

यह एक स्तवन है, जिसमे २३ छन्द है। रचना साधारण है। एक पद्य देखिये—

धन्य हाथ ते नर तणा, जे जिन पूजन्त ।
नेत्र सफल स्वामी हुवा, जे तुम निरखंत ॥

श्रवण सार वली ते कह्या, जिनवाणी सुणन्त ।
मन रूडु मुनिवर तणु जे तुम्ह ध्यायत ॥

धारु रसना ते कहीए जे लीजे जिन नाम ।
जिन चरण कमल जे नमि, ते जाणो अभिराम ॥४॥

५ जिह्वादन्त विवाद —

यह एक लघु रचना है-जिसमे केवल ११ छन्द हैं। इसमे जीभ और दात मे एक दूसरे मे होने वाले विवाद का वर्णन है। भाषा सरल । एक उदाहरण देखिए—

कठिन क वचन न वोलीयि, रहया एकठा दोयरे ।
पचलोका माहि इम भणी, जिह्वा करे यने होयरे ॥२॥

अह्यो चार्वा चूरी रसकसू, अह्यो करु अपरमादरे ।
कवण विधारी वापडी, किठी करेय सवाद रे ॥३॥

वसन्त विलास गीत —

इसमे २२ छन्द हैं-जिनमे नेमिनाथ के विवाह प्रसग को लेकर रचना की गई है। रचना साधारणत अच्छी है।

'सुमतिकीर्त्ति' १६-१७ वी शताब्दि के विद्वान थे। गुजरात एव राजस्थान दोनो ही प्रदेश इनके पद चिह्नो से पावन बने थे। साहित्य-सर्जन एव आत्म-साधना ही इनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था लेकिन इससे भी बढकर था इनका गाँव गाव मे जन-जाग्रति पैदा करना। लोग अनपढ थे। मूढताओ के चक्कर मे फसे हुए थे। वास्तविक धर्म की ओर से इनका ध्यान कम हो गया था और मिथ्याडम्बरो की ओर प्रवृत्ति होने लगी थी। यही कारण है कि 'धर्म परीक्षा रास' की सर्व प्रथम इन्होंने रचना की। यह इनकी सबसे बडी कृति है। जिससे 'अमितिगति आचार्य' द्वारा निबद्ध 'धर्म परीक्षा' का सार रूप मे वर्णन है। कवि की अन्य रचनाए लघु होते हुए भी काव्यत्व शक्ति से परिपूर्ण है। गीत, पद एव सवाद के रूप मे इन्होने जो रचनाए प्रस्तुत की है, वे पाठक की रुचि को जाग्रत करने वाली हैं। 'सुमति कीर्त्ति' का अभी और भी साहित्य मिलना चाहिए और वह हमारी खोज पर आधारित है।

'ब्रह्म रायमल्ल'

१७वी शताब्दी के राजस्थानी विद्वानो में 'ब्रह्म रायमल्ल' का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। ये 'मुनि अनन्तकीर्ति' के शिष्य थे। 'अनन्तकीर्ति' के सम्बन्ध मे अभी हमे दो लघु रचनाए मिली हैं, जिससे ज्ञात होता है कि ये उस समय के प्रसिद्ध सन्त थे तथा स्थान–स्थान पर विहार करके जनता को उपदेश दिया करते थे। 'ब्रह्म रायमल्ल' ने इनसे कब दीक्षा ली, इसके विषय मे कोई उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन ये ब्रह्मचारी थे और अपने गुरु के सघ मे न रहकर स्वतन्त्र रूप से परिभ्रमण किया करते थे।

'ब्रह्म रायमल्ल' हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी १३ रचनाए प्राप्त हो चुकी हैं। ये सभी रचनाए हिन्दी मे हैं। अपनी अधिकाश रचनाओ के नाम इन्होने 'रास' नाम से सम्बोधित किया है। सभी कृतिया कथा–काव्य हैं और उनमे सरल भाषा मे विषय का वर्णन किया हुआ है। इनका साहित्यकाल सवत् १६१५ से आरम्भ होता है और वह सवत् १६३६ तक चलता है। अपने इक्कीस वर्ष के साहित्यकाल मे १३ रचनाए निबद्ध कर साहित्यिक जगत की जो अपूर्व सेवाए की हैं वे चिरस्मरणीय रहेगी। 'ब्रह्म रायमल्ल' के नाम से ही एक और विद्वान् मिलते हैं, जिन्होने सवत् १६६७ मे 'भक्तामर स्तोत्र' की सस्कृत टीका समाप्त की थी। ये रायमल्ल हूंबड जाति के श्रावक थे तथा माता–पिता का नाम चम्पा और महला था।[1] ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में इन्होने उक्त रचना समाप्त की थी। प्रश्न यह है कि दोनो रायमल्ल एक ही विद्वान् हैं अथवा दोनो भिन्न २ विद्वान् हैं।

---

१ श्रीमद्हूबडवशमडनमणि र्म्ह्येति नामा वणिक्।
तद् भार्या गुणमडिता व्रतयुता चम्पेति नामाभिधा ॥६॥

तत्पुत्रो जिनपादकजमधुपो, रायादिमल्लो व्रती।
चक्रे वित्तिमिमा स्तवस्य नितरा, नत्वा श्री (सु) वादींदुक ॥७॥

सप्तषष्ठ्यकिते वर्षे षोडशाख्ये हि सेवते। (१६६७)।
आषाढ श्वेतपक्षस्य पञ्चम्या बुधवारके ॥८॥

ग्रीवापुरे महासिन्धोस्तटभाग समाश्रिते।
प्रोत्तुंग-दुर्ग सयुक्ते श्री चन्द्रप्रभ-सद्मनि ॥९॥

वर्णिन. कर्मसी नाम्नः वचनात् मयकाऽरचि।
भक्तामरस्य सद्वृत्तिः रायमल्लेन वर्णिना ॥१०॥

हमारे विचार से दोनो भिन्न २ विद्वान है, क्योकि 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' मे उन्होने जो परिचय दिया है, वैसा परिचय अन्य किसी रचना मे नही मिलता। हूवड जातीय 'ब्रह्म रायमल्ल' ने अपने को अनन्तकीर्ति का शिष्य नही माना है और अपने माता-पिता एव जाति का उल्लेख किया है। इस प्रकार दोनो ही रायमल्ल भिन्न २ विद्वान् हैं। इनमे भिन्नता का एक और तथ्य यह है कि भक्तामर स्तोत्र की टीका सवत् १६६७ मे समाप्त हुई थी जबकि राजस्थानी कवि रायमल्ल ने अपनी सभी रचनाओ को सवत् १६३६ तक ही समाप्त कर दिया था। इन ३१ वर्षों मे कवि द्वारा एक भी ग्रन्थ नही रचा जाना भी न्याय सगत मालूम नही होता। इस लिए १७वी शताब्दी मे रायमल्ल नाम के दो विद्वान् हुए। प्रथम राजस्थानी विद्वान् थे जिसका समय १७वी शताब्दी का द्वितीय चरण तक सीमित था। दूसरे 'रायमल्ल' गुजराती विद्वान् थे और उनका समय १७वी शताब्दी के दूसरे चरण से प्रारम्भ होता है। यहा हम राजस्थानी सन्त 'ब्रह्म रायमल्ल' की रचनाओ का परिचय दे रहे हैं। आलोच्य रायमल्ल ने जिन हिन्दी रचनाओ को निबद्ध किया था, उनके नाम निम्न प्रकार है —

१	नेमीश्वर रास	८	जम्बू स्वामी चौपई[1]
२	हनुमन्त कथा रास	९	निर्दोष सप्तमी कथा
३	प्रद्युम्न रास	१०.	आदित्यवार कथा[2]
४	सुदर्शन रास	११.	चिन्तामणि जयमाल[3]
५	श्रीपाल रास	१२.	छियालीस ठाणा[4]
६	भविष्यदत्त रास	१३	चन्द्रगुप्त स्वप्न चौपई,
७.	परमहस चौपई		

इन रचनाओ का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :—

१ नेमीश्वर रास

यह एक लघु कथा काव्य है, जो १३९ छन्दो मे समाप्त होता है। इसमे 'नेमिनाथ स्वामी' के जीवन पर सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। भाषा राजस्थानी

---

१ इसकी एक प्रति मन्दिर, सघीजी, जयपुर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित है।

२ इसकी भी एक प्रति शास्त्र भण्डार मन्दिर सघीजी मे सुरक्षित है।

३ इसकी एक प्रति दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है।

४ इसकी एक प्रति जयपुर के पार्श्वनाथ मन्दिर के शास्त्र भण्डर मे सुर-क्षित है।

है। कवि की वर्णन शैली साधारण है। 'रास' काव्यकृति न होकर कथाकृति है, जिसके द्वारा जनसाधारण तक 'भगवान् नेमिनाथ' के जीवन के सम्बन्ध मे जानकारी पहुंचाना है। कवि की यह सभवतः प्रथम कृति है, इसलिए इसकी भाषा मे प्रौढ़ता नही आ सकी है। इसे सवत् १६१५ की श्रावरण सुदी १३ के दिन समाप्त की थी। रचना स्थल पार्श्वनाथ का मन्दिर था। कवि ने अपना परिचय निम्न शब्दो मे दिया है :—

अहो श्री मूल सगि मुनि सरस्वती गछि, छोडि हो चारि कषाइनि भछि।

अनन्तकीर्ति गुरु वदितो, अहो तास तणो सखी कीयो बखाण।
राइमल ब्रह्म सो जाणिज्यो, स्वामि हो पारस नाथ को थान ॥

श्री नेमि जिनेश्वर पाय नमो ॥१३७॥

अहो सोलहसै पन्द्रहै रच्यो रास, सावलि तेरसि सावण मास।
वार ते जी बुधवासर भलै, जैसी जी बुधि दिन्हो अवकास।
पंडित कोइ जी मति हसो, अहो तैसि जि बुधि कियो परगास ॥१३८॥

रास की काव्य शैली का एक उदाहरण देखिये—

अहो रजमति अति किया हो उपाउ,
कामिणी चरित ते गिण्या हो न जाइ।

वात बिचारि विनै धर्णं सुष,
चिद्रूपस्यो दोनै हो ध्यान।

जैसे होविवु रतना जडिउ,

रागाक वचन सुर्णं नवि कानि।
श्री नेमि जिनेश्वर पाय ननू ॥९७॥

रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसकी प्रतिया राजस्थान के कितने ही भण्डारो मे मिलती हैं। रास का दूसरा नाम 'नेमिश्वर फाग' भी है।

२ हनुमन्त कथा रास

यह कवि की दूसरी रचना, जो सवत् १६१६ वैशाख बुदी ९ शनिवार को समाप्त हुई थी अर्थात् प्रथम रचना के पश्चात् ९ महीने से भी कम समय मे कवि ने जनता को दूसरी रचना भेंट की। यह उसकी साहित्यिक निष्ठा का द्योतक है। रचना एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमे जैन पुराणो के अनुसार हनुमान का वर्णन किया गया है। यह एक सुन्दर काव्य है, जिसमे कवि ने कही २ अपनी विद्वत्ता का भी

परिचय दिया है। इसमे ८६५ पद्य हैं, जो वस्तुबध, दोहा और चौपई छन्दो मे विभक्त हैं। भाषा राजस्थानी है।

कवि ने रचना के अन्त मे अपना वही परिचय दिया है, जो उसने प्रथम रचना मे दिया था। केवल नेमिश्वर रास चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे समाप्त हुआ था और यह हनुमन्त रास, मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय मे। कवि ने रचना के प्रारम्भ मे भी मुनिसुव्रतनाथ को ही नमस्कार किया है। काव्य शैली प्रवाहमय है और वह धारा प्रवाह चलती है। काव्य के बीच बीच में सूक्तियाँ भी वर्णित हैं।

दो उदाहरण देखिए—

पुरिष बिना जो कामिनी होई, ताकौ आदर करै न कोई।
चक्रवर्ती की पुत्री होई, पुरिष बिना दु ख पावै सोई ॥७०॥

× × × × ×

नाना विधि भु जै इक कर्म, सोग कलेस आदि बहु मर्म।
एकै जन्मै एकै मरै, एकै जाइ सिधि सचरै ॥४७॥

'रास' की भाषा का एक उदाहरण देखिए—

देखी सीता तरुनी छाह, रालि मु दडी छोली माह।
पडी मु दडी देखी सीया, अचिरज भयो जनक की धीया। ।६०२॥

लई मु दडी क ठ लगाई, जैसे मिलै बछनौ गाई।
चन्द्र वदन सीय भयो आनन्द, जानिकि मिलीया दशरथनन्द ॥६०३॥

३ प्रद्युम्न रास

कवि की यह तीसरी रचना है, जिसमें कृष्ण क पुत्र प्रद्युम्न का जीवन चरित्र वर्णित है। प्रद्युम्न १६६ पुण्य पुरुषो मे से है। जन्म से ही उसके जीवन मे विचित्र घटनाए घटती हैं। अनेक विद्याओ का वह स्वामी बनता है। वर्षों तक सुख भोगने के पश्चात् वह वैराग्य धारण कर लेता है और अन्त में आठो कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करता है। कवि ने प्रस्तुत कथा को १९५ कडा-बन्ध छन्दो मे पूर्ण किया है। रास की रचना सवत् १६२८ भादवा सुदी २ को समाप्त हुई थी। रचना स्थान था गढ हरसौर– जिसे ब्रह्म रायमल्ल ने अपने धूलि कणो से पवित्र किया था। कवि के शब्दो मे इस वर्णन को पढिये—

हो सोलासै अठवीस विचारो, भादव सुदि दुतिया बुधवारो।

गढ हरसौर महा भलोजी, तिह मै भला जिनेसुर थान।
श्रावक लोग वसै भलाजी, देव शास्त्र गुरु राखै मान ॥१६४॥

यह लघु कृति है जिसमे मुख्यतः काव्यत्व की ओर ध्यान न देकर कथा भाग को ओर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रत्येक पद्य 'हो' शब्द से प्रारम्भ होता है एक उदाहरण देखिए—

हो कचन माला वोहो दुख पायो, विद्या दीन्ही काम न सरीयो।

वात दोउ करि वीगडी जी, पहली चित्ति न वात विचारी ॥
हरत परत दोन्यू गयाजी, कूकर खाधी टाकर मारी ॥११८॥

हो पुत्र पाचसै लीया बुलाय, मारो वेगि काम ने जाय।

हो मन में हरण्या भयाजी, मैरा लेय वन क्रीडा चल्या ॥
माझि वावडी चपियो जी, ऊपरि मोटो पाथर राल्यो तो ॥१८६॥

४ सुदर्शन रास

चारित्र के विपय मे 'सेठ सुदर्शन' की कथा अत्यधिक प्रसिद्ध है।'सेठ सुदर्शन' परम शात एव दृढ सयमी श्रावक थे। सयम से च्युत नही होने के कारण उन्हे शूलो का आदेश मिला, जिसे उन्होने सहर्ष स्वीकार किया। लेकिन अपने चरित्र के प्रभाव से शूली भी सिहासन बन गई। कवि ने इस रास को सवत् १६२९ मे समाप्त किया था। इसमे २०० से अधिक छन्द हैं। काव्य साधारणत अच्छा है।

५ श्रीपाल रास

रचनाकाल के अनुसार यह कवि की पाचवी रचना है। इसमे 'श्रीपाल राजा' के जीवन का वर्णन हैं। वैसे यह कथा 'सिद्ध चक्र पूजा' के महात्म्य को प्रकट करने के लिए भी कही जाती है। 'श्रीपाल' को सर्व प्रथम कुष्ट रोग से पीडित होने के कारण राज्य-शासन छोडकर जगल की शरण लेनी पडती है। दैवयोग से उसका विवाह मैना सुन्दरी से होता है, जिसे भाग्य पर विश्वास रखने के कारण अपने ही पिता का कोप- भाजन बनना पडता है। मैनासुन्दरी द्वारा उसका कुष्ट रोग दूर होने पर वह विदेश जाता है और अनेक राजकुमारियो से विवाह करके तथा अपार सम्पत्ति का स्वामी बनकर वापिस स्वदेश लौटता है। उसके जीवन मे कितनी ही बाधाए आती हैं, लेकिन वे सब उसके अदम्य उत्साह एव सूझ-बूझ के कारण स्वत ही दूर हो जाती हैं। कवि ने इसी कथा को अपने इस काव्य के २९७ पद्यो मे छन्दोबद्ध किया है। रचना स्थान राजस्थान का प्रसिद्ध गढ रणथम्भोर है तथा

रचना काल है सवत् १६२० की अषाढ सुदी १३ शनिवार। गढ पर उस समय अकबर बादशाह का शासन था तथा चारो ओर सुखसम्पदा व्याप्त थी। इसी को कवि के शब्दो मे पढिए—

हो सोलासै तीसो शुभ वर्ष, मास असाढ भणौं सुम हर्ष।
तिथि तेरसि सित सोभिनी हो, अनुराधा नषित्र सुभ सार॥
करण जोग दीसै भला हो, भनै वार 'सनीसरवार ॥२९४॥
हो रणथभ्रमर सोभौक विलास भरिया नीर ताल चहु पास।
बाग विहर बावडी घणी, हो धन कन सम्पत्ति तणौ निधान॥
साहि अकबर राजई, हो सोभा घणी जिसौ सुर थान ॥२९५॥

६ भविष्यदत्त रास

यह कवि का सबसे बडा रासक काव्य है, जिसमे भविष्यदत्त के जीवन का विस्तृत वर्णन है। 'भविष्यदत्त' एक श्रेष्ठि-पुत्र था। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिए विदेश गया। भविष्यदत्त ने वहा खूब धन कमाया। कितने ही देशो मे वे दोनो भ्रमण करते रहे। किन्तु बन्धुदत्त और उसमे कभी नही बनी। उसने भविष्यदत्त को कितनी ही बार धोखा दिया और अन्त मे उसको वन मे अकेला छोड कर स्वदेश लौट आया। वहा आकर वह भविष्यदत्त की स्त्री से ही विवाह करना चाहा, लेकिन भविष्यदत्त के वहा समय पर पहुँच जाने पर उसका काम नही बन सका। इस प्रकार भविष्यदत्त का पूरा जीवन रोमाञ्चक कथाओ से परिपूर्ण है। वे एक के बाद एक इस रूप मे आती हैं कि पाठको की उत्सुकता कभी समाप्त नही होती है।

'भविष्यदत्त रास' मे ९१५ पद्य हैं, जो दोहा चौपई आदि विविध छन्दो मे विभक्त है। कवि ने इसका समाप्ति-समारोह सागानेर (जयपुर) मे किया था। उस समय जयपुर पर महाराजा भगवतदास का शासन था। सांगानेर एक व्यापारिक नगर था। जहा जवाहरात का भी अच्छा व्यापार होता था। श्रावको की वहा अच्छी बस्ती थी और वे धर्म ध्यान मे लीन रहा करते थे। रास का रचनाकाल सवत् १६३३ कार्तिक सुदी १४ शनिवार है। इसी वर्णन को कवि के शब्दो मे पढिये—

सोलह सै तेतीसै सार, कातिग सुदी चौदसि शनिवार।
स्वाति नक्षित्र सिद्धि सुभजोग, पीडा दुख न व्यापै रोग ॥९०८॥
देस ढूढाहड सोभा घणी, पूजै तहा आलि मण तणी।

देस भलो तिह नागर चाल, तक्षिक गढ अति वन्यो विसाल ।
सोभँ वाडी वाग सुचग, कूप वावडी निरमल श्र ग ।।६४५।।

चहु दिसि बन्या ग्रधिकबाजार, भरया पटबर मोतीहार ।
जिन चैत्यालय बहुत उत्त ग, चदवा तोरण धुजा सुभग ।।६४६।।

८ चन्द्रगुप्त चौपई

इसमे भारत के प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को जो १६ स्वप्न आये थे और उन्होने जिनका फल अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी से पूछा था, उन्हीका इस कृति मे वर्णन दिया गया है । यह एक लघु कृति है । जिसमे २५ चौपई छन्द हैं । इसकी एक प्रति महावीर-भवन, जयपुर के सग्रहालय मे सुरक्षित है ।

९ निर्दोप सप्तमी व्रतकथा

यह एक व्रत कथा है । यह भादवा सुदी सप्तमी को किया जाता है और उस समय इस कथा को व्रत करने वालो को सुनाया जाता है । इसमे ५९ दोहा चौपई छन्द है । अन्तिम छन्द इस प्रकार है —

नर नारी जो नीदुप करें, सो ससारं थोडो फिरै ।
जिन पुराण मही इम सुण्यौ, जिहि विधि ब्रह्म रायमल्ल भण्यो ।।५९।।

इसकी एक प्रति महावीर-भवन, जयपुर के सग्रहालय मे है ।

मूल्याकन

'ब्रह्म रायमल्ल' महाकवि तुलसीदास के पूर्व कालीन कवि थे । जव कवि अपने जीवन का ग्रन्तिम अध्याय समाप्त कर रहे थे, उस समय तुलसीदास साहित्यिक क्षेत्र मे प्रवेश करने की परि कल्पना कर रहे होगे । ब्र० रायमल्ल मे काव्य रचना की नैसर्गिक ग्रभिरुचि थी । वे ब्रह्मचारी थे, इसलिए जहा भी चातुर्मास करते, ग्रपने शिष्यो एव अनुयायियो को वर्षाकाल समाप्ति के उपलक्ष्य मे कोई न कोई कृति ग्रवश्य भेंट करते । वे साहित्य के ग्राचार्य थे । लेकिन काव्य रचना करते थे सीधी-सादी जन भाषा मे क्योकि उनकी दृष्टि मे क्लिष्ट एव ग्रलकारो से ग्रोत-प्रोत रचना का जन-साधारण की ग्रपेक्षा विद्वानो के ही लिए ग्रधिक उपयोगी सिद्ध होती है । ग्रव तक उनकी १३ कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं और वे सभी कथा प्रधान रचनाए हैं। इनकी भाषा राजस्थानी है । ऐसा लगता है कि स्वय कवि अथवा उनके शिष्य इन कृतियो को जनता को सुनाया करते थे । कवि हरसौरगढ, रणथम्भोर एव सागानेर मे काव्य-रचना से पूर्व भी इसी तरह विहार करते रहे

भट्टारक रत्नकीर्त्ति

वह विक्रमीय १७ वी शताब्दी का समय था। भारत मे बादशाह अकबर का शासन होने से अपेक्षाकृत शान्ति थी किन्तु बागड एव मेवाड प्रदेश मे राजपूतों एव मुगल शासको मे अनबन रहने के कारण सदैव ही युद्ध का खतरा तथा धार्मिक सस्थानो एव सांस्कृतिक केन्द्रो के नष्ट किये जाने का भय बना रहता था। लेकिन बागड प्रदेश में भ० सकलकीर्ति ने १४ वी शताब्दी मे धर्म प्रचार तथा साहित्य प्रचार की जो लहर फैलायी थी वह अपनी चरम सीमा पर थी। चारो ओर नये नये मदिरो का निर्माण एव प्रतिष्ठा विधानो की भरमार थी। भट्टारको, मुनियो, साधुओ, ब्रह्मचारियो एव स्त्री सन्तो का विहार होता रहता था एव अपने सदुपदेशो द्वारा जन मानस को पवित्र किया करते थे। गृहस्थो मे उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी एव जहा उनके चरण पडते थे वहा जनता अपनी पलकें विछाने को तैयार रहती थी। ऐसे ही समय मे घोघा नगर के हूवड जातीय श्रेष्ठी देवीदास के यहा एक बालक का जन्म हुआ।[1] माता सहजलदे विविध कलाओ से युक्त बालक को पाकर फूली नही समायी। जन्मोत्सव पर नगर मे विविध प्रकार के उत्सव किये गये। वह बालक बडा होनहार था बचपन मे उस बालक को किस नाम से पुकारा जाता था इसका कही उल्लेख नही मिलता।

जीवन एव कार्य

बडे होने पर वह विद्याध्यन करने लगा तथा थोडे ही समय मे उसने प्राकृत एव सस्कृत ग्रथो का गहरा अध्ययन कर लिया। एक दिन अकस्मात् ही उसका भट्टारक अभयनन्दि से साक्षात्कार हो गया। भट्टारक जी उसे देखते ही बडे प्रसन्न हुये एव उसकी विद्वता एव वाक्चातुर्यता से प्रभावित होकर उसे अपना शिष्य बना लिया। अभयनदि ने पहिले उसे सिद्धान्त, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष एव

---

१ हुबड वशे विबुध विख्यात रे,
मात सेहेजलदे देवीदास तातरे।

कु अर कलानिधि कोमल काय रे
पद पूजो प्रेम पातक पलाय रे।

रत्नकीर्ति गीत—गणेश कृत

आयुर्वेद आदि विषयो के ग्रथो का अध्ययन करवाया ।[1] वह व्युत्पन्न मति था इस-लिये शीघ्र ही उसने उन पर अधिकार पा लिया । अध्ययन समाप्त होने के बाद अभयनन्दि ने उसे अपना पट्ट शिष्य घोषित कर दिया । ३२ लक्षणो एव ७२ कलाओ से सम्पन्न विद्वान युवक को कौन अपना शिष्य बनाना नही चाहेगा । सवत् १६४३ मे एक विशेष समारोह के साथ उसका महाभिषेक कर दिया गया और उसका नाम रत्नकीर्ति रखा गया । इस पद पर वे सवत् १६५६ तक रहे । अत इनका काल अनुमानत. सवत् १६०० से १६५६ तक का माना जा सकता है ।

सन्त रत्नकीर्ति उस समय पूर्ण युवा थे । उनकी सुन्दरता देखते ही बनती थी । जब वे धर्म-प्रचार के लिये विहार करते तो उनके अनुपम सौन्दर्य एव विद्वता से सभी मुग्ध हो जाते । तत्कालीन विद्वान गणेश कवि ने भ० रत्नकीर्ति की प्रशसा करते हुये लिखा है—

अरध शशि सम सोहे शुभ भालरे,
वदन कमल शुभ नयन विशाल रे

दशन दाडिम सम रसना रसाल रे,
अधर बिंबीफल विजित प्रवाल रे ।

कठ कबू सम रेखा त्रय राजे रे,
कर किसलय सम नख छवि छाज रे ॥

वे जहा भी विहार करते सुन्दरिया उनके स्वागत मे विविध मगल गीत गाती । ऐसे ही अवसर पर गाये हुये गीत का एक भाग देखिये—

कमल वदन करुणालय कहीये,
कनक वरण सोहे कात मोरी सहीय रे ।

कजल दल लोचन पापना मोचन
कलाकार प्रगटो विख्यात मोरी सहीय रे ॥

वलसाड नगर मे सघपति मल्लिदास ने जो विशाल प्रतिष्ठा करवायी थी वह रत्नकीर्त्ति के उपदेश से ही सम्पन्न हुई थी । मल्लिदास हूवड जाति के श्रावक

---

१. अभयनन्द पाटे उदयो दिनकर, पच महाव्रत धारी ।
सास्त्र सिधात पुराण ए जो, सो तर्क वितर्क विचारी ।
गोमटसार सगीत सिरोमणि, जाणो गोयम अवतारी ।
साहा देवदास केरो सुत सुख कर सेजलदे उरे अवतारी ।
गणेश कहे तम्हो वदो रे, भवियण कुमति कुसग निवारी ॥२॥

थे तथा अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। इस प्रतिष्ठा में सन्त रत्नकीर्त्ति अपने सघ सहित सम्मिलित हुये थे तथा एक विशाल जल यात्रा हुई थी जिसका विस्तृत वर्णन तत्कालीन कवि जयसागर ने अपने एक गीत मे किया है—

जलयात्रा जुगते जाय, त्याहा माननी मगल गाय।
सघपति मल्लिदास सोहत, सघवेण मोहणदे कत।
सारी शृ गार सोलमु सार, मन धरयो हरषा अपार।
च्याला जलयात्रा काजे, वाजित बहु विध वाजे।
वर ढोल निशान नफेरी, दड गडी दमाम सुभेरी।
सणाई सरूपा साद, झल्लरी कसाल सुनाद।
बधूक निशाण न फाट, बोले, विरद बहु विध भाट।
पालखी चामर शुभ छत्र, गजगामिनी नाचे विचित्र।
घाट चुनडी कु भ सोहावे, चद्रानननी ओढीने आवे।

शिष्य परिवार

रत्नकीर्त्ति के कितने ही शिष्य थे। वे सभी विद्वान एव साहित्य-प्रेमी थे। इनके शिष्यो की कितनी ही कविताएँ उपलब्ध हो चुकी हैं। इनमे कुमुदचन्द्र, गणेश जय सागर एव राघव के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। कुमुदचन्द्र को सवत् १६५६ मे इन्होने अपने पट्ट पर विठलाया। ये अपने समय के समर्थ प्रचारक एव साहित्य सेवी थे। इनके द्वारा रचित पद, गीत एव अन्य रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। कुमुदचन्द्र ने अपनी प्राय प्रत्येक रचना मे अपने गुरु रत्नकीर्त्ति का स्मरण किया है। कवि गणेश ने भी इनके स्तवन मे बहुत से पद लिखे हैं— एक वर्णन पढिये—

वदने चद हरावयो सीअले जीत्यो अनग।
सु दर नयणा नीरखामे, लाजा मीन कुरग।
जुगल श्रवण शुभ सोभतारे नास्या सूकनी चच।
अधर अरूण रगे ओपमा, दत मुक्त परपच।
जुहवा जतीणी जाणे सखी रे, अनोपम अमृत वेल।
ग्रीवा कवु कोमलरी रे, उन्नत भुजनी वेल।

इसी प्रकार इनके एक शिष्य राघव ने इनकी प्रशसा करते हुये लिखा हैं कि वे खान मलिक द्वारा सम्मानित भी किये गये थे—

लक्षण वत्तीस सकल अ गि बहोत्तरि
खान मलिक दिये मान जी।

कवि के रूप मे

रत्नकीर्त्ति को अपने समय का एक अच्छा कवि कहा जा सकता है। अभी तक इनके ३६ पद प्राप्त हो चुके हैं। पदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे सन्त होते हुये भी रसिक कवि थे। अत इनके पदो का विषय मुख्यत नेमिनाथ का विरह रहा है। राजुल की तडफन से ये बहुत परिचित थे। किसी भी बहाने राजुल नेमि का दर्शन करना चाहती थी। राजुल बहुत चाहती थी कि वे (नयन)नेमि के आगमन का इन्तजार न करें लेकिन लाख मना करने पर भी नयन उनके आगमन की बाट जोहना नही छोडते—

वरज्यो न माने नयन निठोर।
सुमिरि सुमिरि गुन भये सजल घन, उमगी चले मति फोर ॥१॥

चचल चपल रहत नही रोके, न मानत जु निहोर।
नित उठि चाहत गिरि को मारग, जेही विधि चद्र चकोर ॥२॥ वरज्यो ॥

तन मन धन योवन नही भावत, रजनी न भावत भोर।
रत्नकीरति प्रभु वेगो मिलो, तुम मेरे मन के चोर ॥३॥ वरज्यो ॥

एक अन्य पद मे राजुल कहती है कि नेमि ने पशुओ की पुकार तो सुन ली लेकिन उसकी पुकार क्यो नही सुनी। इसलिये यह कहा जा सकता है कि वे दूसरो का दर्द जानते ही नही हैं—

सखी री नेमि न जानी पीर।
बहोत दिवाजे आये मेरे घरि, सग लेई हलधर वीर ॥१॥

सखी री० ॥

नेमि मुख निरखी हरषी मनसू, अब तो होइ मन धीर।
तामे पसूय पुकार सुनी करी, गयो गिरिवर के तीर ॥२॥

सखी री० ॥

चदवदनी पोकारती डारती, मडन हार उर चीर।
रतनकीरति प्रभू भये वैरागी, राजुल चित कियो धीर ॥३॥

सखी री० ॥

एक पद में राजुल अपनी सखियो से नेमि से मिलाने की प्रार्थना करती है। वह कहती है कि नेमि के विना यौवन, चदन, चन्द्रमा ये सभी फीके लगते हैं। माता-

पिता, सखिया एव रात्रि सभी दु ख उत्पन्न करने वाली हैं इन्ही भावो को रत्नकीर्ति के एक पद मे देखिये—

सखि ! को मिलावे नेम नरिंदा ।
ता विन तन मन यौवन रजत हे, चारु चदन अरु चदा ॥१॥
सखि० ।।

कानन भुवन मेरे जीया लागत, दु सह मदन को फदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी, वे अति दु ख को कदा ॥२॥
सखि० ॥

तुम तो शकर सुख के दाता, करम अति काए मदा ।
रतनकीरति प्रभु परम दयालु, सेवत अमर नरिंदा ॥३॥
सखि० ॥

अन्य रचनाए

इनकी अन्य रचनाओ मे नेमिनाथ फाग एव नेमिनाथ वारहमासा के नाम उल्लेखनीय हैं। नेमिनाथ फाग मे ५७ पद्य हैं। इसकी रचना हासोट नगर मे हुई थी। फाग मे नेमिनाथ एव राजुल के विवाह, पशुओ की पुकार सुनकर विवाह किये विना ही वैराग्य धारण कर लेना और अन्त मे तपस्या करके मोक्ष जाने की अति सक्षिप्त कथा दी हुई है। राजुल की सुन्दरता का वर्णन करते हुये कवि ने लिखा है।

चन्द्रवदनी मृगलोचनी, मोचनी खजन मीन ।
वासग जीत्यो वेणिइ, श्रेणिय मधुकर दीन ।

युगल गल दाये शशि, उपमा नाशा कीर ।
अधर विद्रुम सम उपता, दतन निर्मल नीर ।

चिवुक कमल पर षट पद, आनद करे सुधापान ।
ग्रीवा सुन्दर सोभती, कवु कपोतने वान ॥१२॥

नेमिबारहमासा इनकी दूसरी बडी रचना है। इसमें १२ त्रोटक छन्द हैं। कवि ने इसे अपने जन्म स्थान घोघा नगर मे चैत्यालय मे लिखी थी। रचनाकाल का उल्लेख नहीं दिया गया है। इसमे राजुल एव नेमि के १२ महिने किस प्रकार व्यतीत होते हैं यही वर्णन करना रचना का मुख्य उद्देश्य है।

अब तक कवि की ६ रचनायें एव ३८ पदो की खोज की जा चुकी है।

इस प्रकार सन्त रत्नकीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक एव साहित्य सेवी विद्वान थे। इनके द्वारा रचित पदो की प्रथम पक्ति निम्न प्रकार है—

१ सारङ्ग ऊपर सारङ्ग सोहे सारङ्गत्यासार जी
२ सुरण रे नेमि सामलीया साहेब क्यो वन छोरी जाय
३. सारङ्ग सजी सारङ्ग पर आवे
४. वृषभ जिन सेवो बहु प्रकार
५ सखी री सावन घटाई सतावे
६ नेम तुम कैसे चले गिरिनार
७ कारण कोउ पीया को न जाणे
८. राजुल गेहे नेमी जाय
९. राम सतावे रे मोही रावन
१०. अब गिरी वरज्यो न माने मोरो
११. नेमि तुम आयो घरिय घरे
१२ राम कहे अवर जया मोही भारी
१३. दशानन वीनती कहत होइ दास
१४ वरज्यो न माने नयन निठोर
१५ झीलते कहा कर्‌यो यदुनाथ
१६ सरदी की रयनि सुन्दर सोहात
१७. सुन्दरी सकल सिंगार करे गोरी
१८. कहा थे मडन करु कजरा नैन भरु
१९. सुनो मेरी सयनी धन्य या रयनी रे
२०. रथडो नीहालती रे पूछति सहे सावन नी वाट
२१ सखी को मिलावो नेम नरिंदा
२२ सखी री नेम न जानी पीर
२३ वदेह जनता शरण
२४ श्रीराग गावत सुर किन्नरी
२५ श्रीराग गावत सारङ्गधरी
२६. आजू आली आये नेम नो साउरी

भक्ति मे अधिक रुचि रखते थे इसलिए उन्होने अपनी अधिकाश कृतिया इन्ही दो पर आधारित करके लिखी। नेमिनाथ गीत एव नेमिनाथ बारहमासा के अतिरिक्त अपने हिन्दी पदो मे राजुल नेमि के सम्बन्ध को अत्यधिक भावपूर्ण भाषा मे उपस्थित किया। सर्व प्रथम इन्होने राजुल को एक नारी के रूप मे प्रस्तुत किया। विवाह होने के पूर्व की नारी दशा को एव तोरणद्वार से लौट जाने पर नारी हृदय को खोलकर अपने पदो मे रख दिया। वास्तव मे यदि रत्नकीर्त्ति के इन पदो का गहरा अध्ययन किया जावे तो कवि की कृतियो मे हमे कितने ही नये चरणो की स्थापना मिलेगी। विवाह के पूर्व राजुल अपने पूरे शृ गार के साथ पति की बारात देखने के लिए महल की छत पर सहेलियो के साथ उपस्थित होती है इसके पश्चात पति के अकस्मात वैराग्य धारण कर लेने के समाचारो से उसका शृ गार वियोग मे परिणत हो जाता है दोनो ही वर्णनो को कवि ने अपने पदो मे उत्तम रीति से प्रस्तुत किया है।

भ० रत्नकीर्त्ति की सभी रचनायें भाषा, भाव एव शैली सभी दृष्टियो से अच्छी रचनायें हैं। कवि हिन्दी के जबरदस्त प्रचारक थे। संस्कृत के ऊचे विद्वान् होने पर भी उन्होने हिन्दी भाषा को ही अधिक प्रश्रय दिया और अपनी कृतियां इसी भाषा में लिखी। उन्होने राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात मे भी हिन्दी रचनाओ का ही प्रचार किया और इस तरह हिन्दी प्रेमी कहलाने मे अपना गौरव समझा। यही नही रत्नकीर्त्ति के सभी शिष्य प्रशिष्यो ने इस भाषा मे लिखने का उपक्रम जारी रखा और हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने मे अपना पूर्ण योग दिया।

वारडोली के संत कुमुदचंद्र

वारडोली गुजरात का प्राचीन नगर है। सन् १९२१ मे यहा स्व० सरदार वल्लभ भाई पटेल ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह का विगुल बजाया था और वाद मे वही की जनता द्वारा उन्हें 'सरदार' की उपाधि दी गई थी। आज से ३५० वर्ष पूर्व भी यह नगर अध्यात्म का केन्द्र था। यहा पर ही 'सन्त कुमुदचन्द्र' को उनके गुरु भ० रत्नकीर्त्ति एव जनता ने भट्टारक-पद पर अभिषिक्त किया था। इन्होने यहा के निवासियो में धार्मिक चेतना जाग्रत की एव उन्हे सच्चरित्रता, सयम एवं त्यागमय जीवन अपनाने के लिए बल दिया। इन्होंने गुजरात एव राजस्थान मे साहित्य, अध्यात्म एव धर्म की त्रिवेणी बहायी।

सत कुमुदचद्र वाणी से मधुर, शरीर से सुन्दर तथा मन से स्वच्छ थे। जहा भी उनका विहार होता जनता उनके पीछे हो जाती। उनके शिष्यो ने अपने गुरु की प्रशसा मे विभिन्न पद लिखे हैं। सयमसागर ने उनके शरीर को बत्तीस लक्षणो से सुशोभित, गम्भीर बुद्धि के धारक तथा वादियो के पहाड को तोडने के लिए वज्र समान कहा है।[1] उनके दर्शनमात्र से ही प्रसन्नता होती थी। वे पांच महाव्रत तेरह प्रकार के चारित्र को धारण करने वाले एव बाईस परीपह को सहने वाले थे।[2] एक दूसरे शिष्य धर्मसागर ने उनकी पात्रकेशरी, जम्बूकुमार, भद्रबाहु एव गौतम गणधर से तुलना की है।[3]

उनके विहार के समय कुकम छिडकने तथा मोतियो का चौक पूरने एव बधावा गाने के लिए भी कहा जाता था।[4] उनके एक और शिष्य गणेश ने उनकी निम्न शब्दो मे प्रशसा की है—

---

१ ते बहु कूखि उपनो धीर रे, वत्तीस लक्षण सहित शरीर रे।
बुद्धि बहोत्तरि छे गभीर रे, वादी नग खण्डन वज्र समधीर रे॥

२ पच महाव्रत पाले चंग रे, त्रयोदश चारित्र छे अभंग रे।
बावीय परीसा सहे अ गि रे, दरशन दीठे रग रे॥

३ पात्रकेशरी सम जाणियेरे, जाणो वे जबु कुमार।
भद्रबाहु यतिवर जयो, कलिकाले रे गोयम अवतार रे॥

४. सुन्दरि रे सहु आवो, तह्मे कुंकम छडो देवडावो।
वारु मोतिये चौक पूरावो, रूडा सह गुरु कुमुदचदने वधावे॥

कला बहोत्तर अ ग रे, ग्रीयले जीत्यो अनग ।
माहत मुनी मूलसघ के सेवो सुरतरुजी ॥

सेवो सज्जन आनद धनि कुमुदचन्द मुणिंद,
रतनकीरति पाटि चद के गच्छपति गुणनिलोजी ॥१॥

जीवो की दया करने के कारण लोग उन्हे दया का वृक्ष कहते थे। विद्याबल से उन्होने अनेक विद्वानो को अपने वश मे कर लिया था। उनकी कीर्त्ति चारो ओर फैल गयी थी तथा राजा महाराजा एव नवाब उनके प्रशसक बन गये थे।

कुमुदचन्द्र का जन्म गोपुर ग्राम मे हुआ था। पिता का नाम सदाफल एव माता का नाम पद्माबाई था। इन्होने मोढ वश मे जन्म लिया था।[1] इनका जन्म का नाम क्या था, इसके विषय मे कोई उल्लेख नही मिलता। वे जन्म से होनहार थे।

बचपन से ही वे उदासीन रहने लगे और युवावस्था से पूर्व ही इन्होने सयम धारण कर लिया। इन्द्रियो के ग्राम को उजाड दिया तथा कामदेव रूपी सर्प को जीत लिया।[2] अध्ययन की ओर इनका विशेष ध्यान था। ये रात दिन व्याकरण, नाटक, न्याय, आगम एव छद अलकार शास्त्र आदि का अध्ययन किया करते थे।[3] गोम्मटसार आदि ग्रन्थो का इन्होंने विशेष अध्ययन किया था। विद्यार्थी अवस्था मे ही ये भ० रत्नकीर्त्ति के शिष्य बन गये। इनकी विद्वत्ता, वाक्चातुर्यता एव अगाध ज्ञान को देखकर भ० रत्नकीर्त्ति इन पर मुग्ध हो गये और इन्हे अपना प्रमुख शिष्य बना लिया। धीरे २ इनकी कीर्त्ति बढने लगी। रत्नकीर्त्ति ने बारडोली नगर में अपना पट्ट स्थापित किया था और सवत् १६५६ (सन् १५९९) वैशाख मास मे

---

१ मोढ वश शृ गार शिरोमणि, साह सदाफल तात रे।
जायो जतिवर जुग जयवन्तो, पद्मावाई सोहात रे॥

२ बालपणें जिणे संयम लीधो, धरीयो वेराग रे।
इन्द्रिय ग्राम उजारया हेला, जीत्यो मद नाग रे॥

३. अहनिशि छन्द व्याकरण नाटिक भणे,
न्याय आगम अलंकार।

वादी गज केसरी विरुद्ध बारु वहे,
सरस्वती गच्छ सिणगार रे॥

गीत धर्मसागर कृत

इनका जैनो के प्रमुख सत (भट्टारक) के पद पर अभिषेक कर दिया।[1] यह सारा कार्य सघपति कान्ह जी, सघ बहिन जीवादे, सहस्त्रकरण एव उनकी धर्मपत्नी तेजलदे, भाई मल्लदास एव बहिन मोहनदे, गोपाल आदि की उपस्थिति मे हुआ था। तथा इन्होने कठिन परिश्रम करके इस महोत्सव को सफल बनाया था।[2] तभी से कुमुदचन्द बारडोली के सत कहलाने लगे।

वारडोली नगर एक लबे समय तक आध्यात्मिक, साहित्यिक एव धार्मिक गति-विधियो का केन्द्र रहा। सत कुमुदचन्द्र के उपदेशामृत को सुनने के लिए वहा धर्मप्रेमी सज्जनो का हमेशा ही आना जाना रहता। कभी तीर्थयात्रा करने वालो का सघ उनका आशीर्वाद लेने आता तो कभी अपने-अपने निवास-स्थान के रजकणो को सत के पैरो से पवित्र कराने के लिए उन्हे निमन्त्रण देने वाले वहा आते। सवत्

---

१ सवत् सोल छपन्ने वैशाखे प्रकट पटोधर थाप्या रे।
रत्नकीर्त्ति गोर बारडोली वर सूर मत्र शुभ आप्या रे।
भाई रे मन मोहन मुनिवर सरस्वती गच्छ सोहत।
कुमुदचन्द भट्टारक उदयो भवियण मन मोहत रे॥

गुरु स्तुति गणेशकृत

वारडोली मध्ये रे, पाट प्रतिष्ठा कीध मनोहार।
एक शत आठ कुम्भ रे, ढाल्या निर्मल जल अतिसार॥
सूर मत्र आपयो रे, सकलसघ सानिध्य जयकार।
कुमुदचन्द्र नाम कह्य रे, सघवि कुटम्ब प्रतपो उदार॥

गुरु गीत गणेश कृत

२ सघपति कहान जी सघवेण जीवादेनो कन्त।
सहेसकरण सोहे रे तरुणी तेजलदे जयवत॥
मल्लदास मनहरु रे नारी मोहन दे अति सत।
रमादे वीर भाई रे गोपाल वेजलदे मन मोहन्त॥६॥

गुरु-गीत

सघवी कहान जी भाइया वीर भाई रे।
मल्लिदास जमला गोपाल रे॥
छपने सवत्सरे उछव अति कर्यो रे।
सघ मेली बाल गोपाल रे॥

गीत-गणेशकृत

१६८२ मे इन्होने गिरिनार जाने वाले एक सघ का नेतृत्व किया ।[1] इस सघ के सघपति नागजी भाई थे, जिनकी कीर्त्ति चन्द्र–सूर्य–लोक तक पहुच चुकी थी। यात्रा के अवसर पर ही कुमुदचन्द्र सघ सहित घोघा नगर आये, जो उनके गुरु रत्नकीर्त्ति का जन्म–स्थल था। बारडोली वापस लौटने पर श्रावको ने अपनी अपार सम्पत्ति का दान दिया।[2]

कुमुदचन्द्र आध्यात्मिक एव धार्मिक सन्त होने के साथ साथ साहित्य के परम आराधक थे। अब तक इनकी छोटी बडी २८ रचनाऐ एव ३० से भी अधिक पद प्राप्त हो चुके हैं। ये सभी रचनाऐ राजस्थानी भाषा में हैं, जिन पर गुजराती का प्रभाव है। ऐसा ज्ञात होता है कि ये चिन्तन, मनन एव धर्मोपदेश के अतिरिक्त अपना सारा समय साहित्य-सृजन मे लगाते थे। इनकी रचनाओ मे गीत अधिक हैं, जिन्हें ये अपने प्रवचन के समय श्रोताओ के साथ गाते थे।[3] नेमिनाथ के तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण करने की अदभुत घटना से ये अपने गुरु रत्नकीर्त्ति के समान बहुत प्रभावित थे, इसीलिए इन्होंने नेमिनाथ एव राजुल पर कई रचना लिखी हैं। उनमे नेमिनाथ बारहमासा, नेमीश्वर गीत, नेमिजिन गीत, आदि के नाम उल्लेखनिय हैं। राजुल का सौन्दर्य वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है—

रूपे फूटडी मिटे जूठडी बोले मीठडी वाणी।
विद्रुम उठडो पल्लव गोठडी रसनी कोटडी वखाणी रे ।।

सारग वयणी सारग नयणी सारग मनी श्यामा हरी।
लबी कटि भमरी बकी शकी हरिनी मार रे ।।

कवि ने अधिकाश छोटी रचनाऐ लिखी हैं। उन्हे कठस्थ भी किया जा सकता है। बडी रचनाओ में आदिनाथ विवाहलो, नेमीश्वरहमची एव भरत बाहुबलि

---

१ सवत् सोल व्यासीये सवच्छर गिरिनारि यात्रा कीधा।
श्री कुमुदचन्द्र गुरु नामि सघपति तिलक कहवा ।।१३।।

गीत धर्मसागर कृत

२ इणि परिउछव करता आव्या घोघानगर मझारि।
नेमि जिनेश्वर नाम जपंता उतर्या जलनिधिपार ।।

गाजते बाजते साहमा करीने आव्या बारडोली ग्राम।
याचक जन सन्तोष्या भूतलि राख्यो नाम ।।

३. देश विदेश विहार करे गुरु प्रति बोध प्राणी।
धर्म कथा रसने वरसन्ती. मीठी छे वाणी रे भाय ।।

छन्द हैं। शेष रचनाए गीत एव विनतियो के रूप मे हैं। यद्यपि सभी रचनाए सुन्दर एव भाव पूर्ण हैं लेकिन भरत बाहूबलि छद, आदिनाथ विवाहलो एव नेमीश्वर हमची इनकी उत्कृष्ट रचनायें हैं। भरत बाहुबलि एक खण्ड काव्य है, जिसमे मुख्यत भरत और बाहुबलि के युद्ध का वर्णन किया गया है। भरत चक्रवर्त्ति को सारा भूमण्डल विजय करने के पश्चात् मालूम होता है कि अभी उन के छोटे भाई बाहुबलि ने उनकी अधीनता स्वीकार नही की है तो सम्राट भरत बाहुबलि को समझाने को दूत भेजते हैं। दूत और बहुबलि का उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत सुन्दर हुआ है।

अन्त मे दोनो भाइयो मे युद्ध होता है, जिसमे विजय बाहुबलि की होती है। लेकिन विजयश्री मिलने पर भी बाहुबलि जगत से उदासीन हो जाते हैं और वैराग्य धारण कर लेते हैं। घोर तपश्चर्या करने पर भी "मैं भरत की भूमि पर खडा हुआ हू," यह शल्य उनके मन से नही हटती और जब स्वय सम्राट् भरत उनके चरणो में जाकर गिरते हैं और वास्तविक स्थिति को प्रगट करते हैं तो उन्हें तत्काल केवल ज्ञान प्राप्त होकर मुक्तिश्री मिल जाती है। पूरा का पूरा खण्ड काव्य मनोहर शब्दो मे गु थित है। रचना के प्रारम्भ मे जो अपनी गुरु परम्परा दी है वह निम्न प्रकार है—

पणविवि पद आदीश्वर केरा, जेह नामे छूटे भव-फेरा।
ब्रह्म सुता समरु मतिदाता, गुण गण मडित जग विख्याता॥

वदवि गुरू विद्यानदि सूरी, जेहनी कीर्त्ति रही भर पूरी।
तस पट्ट कमल दिवाकर जाणु, मल्लिभूषण गुरु गुण वक्खाणु॥

तस पट्टे पट्टोधर पडित, लक्ष्मीचन्द महाजस मडित।
अभयचद गुरु शीतल वायक, सेहेर वश मडन सुखदायक॥

अभयनदि समरु मन माहि, भव मूला बल गाडे बाहि।
तेह तणि पट्टे गुणभूषण, वदवि रत्नकीरति गत दूषण॥

भरत महिपति कृत मही रक्षण, बाहुबलि बलवत विचक्षण।

बाहुबलि पोदनपुर के राजा थे। पोदनपुर धन धन्य, बाग बगीचा तथा झीलों का नगर था। भरत का दूत जब पोदनपुर पहुँचता है तो उसे चारो ओर विविध प्रकार के सरोवर, वृक्ष, लतायें दिखलाई देती हैं। नगर के पास ही गगा के समान निर्मल जल वाली नदी बहती है। सात सात मजिल वाले सुन्दर महल नगर की शोभा बढा रहे हैं। कुमुदचन्द ने नगर की सु दरता का जिस रूप मे वर्णन किया है उसे पढिये—

चाल्यो दूत पयाणे रे हे तो, थोडो दिन पोयणपुरी पोहोतो ।
दीठी सीम सघन कण साजित, वापी कूप तडाग विराजित ॥

कलकार जो नल जल कु डी, निर्मल नीर नदी अति ऊ डी ।
विकसित कमल अमल दलपती, कोमल कुमुद समुज्जल क ती ॥

वन वाडी आराम सुरगा, अ व कदव उदवर तु गा ।
करणा केतकी कमरख केली, नव नारगी नागर वेली ॥

अगर तगर तरु तिदुक ताला, सरल सोपारी तरल तमाला ।
वदरी वकुल मदाड वीजोरी, जाई जूई जवु जभीरी ॥

चदन चपक चाउरउली, वर वासती वटवर सोली ।
रायणरा जवु सुविशाला, दाडिम दमणो द्राप रसाला ॥

फूला सुगुल्ल अमूल्ल गुलावा, नीपनी वाली निवुक निवा ।
कण पर कोमल लत सुरगी, नालीपरी दीशे अति चगी ॥

पाडल पनश पलाश महाघन, लवली लीन लवग लतावन ॥

वाहुवलि के द्वारा अधीनता स्वीकार न किए जाने पर दोनो ओर की विशाल सेनायें एक दूसरे के सामने आ डटी । लेकिन जव देवो और राजाओ ने दोनो भाइयों को ही चरम शरीरी जानकर यह निश्चय किया कि दोनो ओर की सेनाओ मे युद्ध न होकर दोनो भाइयो मे ही जलयुद्ध मल्लयुद्ध एव नेत्रयुद्ध हो जावे और उसमे जो जीत जावे उसे ही चक्रवर्ती मान लिया जावे । इस वर्णन को कवियो के शब्दो मे पढिये :—

त्रण्य युद्ध त्यारे सहु वेढा, नीर नेत्र मल्लाह वपरढ्या ।
जो जीते ते राजा कहिये, तेहनी आज विनयसु वहिए ।
एह विचार करीनें नरवर, चल्या सहु साथे महर भर ।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चाल्या मल्ल अखाडे वलीआ, सुर नर किन्नर जीवा मलीआ ।
काछ्या काछ कसो कड ताणी' वोले वागड वोली वाणी ।

भुजा दड मन सु ड समाना, ताडता वखारे नाना ।

हो हो कार करि ते धाया, वछो वच्छ पछ्या ले राया ।
हक्कारे पच्चारे पाडे, वलगा वलग करी ते त्राडे ।
पग पडघा पोहोवी तल बाजे, कडकडता तरुवर से भाजे ।
नाठा वनचर त्राठा कायर, छूटा मयगल फूटा सायर ॥

गड गडता गिरिवर ते पडीआ, फूत फरता फणिपति डरीआ।
गढ गडगडीआ मन्दिर पडीआ, दिग दतीव मक्या चल चकीआ।

जन खलमली आवाल कछलीआ, भव-भीरू अवला कल मलीआ।
तोपरा ले घरणी धवदू के, लड पडता पडता नवि चूके।

उक्त रचना आमेर शास्त्र भण्डार गुटका सख्या ५२ मे पत्र सख्या ४० से ४८ पर है।

२ आदिनाथ विवाहलो

इसका दूसरा नाम ऋषभ विवाहलो भी है। यह भी छोटा खण्ड काव्य है, जिसमे ११ ढालें हैं। प्रारम्भ मे ऋषभदेव की माता को १६ स्वप्नो का आना, ऋषभदेव का जन्म होना तथा नगर मे विभिन्न उत्सवो का आयोजन किया गया। फिर ऋषभ के विवाह का वर्णन है। अन्त की ढाल मे उनका वैराग्य धारण करके निर्वाण प्राप्त करना भी बतला दिया गया है।

कुमुदचन्द्र ने इसे भी सवत् १६७८ मे घोघा नगर में रचा था। रचना का एक वर्णन देखिये—

कछ महाकछ रायरे, जे हनु जग जश गायरे।
तस कुअरी रूपें सोहरे, जोता जनमन मोहेरे।

सुन्दर वेणी विशाल रे, अरध शशी सम भाल रे।

नयन कमल दल छाजे रे, मुख पूरणचन्द्र राजे रे।
नाक सोहे तिलनु फूल रे, अधर सुरग तणु नहि भूल रे।

ऋषभदेव के विवाह मे कौन-कौन सी मिठाइया बनी थी, उसका भी रसास्वादन कीजिए—

रटि लागे घेवरने दीठा, कोल्हापाक पतासा मीठा।
दूध पाक चरणा साकरीआ, सारा सकरपारा कर करीआ।

मोटा मोती आमोद कलावे, दलीआ कसम सीआ भावे।

अति सुरवर सेवईया सुन्दर, आरोगे भोग पुरदर।
प्रीसे पापड गोटा तलीआ, पूरी आला अति ऊजलीआ।

नेमिनाथ के विरह मे राजुल किस प्रकार तडफती थी तथा उसके बारह महीने किस प्रकार व्यतीत हुए, इसका नेमिनाथ बारहमासा में सजीव वर्णन किया

है। इसी तरह का वर्णन कवि ने प्रणय गीत एव हिडोलना-गीत मे भी किया है।

फागुण केसु फूलीयो, नर नारीं रमे वर फाग जी।
हास विनोद करे घणा, किम नाहे धरयो वैराग जी ॥

नेमिनाथ बारहमासा

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सीयालो सगलो गयो, पणि नावियो यदुराय।
तेह विना मुझने भूरता, एह दीहडा रे वरसा सो थापके।

प्रणय-गीत

वणजारा गीत मे कवि ने ससार का सुन्दर चित्र उतारा है। यह मनुष्य वणजारे के रूप मे यो ही ससार से भटकता रहता है। वह दिन रात पाप कमाता है और ससार वधन से कभी भी नही छूटता।

पाप करया ते अनत, जीवदया पाली नही।
साचो न वोलियो बोल, भरम मो सावहु वोलिया ॥

शील गीत मे कवि ने चरित्र प्रधान जीवन पर अत्यधिक जोर दिया है मानव को किसी भी दिशा मे आगे वढने के लिए चरित्र-वल की आवश्यकता है साधु सतो एव सयमी जनो को स्त्रियो से अलग ही रहना चाहिए-आदि का अच्छा वर्णन मिलता है इसी प्रकार कवि की सभी रचनायें सुन्दर हैं।

पदो के रूप में कुमुदचन्द्र ने जो साहित्य रचा है वह और भी उच्च कोटि का है। भाषा, शैली एव भाव सभी दृष्टियों से ये पद सुन्दर हैं। "मै तो नर भव वादि गवायो" पद मे कवि ने उन प्राणियो की सच्ची आत्मपुकार प्रस्तुत की है, जो जीवन मे कोई भी शुभ कार्य नही करते है। अन्त मे हाथ मलते ही चले जाते हैं।

'जो तुम दीनदयाल कहावत' पद भी भक्ति रस की सुन्दर रचना है। भक्ति एव अध्यात्म-पदो के अतिरिक्त नेमि राजुल सम्बन्धी भी पद हैं, जिनमे नेमिनाथ के प्रति राजुल की सच्ची पुकार मिलती है। नेमिनाथ के विना राजुल को न प्यास लगती है और न भूख सताती है। नीद नही आती है और बार-बार उठकर गृह का आगन देखती रहती है। यहा पाठको के पठनार्थ दो पद दिए जा रहे हैं—

राग-धनश्री

मैं तो नर भव वादि गमायो।
न कियो जप तप व्रत विधि सुन्दर, काम भलो न कमायो ॥
मैं तो.. ॥१॥

विकट लोभ तें कपट कूट करी, निपट विषय लपटाश्रो ।
विटल कुटिल शठ सगति बैठो, साधु निकट विघटायो ।।

मैं तो ।।२।।

कृपण भयो कछु दान न दीनो, दिन दिन दाम मिलायो ।
जब जोवन जजाल पड्यो तब, पर त्रिया तनु चितलायो ।।

मैं तो ।।३।।

अन्त समय कोउ सग न श्रावत, झूठहि पाप लगायो ।
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही, प्रभु पद जस नही गायो ।।

मैं तो .।।४।।

पद राग–सारग

सखी री श्रब तो रह्यो नहि जात ।
प्राणनाथ की प्रीति न विसरत, क्षण क्षण छीजत गात ।।

सखी... ।।१।।

नहिं न भूख नहिं तिसु लागत, घरहि घरहि मुरझात ।
मनतो उरझी रह्यो मोहन सु, सेवन ही सुरझात ।।

सखी ।।२।।

नाहिने नीद परती निसिवासर, होत विसुरत प्रात ।
चन्दन चन्द्र सजल नलिनीदल, मन्द मारुत न सुहात ।।

सखी . ।।३।।

गृह श्रागन देख्यो नही भावत, दीनभई विललात ।
विरही वाउरी फिरत गिरि–गिरि, लोकन तें न लजात ।।

सखी० ।।४।।

पीउ विन पलक कल नही जीउकू न रुचित रासिक गुवात ।
'कुमुदचन्द' प्रभु सरस दरस कू, नयन चपल ललचात ।।

सखी० ।।५।।

व्यक्तित्व—

सत कुमुदचन्द्र सवत् १६५६ तक भट्टारक पद पर रहे । इतने लम्वे समय मे इन्होने देश में श्रनेक स्थानो पर विहार किया और जन-साधारण को धर्म एव अध्यात्म का पाठ पढाया । ये अपने समय के श्रसाधारण सन्त थे । उनकी गुजरात

तथा राजस्थान में इनकी प्रतिष्ठा थी। जैन साहित्य का निर्माण [illegible] सर्वाधिक आता था। ये भगवान [illegible] साधु [illegible], इन्होंने श्रावकों एवं जन साधारण को सरल रूप में ही वाणी से उपदेश दिया करते थे। इनके शिष्य ने जो कुछ इनके जीवन एवं गतिविधियों में वर्णन किया है, वह इनके महत्वपूर्ण व्यक्तित्व की एक झलक प्रस्तुत करता है।

शिष्य परिवार

[illegible] शिष्य हुआ करते थे [illegible] आचार्य, मुनि, ब्रह्मचारी, [illegible] अभी तक रचनाएं उपलब्ध हुई हैं, इनमें अभय चन्द्र, [illegible], [illegible], [illegible], धर्मसागर एवं गणेशसागर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। [illegible] शिष्य थे और इनकी [illegible] रचनाएं उपलब्ध भी हुई हैं। [illegible] इनके एवं इनके शिष्य परिवार के विषय में आगे प्रकाश डाला जायेगा।

कुमुदचन्द्र की अब तक २८ रचनाएं एवं पद उपलब्ध हो चुके हैं उनके नाम निम्न प्रकार हैं —

मूल्यांकन

'भ० रत्नकीर्ति' ने जो साहित्य-निर्माण की धारा प्रवाहित की थी, उसे उनके उत्तराधिकारी 'भ० कुमुदचन्द्र' ने अच्छी तरह से निभाया। यही नहीं 'कुमुद चन्द्र' ने अपने गुरु से भी अधिक कृतियां लिखी और भारतीय समाज को अध्यात्म एवं भक्ति के साथ साथ शृंगार एवं वीर रस का भी आस्वादन कराया। 'कुमुदचन्द्र' के समय देश पर मुगल शासन था, इसलिए जहां-तहां युद्ध होते रहते थे। जनता में देश रक्षा के प्रति जागरूकता थी, इसलिए कवि ने भरत-बाहुबलि छन्द में जो युद्ध-वर्णन किया है- वह तत्कालीन जनता की मांग के अनुसार था। इससे उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि जैन-कवि यद्यपि साधारणतः आध्यात्म एवं भक्ति परक कृतिया लिखने में ही अधिक रुचि रखते हैं- लेकिन आवश्यकता हो तो वे वीर रस प्रधान रचना भी देश एवं समाज के समक्ष उपस्थित कर सकते है।

'कुमुदचन्द्र' के द्वारा निबद्ध 'पद-साहित्य' भी हिन्दी-साहित्य की उत्तम निधि है। उन्होंने "जो तुम दीनदयाल कहावत" पद में अपने हृदय को भगवान के समक्ष निकाल कर रख लिया है और वह अपने भक्तों के प्रति की जाने वाली उपेक्षा की ओर भी प्रभु का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है और फिर "अनाथनि कुं कछु दीजे" के रूप में प्रभु और भक्त के सम्बन्धो का बखान करता है। 'मैं तो नर भव

वादि गमायो"—पद में कवि ने उन मनुष्यो को चेतावनी दी है, जो जीवन का कोई सदुपयोग नही करते और यों ही जगत में आकर चल देते हैं। यह पद अत्यधिक सुन्दर एव भावपूर्ण है। इसी तरह 'कुमुदचन्द्र' ने 'नेमिनाथ-राजुल' के जीवन पर जो पद-साहित्य लिखा है, वह भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। "सखी री अब तो रह्यो नहि जात"—मे राजुल की मनोदशा का अच्छा चित्र उपस्थित किया है। इसी तरह "आली री अ विरखा ऋतु आजु आई"—में राजुल के रूप में- विरहिणीनारी के मन मे उठने वाले भावो को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार 'कुमुदचन्द्र' ने अपने पद-साहित्य मे अध्यात्म, भक्ति एव वैराग्य परक पद रचना के अतिरिक्त 'राजुल-नेमि' के जीवन पर जो पद-साहित्य लिखा है, वह भी हिन्दी-पद-साहित्य एव विशेषत जैन-साहित्य मे एक नई परम्परा को जन्म देने वाला रहा था। आगे होने वाले कवियो ने इन दोनो कवियो की इस शैली का पर्याप्त अनुसरण किया था।

कवि की अब तक उपलब्ध कृतियो के नाम निम्न प्रकार हैं—

१	त्रेपन क्रिया विनती	१४ पद्य
२	आदिनाथ विवाहलो	१४ ,,
३.	नेमिनाथ द्वादशमासा	१४ ,,
४.	नेमीश्वर हमची	८७ ,,
५	अण्य रति गीत	१७ ,,
६	हिंदोला गीत	३१ ,,
७	वणजारा गीत	२१ ,,
८	दश लक्षण धर्मव्रत गीत	११ ,,
९	शील गीत	१० ,,
१०.	सप्त व्यसन गीत	१३ ,,
११	अठाई गीत	१४ ,,
१२	भरतेश्वर गीत	७ ,,
१३.	पार्श्वनाथ गीत	१९ ,,
१४	अन्धोलडी गीत	१३ ,,
१५	आरती गीत	७ ,,
१६.	जन्म कल्याणक गीन	८ ,,
१७	चिंतामणि पार्श्वनाथ गीत	१३ ,,

१८ दीपावली गीत ,,
१९. नेमि जिन गीत ११ ,,
२० चौबीस तीर्थंकर देह प्रमाण चौपई १७ ,,
२१. गौतम स्वामी चौपई ८ ,,
२२. पार्श्वनाथ की विनती १७ ,,
२३. लोड़ण पार्श्वनाथ जी ३० ,,
२४ आदीश्वर विनती १० ,,
२५ मुनिसुव्रत गीत ७ ,,
२६. गीत १० ,,
२७ जीवडा गीत ९ ,,
२८ भरत बाहुबलि छन्द
२९ परदारी परशील सज्झाय
३०. भरत बाहुबलि छन्द

इनके अतिरिक्त उनके रचे हुए कितने ही पद मिले हैं। इन पदो मे से ३३९ वी प्रथम पंक्ति निम्न प्रकार है—

पद

१. म करीस पर नारी को संग।
२ संघ जी नाग जी गीत।
३ जागो रे भवियण उ घ नवि करीजे।
४ जागि हो भवियण सफल विहाणु।
५ जागि हो भवियण उ घीये नही घणू।
६ उदित दिन राज रुचि राज सुवि भात।
७ आवो रे साहेली जइत यादव भणी।
८ जय जय आदि जिनेश्वर राय।
९ थेई थेई थेई नृत्यति भमरी।
१०. विनज वदन रुचि र रदन काम।
११. श्याम वरण सुगति करण सर्व सौख्यकारी।
१२. आस्यु रे इम कोध माहरा नेमजी।

१३ वदेह शीतल चरण।

१४ अवसर आजू हेरे हवे दान पुण्य काइ कीजे।

१५ लाला को मुक्ष चारित्र चूनडो।

१६ ए ससार, ममतडू रे व, लहको धर्म विचार।

१७ वालि वालि सु वालिय सजमी।

१८ लाल लाल लाल तु मा जासे रे।

१९ सगति कीजे रे साधु तणी वली।

२० आज सवनि मे हू वड भागी।

२१ आजु मैं देखे पास जिनंदा।

२२ आली री अ विरखा ऋतु आजु आई।

२३. आवो रे सहिय सहिलडी सगे।

२४. चेतन चेतन किउ बावरे।

२५ जनम सफल भयो, भयो सुकाजरे।

२६ जागि हो, भोर भयो कहर सोवत।

२७ जो तुम दीन दयाल कहावत।

२८. नाथ अनाकनि कू कछु दीजे।

२९ प्रभु मेरे तुमकु ऐसी न चाहिये।

३० मैं तो नर-भव वादि गमायो।

३१. सखी री अब तो रह्यो नहि जात।

मुनि अभयचन्द्र

'अभयचन्द्र' नाम के दो भट्टारक हुए हैं। 'प्रथम अभयचन्द्र' भ० लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य थे, जिन्होने एक स्वतत्र 'भट्टारक-सस्था' को जन्म दिया। उनका समय विक्रम की सोलहवी शताब्दि का द्वितीय चरण था। दूसरे 'अभयचन्द्र' इन्ही की परम्परा मे होने वाले 'भ० कुमुदचन्द्र' के शिष्य थे। यहा इन्ही दूसरे 'अभयचन्द्र' का परिचय दिया जा रहा है।

'अभयचन्द्र' भट्टारक थे और 'कुमुदचन्द्र' की मृत्यु के पश्चात् भट्टारक गादी पर बैठे थे। यद्यपि 'अभयचन्द्र' का गुजरात से काफी निकट का सम्बन्ध था, लेकिन राजस्थान मे भी इनका बराबर विहार होता था और ये गाव-गाव, एव नगर-नगर मे भ्रमण करके जनता से सीधा सम्पर्क बनाये रखते थे। 'अभयचन्द्र' अपने गुरु के योग्यतम शिष्य थे। उन्होंने भ० रत्नकीर्त्ति एव भ० कुमुदचन्द्र का शासनकाल देखा था और देखी थी उनकी 'साहित्य-साधना'। इसलिए जब ये स्वय प्रमुख सन्त बने तो इन्होंने भी उसी परम्परा को बनाये रखा। सवत् १६८५ की फाल्गुन सुदी ११ सोमवार के दिन बारडोली नगर मे इनका पट्टाभिषेक हुआ और इस पद पर सवत् १७२१ तक रहे।

'अभयचन्द्र' का जन्म स० १६४० के लगभग 'हूबड' वश मे हुआ था। इनके पिता का नाम 'श्रीपाल' एव माता का नाम 'कोडमदे' था। बचपन से ही बालक 'अभयचन्द्र' को साधुओ की मडली मे रहने का सुअवसर मिल गया था। हेमजी-कुअरजी इनके भाई थे-ये सम्पन्न घराने के थे। युवावस्था के पहिले ही इन्होने पाचो महाव्रतो का पालन प्रारम्भ किया था।[1] इसीके साथ इन्होने सस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थो का उच्चाध्ययन किया। न्याय-शास्त्र मे पारगतता प्राप्त की तथा अलकार-शास्त्र एव नाटको का गहरा अध्ययन किया।[2] अच्छे वक्ता तो ये प्रारम्भ से ही थे, किन्तु विद्वता के होने से सोने-सुगध का सा सुन्दर समन्वय होगया।

जब उन्होने युवावस्था मे पदार्पण किया, तो त्याग एव तपस्या के प्रभाव से

---

१ हूबड वशे श्रीपाल साह तात, जनम्यो रूडो रतन कोडमदे मात।
लघु पणे लीधो महाव्रत भार, मनवश करी जीत्यो दुर्द्धरभार॥

२. तर्क नाटक आगम अलकार, अनेक शास्त्र भण्या मनोहार।
भट्टारक पद ए हने छाजे, जेहवे यश जग मां वास गाजे॥

इनकी मुखाकृति स्वयमेव आकर्षक बन गई और जनता के लिए ये आध्यात्मिक जादूगर बन गये। इनके सैकड़ो शिष्य थे–जो स्थान-स्थान पर ज्ञान-दान किया करते थे। इनके प्रमुख शिष्यो मे गणेश, दामोदर, धर्मसागर, देवजी व रामदेव के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। जितनी अधिक प्रशसा शिष्यो द्वारा इनकी (भ० अभयचन्द्र) की गई, सभवत अन्य भट्टारको की उतनी अधिक प्रशसा देखने मे अभी नही आयी। एक बार 'भ० अभयचन्द्र' का 'सूरत नगर' में पदार्पण हुआ–वह सवत् १७०६ का समय था। सूरत-नगर-निवासियों ने उस समय इनका भारी स्वागत किया। घर-घर उत्सव किये गये, कुकुम छिडका गया और अग–पूजा का आयोजन किया गया। इन्ही के एक शिष्य 'देवजी'–जी उस समय स्वयं वहां उपस्थित थे, ने निम्न प्रकार इनके सूरत नगर-आगमन का वर्णन किया है —

राग धन्यासी

आज आणद मन अति घणो ए, काई वरत यो जय जयकार।
अभयचन्द्र मुनि आवया ए, काई सुरत नगर मझार रे॥ आज आणद ॥१॥

घरे घरे उछव अति घणाए, काई माननी मगल गाय रे।
अग पूजा ने उवराणा ए, काई कुकुम छडादेवडाय रे॥२॥ आज०॥

श्लोक वखाणें गोर सोभता रे, वाणी मीठी अपार साल रे।
धर्मकथा ये प्राणी ने प्रतिवोधे ए, काई कुमति करे परिहार रे॥३॥

सवत् सतर छलोतरे, काई हीरजी प्रेमजीनी पुगी आस रे।
रामजी ने श्रीपाल हरखीया ए, काई वेलजी कुअरजी मोहनदास रे॥४॥

गौतम समगोर सोभतो ए, काई वूधे जयो अभयकुमार रे।
सकल कला गुण मडणो ए, काई 'देवजी' कहे उदयो उदार रे॥ आज०॥५॥

'श्रीपाल' १८ वीं शताब्दी के प्रमुख साहित्य–सेवी थे। इनकी कितनी ही हिन्दी रचनाए अभी लेखक को कुछ समय पूर्व प्राप्त हुई थी। स्वय कवि श्रीपाल 'भ० अभयचन्द्र' से अत्यधिक प्रभावित थे। इसलिए स्वय भट्टारकजी महाराज की प्रशसा मे लिखा गया कवि का एक पद देखिये। इस पद के अध्ययन से हमे 'अभयचन्द्र' के आकर्षक व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है। पद निम्न प्रकार है —

राग धन्यासी :

चन्द्रवदनी मृग लोचनी नारि।
अभयचन्द्र गछ नायक वादो, सकल सघ जयकारि॥१॥ चन्द्र०॥

मदन मोह मद मोडे ए मुनिवर, गौयम सम गुणधारी।
क्षमावंत विगमिर वियक्षण, गंग्यो गुण भण्डारी ॥चन्द्र०॥२॥

निखिलकला विधि विमल विद्या निधि विकटवादी हठहारी।
रम्य रूप रंजित नर नायक, सुज्जन जन सुखकारी ॥चन्द्र०॥३॥

सरसति गच्छ शृंगार शिरोमणी, मूल संघ मनोहारी।
कुमुदचन्द्र पदकमल दिवाकर, 'श्रीपाल' तुम बलीहारी ॥चन्द्र०॥४॥

'गणेश' भी अच्छे कवि थे। इनके कितने ही पद, स्तवन, एवं लघु कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं। 'भ० अभयचन्द्र' के आगमन पर कवि ने, जो स्वागत गान लिखा था और जो उस समय संभवतः गाया भी गया था, उसे पाठकों के अवलोकनार्थ यहां दिया जा रहा है —

आजु भले आये जन दिन धन रयणी।
शिवया नदा वदी रंत तुम, कनक कुसुम ववावो मृगनयनी ॥१॥

उज्जल गिरि पाय पूजी परमगुरु सकल संघ सहित मग मयनी।
मृदंग वजावते गायते गुनगनी, अभयचन्द्र पटधर आयो गजगयनी ॥२॥

अब तुम आये भली करी, घरी घरी जय शब्द भविक सब कहेनी।
ज्यों चकोरी चन्द्र कुं इयत, कहत गणेश विशेषकर वयनी ॥३॥

इसी तरह कवि के एक और शिष्य 'दामोदर' ने भी अपने गुरु की भूरि २ प्रशंसा की है। गीत मे कवि के माता-पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा लिखा है कि 'भ० अभयचन्द्र' ने कितने ही शास्त्रार्थों मे विजय प्राप्त की थी। पूरा गीत निम्न प्रकार है —

वादो वादो सखी री श्री अभयचन्द्र गोर वादो।
मूल संग मंडण दुरित निकंदन, कुमुदचन्द्र पगी वंदो ॥१॥

शास्त्र सिद्धान्त पूरण ए जाण, प्रतिबोधे भवियण अनेक।
सकल कला करी विश्वने रंजे, भंजे वादि अनेक ॥२॥

हूंबड वंश विख्यात वसुधा श्रीपाल साघन तात।
जायो जननीइ पतिय शवन्तो, कोडमदे धन मात ॥३॥

रतनचन्द पाटि कुमुदचन्दयति, प्रेमे पूजो पाय।
तास पाटि श्री अभयचन्द्र गोर 'दामोदर' नित्य गुणगाये ॥४॥

उक्त प्रशसात्मक गीतो से यह तो निश्चित सा जान पडता है कि अभयचन्द्र की जैन-समाज मे काफी अधिक लोकप्रियता थी। उनके शिष्य साथ रहते थे और जनता को भी उनका स्तवन करने की प्रेरणा किया करते थे।

'अभयचन्द्र' प्रचारक के साथ-साथ साहित्य-निर्माता भी थे। यद्यपि अभी तक उनकी अधिक रचनाए उपलब्ध नही हो सकी हैं, लेकिन फिर भी उन प्राप्त रचनाओ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी कोई बडी रचना भी मिलनी चाहिए। कवि ने लघु गीत अधिक लिखे हैं। इसका प्रमुख कारण तत्कालीन साहित्यिक वातावरण ही था। अब तक इनकी निम्न कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं—

१	वासुपूज्यनी धमाल	१० पद्य
२	चन्दागीत	३६
३	सूखडी	३७
४	चतुर्विशति-तीर्थंकर लक्षण गीत	११
५	पद्मावती गीत	११ पद्य
६	गीत	
७	गीत	
८	नेमीश्वरनु ज्ञान कल्याणक गीत	
९	आदीश्वरनाथनु पञ्चकल्याणक गीत	
१०	बलभद्र गीत	

उक्त कृतियो के अतिरिक्त कवि के कुछ पद भी मिल चुके हैं। इन पदो की सख्या आठ है।

ये सभी रचनाए लघु कृतियां हैं। यद्यपि काव्यत्व, शैली एव भाषा की दृष्टि से ये उच्चस्तरीय रचनाए नही है, लेकिन तत्कालीन समय जनता की माग पर ये रचनाए लिखी गई थी। इसलिए इनमे कवि का काव्य-वैभव एव सौष्ठव प्रयुक्त होने की अपेक्षा प्रचार का लक्ष्य अधिक था। भाषा की दृष्टि से भी इनका अध्ययन आवश्यक है। राजस्थानी भाषा की ये रचनाए है तथा उसका प्रयोग कवि ने अत्यधिक सावधानी से किया है। गुजराती भाषा का प्रयोग तो स्वभावत. ही हो गया है। कवि की कुछ प्रमुख कृतियों का परिचय निम्न प्रकार है—

१ चन्दागीत

इस गीत मे कालिदास के मेघदूत के विरही यक्ष की भाति स्वय राजुल अपना सन्देश चन्द्रमा के माध्यम से नेमिनाथ के पास भेजती है। सर्व प्रथम चन्द्रमा से अपने उद्देश्य के बारे निम्न शब्दो मे वर्णन करती है—

विनयकरी राजुल कहे, चदा वीनतडी अब धारो रे।
उज्ज्वल गिरि जई वीनवो, चदा जिहा दे प्राण आधार रे ॥

गगने गमन ताहरु रुवडू, चदा अमीय वरषे अनन्त रे।
पर उपगारी तू भनो, चदा वलि वलि बीनवू संत रे ॥

राजुल ने इसके पश्चात् भी चन्द्रमा के सामने अपनी यौवनावस्था की दुहाई दी तथा विरहाग्नि का उसके सामने वर्णन किया।

विरह तणा दुख दोहिला, चदा ते किम मे सहे वाय रे।
जल विना जेम माछलो, चदा ते दु ख मे वाप रे ॥

राजुल अपने सन्देश-वाहक से कहती है कि यदि कदाचित नेमिकुमार वापिस चले आवें तो वह उनके आगमन पर वह पूर्ण शृ गार करेगी। इस वर्णन में कवि ने विभिन्न अगो में पहिने जाने वाले आभूषणों का अच्छा वर्णन किया है।

२ सूखडी :

यह ३७ पद्यो की लघु रचना है, जिसमें विविध व्यञ्जनो का उल्लेख किया गया है। कवि को पाकशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। 'सूखडी' से तत्कालीन प्रचलित मिठाइयो एव नमकीन खाद्य सामग्री का अच्छी तरह परिचय मिलता है। शान्तिनाथ के जन्मावसर पर कितने प्रकार की मिठाइयां आदि बनायीं गयीं थी—इसी प्रसग को बतलाने के लिए इन व्यञ्जनो का नामोल्लेख किया गया है। एक वर्णन देखिए—

जलेबी खाजला पूरी, पतासा फीणा सजूरी।
दहीपरा फीणी माहि, साकर भरी ॥३॥

× × × ×

सकरपारा सुंहाली, तल पापडी साकली।
थापडास्यु थीणु घीय, आलू जीवली ॥५॥

मरकीने चादखानि, दोठाने दही बडा सोनी।
वाबर घेवर औसो, अनेक वांनी ॥६॥

इस प्रकार 'कविवर अभयचन्द्र' ने अपनी लघु रचनाओ के माध्यम से हिन्दी साहित्य की जो महती सेवा की थी, वह सदा स्मरणीय रहेगी।

ब्रह्म जयसागर

जयसागर भ० रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्यो मे से थे। ये ब्रह्मचारी थे और जीवन भर इसी पद पर रहते हुए अपना आत्म विकास करते रहे थे। भ० रत्नकीर्ति जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है साहित्य के अनन्य उपासक थे इसलिए जयसागर भी अपने गुरु के समान ही साहित्याराधना मे लग गये। उस समय हिन्दी का विकास हो रहा था। विद्वानो एव जनसाधारण की रुचि हिन्दी ग्रन्थो को पढने मे अधिक हो रही थी इसलिए जयसागर ने अपना क्षेत्र हिन्दी रचनाओ तक ही सीमित रखा।

जयसागर के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक कोई विशेष जानकारी प्राप्त नही हो सकी है। इन्होंने अपनी सभी रचनाओ मे भ० रत्नकीति का उल्लेख किया है। रत्नकीर्ति के पश्चात होने वाले भ० कुमुदचन्द्र का कही भी नामोल्लेख नही किया है इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनका भ० रत्नकीर्ति के शासनकाल मे ही स्वर्गवास हो गया था। रत्नकीर्ति सवत् १६५६ तक भट्टारक रहे इसलिए ब्रह्म जयसागर का समय सवत् १५८० से १६५५ तक का माना जा सकता है। घोघा नगर इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था।

कवि की अब तक जितनी रचनाओ की खोज हो सकी है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१ नेमिनाथ गीत
२ नेमिनाथ गीत
३ जसोधर गीत
४ पचकल्याणक गीत
५ चुनडी गीत
६ सघपति मल्लिदास नी गीत
७ सकट हर पार्श्वजिन गीत
८ क्षेत्रपाल गीत
९ भट्टारक रत्नकीर्ति पूजा गीत
१० शीतलनाथ नी विनती
११-२० विभिन्न पद एव गीत

जयसागर लघु कृतिया लिखने मे विशेष रुचि रखते थे। इनके गुरु स्वय रत्नकीर्ति भी लघु रचनाओ को ही अधिक पसन्द करते थे इसलिए इन्होने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। इनकी कुछ प्रमुख रचनाओ का परिचय निम्न प्रकार है।

१. पचकल्याणक गीत

यह कवि की सबसे बडी कृति है जो पाच कल्याणको की दृष्टि से पाच ढालो मे विभक्त है। इसमें शान्तिनाथ के पाचों कल्याणको का वर्णन है। जन्म कल्याणक ढाल मे सबसे अधिक पद्य हैं। जिनकी स ख्या २० है। पूरे गीत मे ७१ पद्य हैं। गीत की भाषा राजस्थानी है। तथा वर्णन सामान्य है। एक उदाहरण देखिए।

श्री शान्तिनाथ केवली रे, व्यावहार करे जिनराय।
समोवसरण सहित मल्या रे, वदित अमर सु पाय॥

द्रुपद नरनारी सुख कर सेवियै रे, सोलमो श्री शान्तिनाथ।
अविचल पद जे पामयो रे, मुझ मन राखो तुझ साथ॥१॥

सम्मेद सिखर जिन आवयोरे, समोसरण करी दूर।
ध्यानवनो क्रम क्षय करीरे, स्थानक गया सु प्रसोघ॥२॥

श्री घोघा रूप पूरयलु रे, चन्द्रप्रभ चैत्याल।
श्री मूलसघ मनोहर करे, लक्ष्मीचन्द्र गुणमाल॥३॥

श्री अभेचन्द पदेशोहे रे, अभयसुनन्दि सुनन्द।
तस पाटे प्रगट हवोरे, सुरी रत्नकीरति मुनी चन्द॥४॥

तेह तणा चरण कमलनयनिरे, पचकल्याणक किध।
ब्रह्म जयसागर इम कहे, नर नारी गाउ सु प्रसिद्ध॥५॥

२ जसोघर गीत

इसमे यशोधर चरित की कथा का स क्षिप्त सार दिया गया है जिसमे केवल १८ पद्य हैं। गीत की भाषा राजस्थानी है।

जीव हिंसा हू नवि करू, प्राण जाय तो जाय।
हद देखी चन्द्र मती कहे, पीवनी करीये काय॥६॥

मौन करी राजा रह्यो, पाठकु कडो कीव।
माता सहित जसोवरे, देवीने वल दीव॥७॥

३ गुर्वावलि गीत

यह एक ऐतिहासिक गीत है जिसमे सरस्वती गच्छ की वलात्कारगण शाखा के भ० देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा मे होने वाले भट्टारको का सक्षिप्त परिचय दिया गया हैं। गीत सरल एव सरस भाषा में नि बद्ध है।

तस पद कमल दिवाकर, मल्लिभूषण गुण सागर।
आगार विद्या विनय तणो भलो ए।

पद्मावती साधी एणें, ग्यासदीन रञ्यों तेणें।
जग जेणें जिन शासुन सोहावीयो ए।'८॥

४ चुनडी गीत

यह एक रूपक गीत है जिसमे नमिनाथ के वन चले जाने पर उन्होने अपने चारित्र रूपी चुनडी को किस रूप मे धारण किया इसका संक्षिप्त वर्णन है। वह चारित्र की चुनडी नव रग की थी। मूल गुणो का उसमे रग था, जिनवाणी का उसमे रस घोला गया था। तप रूपी तेज से जो सूख रही थी। जो उसमे से पानी टपक रहा था वह मानो उत्तर गुणो के कारण चौरासी लाख योनियो से छुटकारा मिल रहा था। पाच महाव्रत, पाच समिति एव तीन गुप्ति को जीवन मे उतारने के कारण उस चुनडी का रग ही एक दम वदल गया था। वारह प्रतिमा के धारण करने से वह फूल के समान लगने लगी थी। इसी चुनडी को ओढकर राजुल स्वर्ग गई। इस गीत को अविकल रूप से आगे दिया जा रहा है।

५ रत्नकीर्ति गीत

ब्रह्म जयसागर रत्नकीर्ति के कट्टर समर्थक थे। उनके प्रिय शिष्य तो थे ही लेकिन एक रूप मे उनके प्रचारक भी थे। इन्होने रत्नकीर्ति के जीवन के सम्बन्ध मे कई गीत लिखे और उनका जनता मे प्रचार किया। रत्नकीर्ति जहा भी कही जाते उनके अनुयायी जयसागर द्वारा लिखे हुए गीतो को गाते। इसके अतिरिक्त इन गीतो मे कवि ने रत्नकीर्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओ को छन्दोवद्ध कर दिया है। यह सभी गीत सरल भाषा मे लिखे हुए हैं जो गुजराती से वहुत दूर एव राजस्थानी के अधिक निकट हैं।

मलय देश भव चदन, देवदास केरो नदन।
श्री रत्नकीर्ति पद पूजियेए।

अक्षत शोभन साल ए, सहेजलदे सुत गुणमाल रे विशाल।
श्री रत्नकीर्ति पद पूजियेए।

इस प्रकार जयसागर ने जीवन पर्यन्त साहित्य के विकास मे जो अपना अपूर्व योग दिया वह इतिहास मे सदा स्मरणीय रहेगा।

आचार्य चन्द्रकीर्त्ति

'भ० रत्नकीर्ति' ने साहित्य-निर्माण का जो वातावरण बनाया था तथ अपने शिष्य-प्रशिष्यो को इस ओर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था, इस के फल-स्वरूप ब्रह्म-जयसागर, कुमुदचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, सयमसागर, गणेश और धर्म-सागर जैसे प्रसिद्ध सन्त, साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए। 'आ. चन्द्रकीर्ति 'भ० रत्नकीर्ति' के प्रिय शिष्यो मे से थे। ये मेधावी एव योग्यतम शिष्य थे तथ अपने गुरु के प्रत्येक कार्यो मे सहयोग देते थे।

'चन्द्रकीर्ति' के गुजरात एव राजस्थान प्रदेश प्रमुख क्षेत्र थे। कभी-कभी अपने गुरु के साथ और कभी स्वतन्त्र रूप से इन प्रदेशो मे विहार करते थे। वैसे बारडोली, भडौच, डूगरपुर, सागवाडा आदि नगर इनके साहित्य निर्माण के स्थान थे। अब तक इनकी निम्न कृतिया उपलब्ध हुई हैं '—

१. सोलहकारण रास

२ जयकुमाराख्यान,

३. चारित्र-चुनडी,

४. चौरासी लाख जीवजोनि वीनती।

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त इनके कुछ हिन्दी पद भी उपलब्ध हुए हैं।

१. सोलहकारण रास

यह कवि की लघु कृति है। इसमे षोडशकारण व्रत का महात्म्य बतलाया गया है। ४६ पद्यो वाले इस रास मे राग-गौडी देशी, दूहा, राग-देशाख, त्रोटक, चाल, राग-धन्यासी आदि विभिन्न छन्दो का प्रयोग हुआ है। कवि ने रचनाकाल का उल्लेख तो नही किया है, किन्तु रचना-स्थान 'भडौच' का अवश्य निर्दिष्ट किया है। 'भडौच' नगर मे जो शातिनाथ का मन्दिर था– वही इस रचना का समाप्ति -स्थान था। रास के अन्त मे कवि ने अपना एव अपने पूर्व गुरुओ का स्मरण किया है। अन्तिम दो पद्य निम्न प्रकार हैं—

श्री भरुयच नगरे सोहामणु श्री शातिनाथ जिनराय रे।
प्रासादे रचना रचि, श्री चन्द्रकीरति गुण गायरे ॥४४॥

ए व्रत फल गिरना जो जो, श्री जीवन्धर जिनराय जी ।
भवियण तिहा जइ भावज्ये, पातिग दुरे पालाय रे ॥४५॥

पूर्व छापो

चौतीस अतिस अतिसय भला, प्रतिहार्य वसू होय ।
चार चतुष्टय जिनवरा, ए छेतालीस पद जोय ॥४६॥

२ जयकुमार आख्यान

यह कवि का सवसे बडा काव्य है जो ४ सर्गों मे विभक्त है। 'जयकुमार' प्रथम तीर्थकर 'भ० ऋषभदेव' के पुत्र सम्राट भरत के सेनाध्यक्ष थे। इन्हीं जय कुमार का इसमे पूरा चरित्र वर्णित है। आख्यान वीर-रस प्रधान है। इसकी रचना वारडोली नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे सवत् १६५५ की चैत्र शुक्ला दसमी के दिन समाप्त हुई थी।

'जयकुमार' को सम्राट भरत सेनाध्यक्ष पद पर नियुक्त करके शाति पूर्वक जीवन बिताने लगे। जयकुमार ने अपने युद्ध-कौशल से सारे साम्राज्य पर अखण्ड शासन स्थापित किया। वे सौन्दर्य के खजाने थे। एक बार वाराणसी के राजा 'अकम्पन' ने अपनी पुत्री 'सुलोचना' के विवाह के लिए स्वयम्वर का आयोजन किया। स्वयम्वर मे जयकुमार भी सम्मिलित हुए। इसी स्वयम्वर मे 'सम्राट भरत' के एक राजकुमार 'अर्ककीर्ति' भी गये थे, लेकिन जब 'सुलोचना' ने जयकुमार के गले मे माला पहिना दी, तो वह अत्यन्त क्रोधित हुये। अर्ककीर्ति एव जयकुमार मे युद्ध हुआ और अन्त मे जयकुमार का सुलोचना के साथ विवाह हो गया।

इस 'आख्यान' के प्रथम अधिकार मे 'जयकुमार–सुलोचना–विवाह' का वर्णन है। दूसरे और तीसरे अधिकार मे जयकुमार के पूर्व भवो का वर्णन और चतुर्थ एव अन्तिम अधिकार में जयकुमार के निर्वाण-प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

'आख्यान' मे वीर-रस, शृ गार-रस एवं शान्त रस का प्राधान्य है। इसकी भाषा राजस्थानी डिंगल है। यद्यपि रचना-स्थान वारडोली नगर है, लेकिन गुजराती शब्दों का बहुत ही कम प्रयोग किया गया है– इससे कवि का राजस्थानी प्रेम झल- कता है।

'सुलोचना' स्वयम्वर मे वरमाला हाथ मे लेकर जब आती है, तो उस समय उसकी कितनी सुन्दरता थी, इसका कवि के शब्दो मे ही अवलोकन कीजिए—

जाणिए सोलें कला पीस, मुखचन्द्र सोभासी कहु ।
अधर विद्रुम राजतारी, दन्त मुक्ताफल लहु ।।

कमल पत्र विशाल नेत्रा, नासिका शुक नन ।
अष्टमी चन्द्रज भाल सोहि, वेणी नाग प्रसन ।।

सुन्दरी देखी तेह राजा, चिन्तवे मन माहि ।
ए सुन्दरी सुर सुन्दरी, किन्नरी किस देह जाम ।।

सुलोचना एक एक राजकुमार के पास आती और फिर आगे चल देती। उस समय वहां उपस्थित राजकुमारों के हृदय में क्या-क्या कल्पनाएं उठ रही थी- इनको भी देखिये :—

एक हसता एक रीझे, एक रग करे नवा ।
एक जाणे मुझ वरसे, प्रेम धरता जुज वा ।।

एक कहे जो नहीं वरे, तो अम्यो तपवन जायसु ।
एक कहतो पुण्य सो भी, एव वनमयासू ।।

एक कहे जो आवयातो, विमासण सहु परहरो ।
पुण्य फल ने वातणीए, ठाम मून हे धरे धरै ।।

लेकिन जब 'सुलोचना' ने 'अर्ककीर्ति' के गले में वरमाला नहीं डाली, तो जयकुमार एवं अर्ककीर्ति में युद्ध भड़क उठा। इसी प्रसंग में वर्णित युद्ध का दृश्य भी देखिए —

मला कटक विकट कवहू सुभट सू,
धीर वीर हमीर हठ विकट सू ।

करी कोप कूटे बूटे सरवहू,
चक्र तो ममर खडग मूके सहु ।।

गयो गम गोला गणनागणे,
अंगो अंग आवे वीर इम भणे ।

मोहो माहि मूके मोटा महीपती,
चोट खोट न आवे क्यमरती ।।

बधो थवा करी वेहदू डसू,
कोपे करता कूटे अखडसू ।

घरी घीर घरणी ढोली नाखता,
कोपि कडकडी लाजन राखता ।।

हस्ती हस्ती सघाते श्राथडे,
रथो रथ सूभट सहू इम मडे ।

हय हयारव जब छजयो,
नीसाण नादें जग गज्जयो ।।

कवि ने अन्त मे जो अपना वर्णन किया है, वह निम्न प्रकार है —

श्री मूल सघ सरस्वती गछे रे, मुनीवर श्री पदमनन्द रे ।
देवेन्द्रकीरति विद्यानदी जयो रे, मल्लीभूषण पुण्य क द रे ।।

श्री लक्ष्मीचद्र पाटे थापया रे, अभय सुचद्र मुनीन्द्र रे ।
तस कुल कमलें रवि समोरे, अभयनदी नमे नरचन्द्र रे ।।

तेह तणे पाटें सोहावयो रे, श्री रत्नकीरति सुगुण भडार रे ।
तास शीष सुरी गुणें मडयो रे, चन्द्रकीरति कहे सार रे ।

एक मना एह भणें सामले रे, लखे भलु एह श्राख्यान रे ।।
मन रे वाछति फलते लहे रे, नव मवें लहे वह्रु मान रे ।

सवत सोल पचावनें रे, उजाली दशमी चैत्र मास रे ।।
वाडोरली नयरे रचना रची रे, चन्द्रप्रभ सुभ श्रावास रे ।

नित्य नित्य केवली जे जपे रे, जय-जयनाम प्रसीधरे ।।
गणघर श्रादिनाथ केर डोरे, एकत्तरमो बहु रिघ रे ।

विस्तार श्रादि पुराण पाडवे भणोरे, एह सक्षेपे कही सार रे ।।
भणे सुणे भवि ते सुख लहे रे, चन्द्रकीरति कहे सार रे ।

समय ·

कवि ने इसे सवत् १६५५ में समाप्त किया था। इसे यदि अन्तिम रचना भी माना जावे तो उसका समय सवत् १६६० तक का निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने अपने गुरु के रूप मे केवल 'रत्नकीर्ति' का ही नामोल्लेख किया है, जबकि सवत् १६६० तक तो रत्नकीर्ति के पश्चात् कुमुदचन्द्र भी भट्टारक हो गए थे, इसलिए यह भी निश्चित सा है कि कवि ने रत्नकीर्ति से ही दीक्षा ली थी और उनकी मृत्यु के पश्चात् वे सघ से अलग ही रहने लगे थे। ऐसी अवस्था मे

कवि का समय यदि संवत् १६०० से १६६० तक मान लिया जावे तो कोई अस्वाभाविक नहीं होगा।

अन्य कृतियां

जयगुणारास्थान एवं सोलह कारण रास के अलावा अन्य सभी रचनाएं लघु रचनाएं हैं। किन्तु भाव एवं भाषा की दृष्टि से ये सभी उल्लेखनीय हैं। कवि का एक पद देखिए —

राग प्रभाति :

> जागता जिनवर जे दिन निरख्यो,
> धन्य ते दिवस चिन्तामणि सरिखो।
>
> सुप्रभाति मुख कमल जु दीठु,
> वचन अमृत थकी अधिकजु मीठु ॥१॥
>
> सफल जनम हवो जिनवर दीठा,
> करण सफल सुण्या तुम्ह गुण मीठा ॥२॥
>
> धन्य ते जे जिनवर पद पूजे,
> श्री जिन तुम्ह विन देव न दूजो ॥३॥
>
> स्वर्ग मुगति जिन दरसनि पामे,
> 'चन्द्रकीरति' सूरि सीसज नामे ॥४॥

भट्टारक शुभचद्र (द्वितीय)

'शुभचन्द्र' के नाम से कितने ही भट्टारक हुए हैं। 'भट्टारक-सम्प्रदाय' मे '४ शुभचन्द्र' गिनाये गये हैं —

१ 'कमल कीर्त्ति' के शिष्य 'भ० शुभचन्द्र'
२ 'पद्मनन्दि' के शिष्य- ,,
३ 'विजयकीर्त्ति' के शिष्य- ,,
४ 'हर्षचन्द' के शिष्य- ,,

इनमे प्रथम काष्ठा सघ के माथुर गच्छ और पुष्कर गण मे होने वाले 'भ० कमलकीर्त्ति' के शिष्य थे। इनका समय १६वी शताब्दि का प्रथम-द्वितीय चरण था। 'दूसरे शुभचन्द्र' भ० पद्मनन्दि के शिष्य थे, जिनका भ० काल स १४५० से १५०७ तक था। तीसरे 'भ० शुभचन्द्र' भ० विजयकीर्त्ति के शिष्य थे-जिनका हम पूर्व पृष्ठो में परिचय दे चुके हैं। 'चौथे शुभचन्द्र' भ० हर्षचन्द के शिष्य बताये गये है-इनका समय १७२३ से १७४६ माना गया है। ये भट्टारक भुवन कीर्त्ति की परम्परा में होने वाले भ० हर्षचन्द (स १६९८-१७२३) के शिष्य थे। लेकिन 'आलोच्य भट्टारक शुभचन्द्र' 'भ०-अभयचन्द्र' के शिष्य थे-जो भ० रत्नकीर्त्ति के प्रशिष्य एव 'भ० कुमुदचन्द्र' के शिष्य थे जिनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है-—

'भट्टारक अभयचन्द्र' के पश्चात् सवत् १७२१ की ज्येष्ठ बुदी प्रतिपदा के दिन पोरबन्दर मे एक विशेष उत्सव किया गया। देश के विभिन्न भागो से अनेक साधु-सन्त एव प्रतिष्ठित श्रावक उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए नगर मे आये। शुभ मुहूर्त मे 'शुभचन्द्र' का 'भट्टारक गादी' पर अभिषेक किया गया। सभी उपस्थित श्रावको ने 'शुभचन्द्र' की जयकार के नारे लगाये। स्त्रियो ने उनकी दीर्घायु के लिए मगल गीत गाये। विविध वाद्य यन्त्रो से सभा-स्थल गूज उठा और उपस्थित जन-समुदाय ने गुरु के प्रति हार्दिक श्रद्धाजलियाँ अर्पित की।[2]

'शुभचन्द्र' ने भट्टारक बनते ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया।

---

१. देखिये-'भट्टारक-सम्प्रदाय'-पृ स०... ३०६

२ तव सज्जन उलट अंग धरे, मधुरे स्वरे माननी गांन करे ॥११॥
ताहा बहु विध वाजित्र वाजता, सुर नर मन मोहो निरखता ॥१२॥

यद्यपि अभी वे पूर्णत युवा थे।[3] उनके अग प्रत्यग से सुन्दरता टपक रही थी, लेकिन उन्होंने अपने आत्म-उद्धार के साथ-साथ समाज के अज्ञानान्धकार को दूर करने का बीडा उठाया और उन्हें अपने इस मिशन मे पर्याप्त सफलता भी मिली। उन्होंने स्थान-स्थान पर विहार किया। राजस्थान से उन्हे अत्यधिक प्रेम था इसलिए इस प्रदेश मे उन्होंने बहुत भ्रमण किया और अपने प्रवचनो द्वारा जन-साधारण के नैतिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय विकास मे महत्वपूर्ण योग दान दिया।

'शुभचन्द्र' नाम के ये पाचवे भट्टारक थे, जिन्होंने साहित्यिक एव सास्कृतिक कार्यों मे विशेष रुचि ली। 'शुभचन्द्र' गुजरात प्रदेश के जलसेन नगर मे उत्पन्न हुए। यह नगर जैन समाज का प्रमुख केन्द्र था तथा हूबड जाति के श्रावकों का वहाँ प्रभुत्व था। इन्ही श्रावकों मे 'हीरा' भी एक श्रावक थे जो धन धान्य से पूर्ण तथा समाज द्वारा सम्मानित व्यक्ति थे। उनकी पत्नी का नाम 'माणिक दे' था। इन्ही की कोख से एक सुन्दर बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम 'नवल राम' रखा गया। 'बालक नवल' अत्यधिक व्युत्पन्न-मति थे—इसलिए उसने अल्पायु मे ही व्याकरण, न्याय, पुराण, छन्द-शास्त्र, अष्टसहस्री एव चारो वेदो का अध्ययन कर लिया।[1] १८ वी शताब्दी मे भी गुजरात एव राजस्थान मे भट्टारक साधुओं का अच्छा प्रभाव था। इसलिए नवल राम को बचपन से ही इनकी सगति मे रहने का अवसर मिला। 'भ० अभयचन्द्र' के सरल जीवन ने ये अत्यधिक प्रभावित थे इसलिए उन्होंने भी गृहस्थ जीवन के चक्कर मे न पडकर आजन्म साधु-जीवन का परिपलन करने का निश्चय कर लिया। प्रारम्भ मे 'अभयचन्द्र' से 'ब्रह्मचारी पद' की शपथ ली और इसके पश्चात् वे भट्टारक बन गए।

'शुभचन्द्र' के शिष्यो मे प श्रीपाल, गणेश, विद्यासागर, जयसागर, आनन्दसागर आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। 'श्रीपाल' ने तो शुभचन्द्र के

---

३. छण रजनी कर वदन विलोकित, अर्द्ध ससी सम भाल।
पकज पत्र समान सुलोचन, ग्रीवा कबु विशाल रे ॥८॥

नाशा शुक-चची सम सुन्दर, अधर प्रवालो वृद।
रक्त वर्ण द्विज पक्ति विराजित नीरखता आनन्द रे ॥६॥

दिम दिम मद्दन तबलन फेरी, तत्तायेई करत।
पच शबद वाजित्र ते बाजे, नादे नभ गज्जत रे ॥२१॥

१. व्याकर्ण तर्क वितर्क अनोपम, पुराण पिंगल भेद।
अष्टसहस्री आदि ग्रंथ अनेक जु ज्होँ विद जाणो वेद रे॥
—श्रीपाल कृत एक गीत

कितने ही पद्यो मे प्रशसात्मक गीत लिखे हैं -जो साहित्यिक एव ऐतिहासिक दोनो प्रकार के हैं।

'भ० शुभचन्द्र' साहित्य-निर्माण मे अत्यधिक रूचि रखते थे। यद्यपि उनकी कोई बडी रचना उपलब्ध नही हो सकी है, लेकिन जो पद साहित्य के रूप मे इनकी कृतियाँ मिली हैं, वे इनकी साहित्य-रसिकता की ओर पर्याप्त प्रकाश डालने वाली हैं। अब तक इनके निम्न पद प्राप्त हुए हैं —

१ पेखो सखी चन्द्रमम मुख चन्द्र

२ आदि पुरुप भजो आदि जिनेन्दा

३ कोन सखी सुध ल्यावे श्याम की

४ जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार

५ पावन मति मात पद्मावति पेखता

६ प्रात समये शुभ ध्यान धरीजे

७ वासु पूज्य जिन विनती—सुणो वासु पूज्य मेरी विनती

८ श्री सारदा स्वामिनी प्रणमि पाय, स्तवू वीर जिनेश्वर विवुध राय।

९ अजझारा पार्श्वनाथनी वीनती

उक्त पदो एव विनतियो के अतिरिक्त अभी 'भ० शुभचन्द्र' की और भी रचनाएँ होगी, जो किसी गुटके के पृष्ठो पर अथवा किसी शास्त्र—भण्डार मे स्वतत्र ग्रन्थ के रूप मे अज्ञातावस्था मे हुए पडी अपने उद्धार की बाट जोह रही होगी।

पदो मे कवि ने उत्तम भावो को रखने का प्रयास किया है। ऐसा मालूम होता है कि 'शुभचन्द्र' अपने पूर्ववर्ती कवियो के समान 'नेमि-राजुल' की जीवन-घटनाओ से अत्यधिक प्रभावित थे इसलिए एक पद मे उन्होंने "कौन सखी सुध-ल्यावे श्याम की" मार्मिक भाव भरा। इस पद से स्पष्ट है कि कवि के जीवन पर मीरा एव सूरदास के पदो का प्रभाव भी पडा है —

कौन सखी सुध ल्यावे श्याम की।
मधुरी धुनी मुखचद विराजित, राजमति गुण गावे ॥श्याम ॥१॥

अ ग विभूषण मनीमय मेरे, मनोहर माननी पाव।
करो कछु तत मत मेरी सजनी, मोहि प्रान नाथ मीलावे ॥श्याम ॥२॥

गज गमनी गुण मन्दिर स्यामा, मनमथ मान सतावे।
कहा अवगुन अब दीन दयाल छोरि मुगति मन भावे ॥श्याम ॥३॥

> सब सखी मिली मन मोहन के ढिग, जाई कथा जु सुनावे ।
> सुनो प्रभु श्री शुभचन्द्र के साहिब, कामिनी कुल क्यों लजावे ॥श्याम ॥४॥

कवि ने अपने प्रायः सभी पद भक्ति-रस प्रधान लिखे हैं । उनमे विभिन्न तीर्थंकरों का स्तवन किया गया है । आदिनाथ स्तवन का एक पद देखिए—

> आदि पुरुष भजो आदि जिनेंदा ॥टेक॥
> सकल सुरासुर शेष सु व्यतर, नर खग दिनपति सेवित चंदा ॥१॥
>
> जुग आदि जिनपति भये पावन, पतित उधारण नाभि के नंदा ।
> दीन दयाल कृपा निधि सागर, पार करो अघ-तिमिर दिनंदा ॥२॥
>
> केवल ग्यान थे सब कछु जानत, काह कहूं प्रभु मो मति मंदा ।
> देखत दिन-दिन चरण सरण तो, विनती करत सो सूरि शुभ चंदा ॥३॥

समय

'शुभचन्द्र' संवत् १७४५ तक भट्टारक रहे । इसके पश्चात् 'रत्नचन्द्र' को भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया । 'भ० रत्नचन्द्र' का एक लेख सं० १७४८ का मिला है, जिसमें एक गीत की प्रतिलिपि प० श्रीपाल के परिवार के सदस्यों के लिए की गई थी-ऐसा उल्लेख किया गया है । इस तरह 'भ० शुभचन्द्र' ने २४–२५ वर्ष तक देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण करके साहित्य एवं संस्कृति के पुनरुत्थान का जो अलख जगाया था-वह सदैव स्मरणीय रहेगा ।

—

भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति

१७ वी शताब्दि मे राजस्थान में 'आमेर-राज्य' का महत्व बढ रहा था। आमेर के शासको का मुगल बादशाहो से घनिष्ट सम्बन्ध के कारण यहा अपेक्षाकृत शान्ति थी। इसके अतिरिक्त आमेर के शासन मे भी जैन दीवानो का प्रमुख हाथ था। वहा जैनो की अच्छी बस्ती थी और पुरातत्व एव कला की दृष्टि से भी आमेर एव सागानेर के मन्दिर राजस्थान-भर मे प्रसिद्धि पा चुके थे। इसलिए देहली के भट्टारको ने भी अपनी गादी को दिल्ली से आमेर स्थानान्तरित करना उचित समझा और इसमे प्रमुख भाग लिया 'भ० देवेन्द्रकीर्त्ति' ने, जिनका पट्टाभिषेक सवत् १६६२ मे चाटसू मे हुआ था। इसके पश्चात् तो आमेर, सागानेर, चाटसू और टोडारायसिंह आदि नगरो के प्रदेश इन भट्टारको की गतिविधियो के प्रमुख केन्द्र बन गये। इन सन्तों की कृपा से यहा सस्कृत एव हिन्दी-ग्रन्थो का पठन-पाठन ही प्रारम्भ नही हुआ, किन्तु इन भाषाओ मे ग्रन्थ रचना भी होने लगी और आमेर, सागानेर, टोडा-रायसिंह और फिर जयपुर मे विद्वानो की मानों एक कतार ही खडी होगयी। १७ वी शताब्दी तक प्राय सभी विद्वान् 'सन्त' हुआ करते थे, लेकिन १८ वी श० से गृहस्थ भी साहित्य-निर्माता बन गये। अजयराज पाटणी, खुशालचन्दकाला, जोधराज गोदीका, दौलतराम कासलीवाल, महा प० टोडरमलजी व जयचन्दजी छावडा जैसे उच्चस्तरीय विद्वानो को जन्म देने का गर्व इसी भूमि को है।

'आमेर-शास्त्र-भण्डार' जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ-सग्रहालय की स्थापना एव उसमे अपभ्रश, सस्कृत एव हिन्दी-ग्रन्थो की प्राचीनतम प्रतिलिपियो का सग्रह इन्ही सन्तो की देन है। आमेर शास्त्र भण्डार मे अपभ्रश का जो महत्वपूर्ण सग्रह है, वैसा सग्रह नागौर के भट्टारकीय शास्त्र-भण्डार को छोडकर राजस्थान के किसी भी ग्रन्थ-सग्रहालय मे नही है। वास्तव में इन सन्तो ने अपने जीवन का लक्ष्य आत्म-विकास की ओर निहित किया। उनका यह लक्ष्य साहित्य-सग्रह एव उसके प्रचार की ओर भी था। इन्ही सन्तो की दूरदर्शिता के कारण देश का अमूल्य साहित्य नष्ट होने से बच सका। अब यहा आमेर गादी से सम्बन्धित तीन सन्तो का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है —

१ भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति

'नरेन्द्रकीर्त्ति' अपने समय के जबरदस्त भट्टारक थे। ये शुद्ध 'बीस पथ' को मानने वाले थे। ये खण्डेलवाल श्रावक थे और 'सौगाणी' इनका गोत्र था। एक

भट्टारक पट्टावली के अनुसार ये संवत् १६९१ मे भट्टारक बने थे। इनका पट्टाभिषेक सागानेर मे हुआ था। इसकी पुष्टि बख्तराम साह ने अपने बुद्धि-विलास' मे निम्न पद्य से की है'—

नरेन्द्र कीरति नाम, पट इक सागानेरि मैं।
भये महागुन धाम, सोलह मैं इक्याणवैं ॥६६०॥

ये 'भ० देवेन्द्रकीर्त्ति' के शिष्य थे, जो आमेर गादी के संस्थापक थे। सम्पूर्ण राजस्थान मे ये प्रभावशाली थे। मालवा, मेवात तथा दिल्ली आदि के प्रदेशो मे इनके भक्त रहते थे और जब ये जाते, तब उनका खूब स्वागत किया जाता। एक भट्टारक पट्टावली[1] मे नरेन्द्रकीर्त्ति की आम्नायका—जहा २ प्रचार था, उसका निम्न पद्यो मे नामोल्लेख किया है'—

आगनाइ दिलीय मंडल मुनिवर, अवर मरहट देसय।
अणीए वतीसी विख्यात, वदि वैराठस वेसय ॥

मेवात मंडल सर्वं सुणीए, धरम तिण आवै धणा।
परसिध पचवारोस मुणिए, सलक वदे अतिसरा ॥११८॥

धर प्रकट ढुंढा ईडर ढाढो, अवर अजमेरो भणा।
मुरधर सदेश करैं महोछा, मंड नवरासी घणा ॥

साभरि सुथान सुद्रंग सुणीजैं, जुगत इहरैं जाण ए।
अधिकार ऐती धरा वोपै, विरुद अधिक वखाणए ॥११९॥

नरसाह नागरचाल निसचल वहोत खैराडा वरैं।
मेवाड देस चीतोड मोटी, महैपति मंगल करैं ॥

मालवैं देसि वडा महाजन, परम सुखकारी सुणा।
आग्या सुवाल सुधुम सब विधि, भाव अंगि मोटा भणा ॥१२०॥

माडोर माडिल अजव, बून्दी, परसि पाटण थानय।
सीलोर कोटो बहावार, मही रिणथभ मानय ॥

दीरघ चदेरी चाव निस्चल, महत धरम सुमडणा।
विडदैत लाखैहेरी विराजे, अधिक उणियारा तणा ॥१२१॥

---

१ इसकी एक प्रति महावीर भवन, जयपुर के संग्रहालय मे है।

दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध तेरह पथ की उत्पत्ति भी इन्ही के समय मे हुई थी। यह पथ सुधारवादी था और उसके द्वारा अनेक कुरीतियो का जोरदार विरोध किया था। बख्तराम साह ने अपने मिथ्यात्व खण्डन मे इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

भट्टारक आवैरिके, नरेन्द्र कीरति नाम।
यह कुपथ तिनकै समै, नयो चल्यो अघ धाम ॥२४॥

इस पद्य से ज्ञात होता है कि 'नरेन्द्रकीर्त्ति' का अपने समय ही से विरोध होने लगा था और इनकी मान्यताओ का विरोध करने के लिए कुछ सुधारको ने तेरहपथ नाम से एक पथ को जन्म दिया। लेकिन विरोध होते हुए भी नरेन्द्रकीर्त्ति अपने मिशन के पक्के थे और स्थान २ पर घूमकर साहित्य एव संस्कृति का प्रचार किया करते थे। यह अवश्य था कि ये सन्त अपने आध्यात्मिक उत्थान की ओर कम ध्यान देने लगे थे तथा लौकिक रूढियो मे फसते जा रहे थे। इसलिए उनका धीरे-धीरे विरोध बढ रहा था, जिसने महापडित टोडरमल के समय मे उग्र रूप धारण कर लिया और इन सन्तो के महत्व को ही सदा के लिए समाप्त कर दिया।

'नरेन्द्रकीर्त्ति' ने अपने समय मे आमेर के प्रसिद्ध भट्टारकीय शास्त्र भण्डार को सुरक्षित रखा और उसमे नयी २ प्रतिया, लिखवाकर विराजमान कराई गई।

"तीर्थंकर चौबीसना छप्पय" नाम से एक रचना मिली है, जो सभवत इन्ही नरेन्द्रकीर्त्ति की मालूम होती है। इस रचना का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

एकादश वर अ ग, चउद पूरव सहु जाणउ।
चउद प्रकीर्णक शुद्ध, पच चूलिका वखाणु ॥

अरि पच परिकर्म सूत्र, प्रथमहु दिनि योगह।
तिहना पद शत एक, अधिक द्वादश कोटिगह ॥

आसी लक्ष अधिक वली, सहस्त्र अठावन पच पद।
इम आचार्य नरेन्द्रकीरति कहइ, श्रीश्रुत ज्ञान पठधरीय मुद ॥

सवत् १७२२ तक ये भट्टारक रहे और इसी वर्ष महापडित-'आशाधर' कृत प्रतिष्ठा पाठ की एक हस्त लिखित प्रति इनके शिष्य आचार्य श्रीचन्द्रकीर्त्ति, घासीराम, प० भीवसी एव मयाचन्द के पठनार्थ भेंट की गई।

कितने ही स्तोत्रो की हिन्दी-गद्य टीका करने वाले 'अखयराज' इन्ही के शिष्य थे। सवत् १७१७ मे सस्कृत मजरी की प्रति इन्हे भेट की गई थी। टोडारायसिंह

के प्रसिद्ध पडित कवि जगन्नाथ इन्ही के शिष्य थे। प० परमानन्दजी ने नरेन्द्रकीर्ति के विषय मे लिखते हुए कहा है कि इनके समय मे टोडारायसिह मे सस्कृत पठन-पाठन का अच्छा कार्य चलता था। लोग शास्त्रो के अभ्यास द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करते थे। यहा शास्त्रो का भी अच्छा सग्रह था। लोगो को जैनधर्म से विशेष प्रेम था। अष्टसहस्री और प्रमाण-निर्णय आदि न्याय-ग्रन्थो का लेखन, प्रवचन, पञ्चास्तिकाय आदि सिद्धान्त ग्रन्थो आदि का प्रति लेखन काय तथा अनेक नूतन ग्रन्थो का निर्माण हुआ था। कवि जगन्नाथ ने श्वेताम्बर-पराजय मे नरेन्द्रकीर्ति का मगलाचरण मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है —

पदांबुज-मधुव्रतो भुवि नरेन्द्रकीर्त्तिगुरो ।
गुवादि पद भृद्गुरु प्रकरण जगन्नाथ वाक् ॥२॥

'नरेन्द्रकीर्त्ति' ने कितनी ही प्रतिष्ठाओ का नेतृत्व भी किया था। पावापुर (स० १७००), गिरनार (१७०८), मालपुरा (१७१०), हस्तिनापुर (स० १७१६) मे होने वाली प्रतिष्ठाए उन्ही की देख-रेख मे सम्पन्न हुई थी।

सुरेन्द्रकीर्त्ति

सुरेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति के शिष्य थे। इनकी ग्रहस्थ अवस्था का नाम दामोदरदास था तथा ये कालागोत्रीय खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे। ये बडे भारी विद्वान् एव सयमी श्रावक थे। प्रारम्भ से ही उदासीन रहते एव शास्त्रो का पठन पाठन भी करते थे। एक बार भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति का सागानेर मे आगमन हुआ तो उनका दामोदरदास से साक्षात्कार हुआ। प्रथम भेट में ही ये दामोदरदास की विद्वत्ता एवं वाक् चातुर्य पर प्रभावित हो गये और उन्हे अपना प्रमुख शिष्य बनाने को उद्यत हो गये। जब इन्हें अपने स्वय के शेष जीवन पर अविश्वास होने लगा तो शीघ्र ही भट्टारक गादी पर दामोदरदास को बिठाने की योजना बनाई गई। एक भट्टारक पट्टावलि मे इस घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

श्रीय गुर सागानइरि मधि, आयो करण प्रकास।
मुझ काया तो एम गति, देखि दामोदरदास ॥१०५॥

हू भला कहो तुम सभलो, कथो दोस मति कोई।
जो दिख्या मनि दिढ करो, तो अवसि पाटि अब होइ ॥१२६॥

तब पडित समझावियो, तुम चिरजीव मुनिराज।
इसी बात किम उचरो, श्री गछपति सिरताज ॥१२७॥

घणा दीह आरोगि घण, काया तुम अवीचार।
च्यारि मास पीछे ग्रहो, यो जिण धरम आचार ॥१२८॥

इया वचन पडित कहै, आगम तणा अरथ।
तब गुर नरिंद सुजाणियो, इहै पाट समरथ ॥१२९॥

सागानेर एव आमेर के प्रमुख श्रावको ने एक स्वर से दामोदरदास को भट्टारक बनाने की अनुमति दे दी। वे उसके चरित्र एव विनय तथा पाडित्य की निम्न शब्दो मे प्रशसा करने लगे—

वडो जोग्य पडित सु अपग्बल, सुन्दर सील काइ अतिनृमल।
यो जैनिधरम लाइक परमाण, ऐम कह्यो सगपति कलियाण ॥१३७॥

दामोदररास को सागानेर से बडे ठाट बाट के साथ आमेर लाया गया और उन्हें संवतु १७२२ मे विधि-वत् भट्टारक बना दिया गया। अब दामोदररास से

उनका नाम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति हो गया। इनका पाटोत्सव बडी धूम धाम से हुआ। स्वर्ण कलश से स्नान कराया गया तथा सारे राजस्थान मे प्रतिष्ठित श्रावको ने इस महोत्सव मे भाग लिया। सुरेन्द्रकीर्त्ति की प्रशसा मे लिखा हुआ एक पद्य देखिये—

> सत्रासै साल भए बाइसे सजम सावण मधि ग्रह्यो
> सुभ आठै मगलवार सही जोतिग मिले पखि किसन कह्यो।
>
> मारयौ मद मोह मिथ्यातम हर मउ रुप महा वैराग धरयौ।
> धर्मवत धरारत नागर सागर गोतम सौ गुण ग्यान भरयौ।
>
> तप तेज सुकाइ अनत करे सवक तणौ तिन माण हणं,
> थीर थभण पाट नरिद तणौ सुरीयद भट्टारिक साध नणं ॥१६६॥

सुरेन्द्रकीर्त्ति की योग्यता एव सयम की चारो ओर प्रशसा होने लगी और शीघ्र ही इन्होने सारे राजस्थान पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ये केवल ११ वर्ष भट्टारक रहे लेकिन इस अल्प समय मे ही इन्होंने सब ओर विहार करके समाज सुधार एव साहित्य प्रचार का बडा भारी कार्य किया। इन्हे कितने ही स्थानो से निमन्त्रण मिलते। जब ये अहार के लिये जाते तो श्रावक इन पर सोने चादी का सिक्के न्योछावर करते और इनके आगमन से अपने घर को पवित्र समझते। वास्तव मे समाज मे इन्हे अत्यधिक आदर एव सत्कार मिला।

सुरेन्द्रकीर्त्ति साहित्यिक भी थे। इनके काल मे आमेर शास्त्र भण्डार की अच्छी प्रगति रही। कितनी ही नवीन प्रतिया लिखवायी गयी और कितने ही ग्रथो का जीर्णोद्धार किया गया।

——

भट्टारक जगत्कीर्त्ति

जगत्कीर्त्ति अपने समय के प्रसिद्ध एव लोक प्रिय भट्टारक रहे हैं। ये सवत् १७३३ मे सुरेन्द्रकीर्त्ति के पश्चात् भट्टारक बने। इनका पट्टाभिषेक आमेर मे हुआ था जहा आमेर और सागानेर एव अन्य नगरो के सैकडो हजारो श्रावको ने इन्हे अपना गुरु स्वीकार किया था। तत्कालीन पडित रत्नकीर्त्ति, महीचन्द, एव यश कीर्त्ति ने इनका समर्थन किया। ये शास्त्रो के ज्ञाता एव सिद्धान्त ग्रथो के गम्भीर विद्वान थे। मन्त्र शास्त्र मे भी इनका अच्छा प्रवेश था। एक भट्टारक पट्टावली मे इनके पट्टाभिषेक का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

महो मूलसघ गच्छपति मारिण धारी, आतमक जीवइ राग घर।
आराध मन्त्र विद्या, वरवाइक, अमृत मुखि उचार कर।

सत सील धर्म सारी परिस कहय, वसुधा जस तिरण विसतरीय।
श्रीय जगतकीरति भट्टारिक जग गुर, श्रीय सुरियद पाट सउधरीय ।१४।

आवैरि नइरि नृप राम राज मधि, विमलदास विधि सहैत कीय।
परिमल भरि पच कलस अति कुदन पचमिलि कल्यारण कीय।

आजलि काइसर दास झेलि करि, अति आनद उछव करीय।
श्री जगतकीरति भट्टारक जग गुर, श्रीय सुरिइ द पाटिउ धरिय ॥१५॥

साखौण्या वसि सिरोमरिण सब विधि, दुनीया ध्रम उपदेस दीय।
उपगार उदार वडो व्रद छाजत, लोभ्या मुखि मुखि सुजस लीय।

देवल पतिस्ट सग उपदेसैं, अमृत वारिण सउचरीय।
श्री जगतकीरति भट्टारक जगगुर, श्रीय सुरिइ द पाटिउ धरिय ॥१६॥

सवत सत्रासै अर तेतीसै, सावरण वदि पचमी भरिण।
पदवी भट्टारक अचल विराजित, घरण दान घरण राजतरण।

महिमा महा सवै करै मिलि श्रावक, सीख साखा आनद धरीय।
श्री जगतकीरति भट्टारिक जगतगुर, श्रीसुरिइद पाट सउ धरीय ॥१७॥

जगतकीति एक लम्बे समय तक भट्टारक रहे और इन्होने अपने इस काल को राजस्थान में स्थान स्थान मे विहार करके जन साधारण के जीवन को सास्कृतिक, साहित्यिक एव धार्मिक दृष्टि से ऊचा उठाया। सवत् १७४१ मे आपने

लवाण (जयपुर) ग्राम मे विहार लिया। उस अवसर पर यहा के एक श्रावक हरनाम ने सोलहकारण व्रतोद्यापन के समय भट्टारक सोमसेन कृत रामपुराण ग्र थ की प्रति इनके शिष्य शुभचन्द्र को भेंट दी थी, इसी तरह एक अन्य अवसर पर सवत् १७४५ मे श्रावकों ने मिल कर इनके शिष्य नाथूराम को सकलभूषण के उपदेश रत्न माला की प्रति भेंट की थी।

इनका एक शिष्य नेमिचन्द्र अच्छा विद्वान् था। उसने सवत् १७६९ मे हरिवशपुराण की रचना समाप्त की थी। इसकी ग्र थ प्रशस्ति मे भट्टारक जगत कीर्ति की प्रशसा मे कवि ने निम्न छन्द लिखा है—

भट्टारक सब उपरैं, जगतकीरती जगत जोति अपारतो।
कीरति चहु दिसि विस्तरी, पाच आचार पालै सुभ सारतौ।

प्रमत्त मैं जीतैं नही, चहु दिसि मैं ताकी आणतौ।
खिमा खडग स्यौ जीतिया, चोराणवै पटनायक माणतो ॥२०॥

पूर्व भट्टारको के समान इन्होने भी कितनी ही प्रतिष्ठाओ मे भाग लिया। सवत् १७४१ मे नरवर मे प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। इसी वर्ष तक्षकगढ (टोडारायसिह) मे भी प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ। सवत् १७४६ मे चादखेडी मे जो विशाल प्रतिष्ठा हुई उसका सञ्चालन इन्ही के द्वारा सम्पन्न हुआ था। इस प्रतिष्ठा समारोह मे हजारो मूर्तियो की प्रतिष्ठा हुई थी और आज वे राजस्थान के विभिन्न मन्दिरो मे उपलब्ध होती है। इस प्रकार सवत् १७७० तक भट्टारक जगतकीर्त्ति ने जो साहित्य एव सस्कृति की जो साधना की वह चिरस्मरणीय रहेगी।

अवशिष्ट संत

राजस्थान मे हमारे आलोच्य समय (सवत् १४५० से १७५० तक) मे सैकडो ही जैन सत हुए जिन्होने अपने महान् व्यक्तित्व द्वारा देश,समाज एव साहित्य की वडी भारी सेवायें की थी। मुस्लिम शासन काल मे भारत के प्रत्येक भू भाग पर युद्ध एव अशान्ति के बादल सदैव छाये रहते थे। शासन द्वारा यहा के साहित्य एव सस्कृति के विकास मे कोई रुचि नही ली जाती थी ऐसे सक्रमण काल मे इन सन्तो ने देश के जीवन को सदा ऊ चा उठाये रखा एव यहा की सस्कृति एव साहित्य को विनाश होने से बचाया ऐसे २० सन्तो का हम पहिले विस्तृत परिचय दे चुके हैं लेकिन अभी तो सैकडो एसे महान् सन्त है जिनकी सेवाओ का स्मरण करना वास्तव मे भारतीय सस्कृति को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना है। ऐसे ही कुछ सन्तो का सक्षिप्त परिचय यहा दिया जा रहा है—

---

१. मुनि महनन्दि

मुनि महनदि भ० वीरचन्द के शिष्य थे इनकी एक कृति बारक्खडी दोहा मिली है। इसका अपर नाम पाहुडदोहा भी है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सवत् १६०२ की सग्रहीत है जो चपावती (चाटसू) के पार्श्वनाथ चैत्यालय मे लिखी गई थी। प्रति शुद्ध एव सुपाठ्य है। लिपि के अनुसार रचना १५ वी शताब्दी की मालूम होती है। कवि की यद्यपि अभी तक एक ही कृति मिली है लेकिन वही उच्च कृति है। भाषा अपभ्र श प्रभावित है तथा काव्यगत गुणो से पूर्णत युक्त है।

कवि ने रचना मे के आदि अन्त भाग मे अपना निम्न प्रकार नामोल्लेख किया है—

बारह विउणा जिण णवमि किय वारह अक्खरकक्क।
महयदिण भवियायण हो, णिसुणहु थिरमण थक्क ॥२॥

भवदुक्खह निव्विणएण, वीरचन्द सिस्सेण।
भवियह पडिवोहण कया, दोहा कव्व मिसेण ॥३॥

बारहखडी मे य ष, श, ङ, ञ और ण इन वर्णों पर कोई दोहा नही है। इसमे ३३३ दोहा हैं जिनकी विभिन्न रूप से कवि ने निम्न प्रकार सख्या दी है।

एक्कु या रु ष शारदुइ ङ ण तिन्निवि मिल्लि।
चउवीस गल तिण्णिसय, विरइए दोहा वेल्लि ॥४॥

तेतीसह छह छडिया, विरइय सत्तावीस।
वारह गुणिया त्तिण्णिसय, हुअ दोहा चउवीस ॥५॥

सो दोहा अप्पाणयहु, दोहो जोण मुणेइ।
मुणि महयदिण भासियउ, सुणिवि ण चित्ति घरेइ ॥६॥

प्रारम्भ मे कवि ने अहिंसा की महत्ता वतलाते हुये लिखा है कि अहिंसा ही धर्म का सार है—

किजइ जिणवर भासियऊ, धम्मु अहिंसा सारु।
जिम छिजइ रे जीव तुहु, अवलीढउ ससारु ॥६॥

रचना वहुत सुन्दर है। इसे हम उपदेशात्मक, अध्यात्मिक एव नीति रसात्मक कह सकते हैं। कवि ने छोटे छोटे दोहो मे सुन्दर भावो को भरा है। वह कहता है कि जिस प्रकार दूध मे घी तिल से तेल तथा लकडी मे अग्नि रहती है उसी प्रकार शरीर मे आत्मा निवास करती है—

खीरह मज्झह जेम घिउ, तिलह मज्झि जिम तिलु।
कट्ठिहु वासणु जिम वसइ, तिम देहहि देहिल्लु ॥२२॥

कृति मे से कुछ चुने हुये दोहो को पाठको के अवलोकनार्थ दिये जा रहे हैं—

दमु दय सजमु णियमु तउ, आज मुवि किउ जेण।
तासु मरतह कवण भऊ, कहियउ महइंदेण ॥१७५॥

दाणु चउविहु जिणवरह, कहियउ सावय दिज्ज।
दय जीवह चउसघहवि, भोयणु ऊसह विज्ज ॥१७६॥

पीडहि काउ परीसहहिं, जइ ण वियभइ चित्तु।
मरणयालि असि आउसा, दिढ चित्तडइ धरनु ॥२१४॥

फिरइ फिरकहिं चक्कु जिम, गुण उणलद्धु म लोहु।
णरय तिरिक्खहिं जीवडउ, अमु चतउ तिय मोहु ॥२२५॥

बाल मरण मुणि परिहरहिं, पडिय मरणु मरेहिं ।
वारह जिण सासणि कहिय, अणु वेक्खउ सुमरेहि ।।२२६।।

× × × × ×

रूव गध रस फसडा, सद्द लिंग गुण हीण ।
अछइसी देहडि यसउ, घिउ जिम खीरह लीण ।।२७६।।

अन्तिम पद्य—

जो पढइ पढावइ समलइ, देविण दवि लिहावइ ।
महयदु भणइ सो नित्तुलउ, अक्खइ सोक्खु परावइ ।।३३३।।

इति दोहा पाहुड समाप्त ।।शुभ भवतु।।

---

२. भुवनकीर्ति

भुवनकीर्त्ति भ० सकलकीर्त्ति के शिष्य थे ।[1] सकलकीर्त्ति की मृत्यु के पश्चात् ये भट्टारक बने लेकिन ये भट्टारक किस सवत् मे बने इसका कोई उल्लेख नही मिलता है । भट्टारक सम्प्रदाय मे इन्हे सवत् १५०८ मे भट्टारक होना लिखा है ।[2] लेकिन अन्य भट्टारक पट्टावलियो[3] में सकलकीर्ति के पश्चात् धर्मकीर्त्ति एव विमलेन्द्र-कीर्त्ति के भट्टारक होने का उल्लेख आता हैं। इन्ही पट्टावलियो के अनुसार धर्मकीर्त्ति २४ वर्ष तथा विमलेन्द्रकीर्त्ति १८ वर्ष भट्टारक रहे । इस तरह सकलकीर्त्ति के ३३ वर्ष के पश्चात् भुवनकीर्त्ति को अर्थात् सवत् १५३२ मे भट्टारक होना चाहिए, लेकिन भुवनकीर्त्ति के पश्चात् होने वाले सभी विद्वानो एव भट्टारको ने उक्त दोनो भट्टारको का कही भी उल्लेख नही किया इसलिये यही मान लिया जाना

---

१ आदि शिष्य आचारि जूहि गुरि दीखियाभूतलिभुवनकीर्त्ति—
सकलकीर्त्ति रास

२ देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या १५८

३ त्यारपुठे सकलकीर्त्ति ने पाटे की धर्मकीर्ति आचार्य हुआ ते सागवाडा हता तेणे श्री सागवाडो जुने देहरे आदिनाथ नो प्रासाद करावीने । पाछे नोगामो ने सघ पर स्थापना करि है । पाछे सागवाडे जाई ने पिता ने पुत्रकने प्रतिष्ठा करावी पौतोपुर मत्र दीधो ते धर्मकीर्त्ति ये वर्ष २४ पाट भोग्यो पछे परोक्ष थया । पुठे पोताने ची करे ।

चाहिए कि इन भट्टारकों को भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा के भट्टारक स्वीकार नहीं किया गया और भुवनकीर्ति को ही सकलकीर्ति का प्रथम शिष्य एवं प्रथम भट्टारक घोषित कर दिया गया। इन्हें भट्टारक पद पर संवत् १४९९ के पश्चात् किसी भी समय अभिषिक्त कर दिया होगा।

भुवनकीर्ति को जावरी ग्राम में भट्टारक पद पर सुशोभित किया गया। इस कार्य में संघवी सोमदास का प्रमुख हाथ था।

"पाछे गाम आवीने संघवी सोमजी ने समस्त संघ मिली नै भट्टारक भुवनकीर्ति थाप्या"

भट्टारक पट्टावलि डूंगरपुर शास्त्र भंडार।

× + × ×

"पछे समस्त श्री संघ मली ने जावरी नगर मध्ये संघवी सोमदास भट्टारक पदवी भुवनकीर्ति स्वामी थाप्या।

भट्टारक पट्टावलि ऋषभदेव शास्त्र भंडार।

जूना देहरानें सम्मुखनि सही करावी। पछे धर्मकीर्ति नें पाटें नोगामाने संघ श्री विमलेन्द्रकीर्ति स्थापना करी तेणे वर्ष १२ पाट भोगव्यो।

भट्टारक पट्टावली-डूंगरपुर शास्त्र भंडार

+ + + +

स्वामी सकलकीर्ति ने पाटे धर्मकीर्त्ति स्वामी नौतनपुर संघे थाप्या। सागवाडा नाहाता अ गारी आ कहावे हेता प्रथम प्रथम प्रासाद करावीने श्री आसनायनो। पीछे दीक्षा लीधो हती ते वर्ष २४ पाट भोगव्यो पोताने हाथी प्रतिष्टाचार करि प्रासादानी पछे अंत समे समाधीमरण करता देहरा सामीनसि करावी दी करे करानी सागवाडे। पछे स्वामी धर्मकीर्ति ने पाटे नौतनपुर ने संघ समस्त मिली ने वीमलेन्द्रकीर्ति आचार्य पद थाप्पा ते गोलालारनी न्यात हती। ते स्वामी वीमलेन्द्रकीर्त्ति दक्षण पोहतां कुंदणपुर प्रतिष्ठा करावा सारु ते वीमलेन्द्रकीर्त्ति स्वामीवक्षण जे परो जे परोक्ष थपा। स्वामी प्रष्टा प्रसादा बवनी ४ तया ५ वागड मध्ये करि वर्ष १२ पाट भोगथ्यो। एतला लगेण आचारय पाट चाल्या।

भ० पट्टावली भ० यश.कीर्त्ति शास्त्र भंडार (ऋषभदेव)

व्यक्तित्व —

सन भुवनकीर्त्ति विविध शास्त्रो के ज्ञाता एव प्राकृत, सस्कृत तथा राजस्थानी के प्रबल विद्वान थे। शास्त्रार्थ करने मे वे अति चतुर थे। वे सम्पूर्ण कलाओ मे पारगत तथा पूर्ण अहिसक थे। जिधर भी आपका विहार होता था, वहा आपका अपूर्व स्वागत होता। ब्रह्म जिनदास के शब्दो में इनकी कीर्त्ति विश्व विख्यात हो गयी थी। वे अनेक साधुओ के अधिपति एव मुक्ति–मार्ग उपदेष्टा थे। विद्वानो से पूजनीय एव पूर्ण सयमी थे। वे अनेक काव्यो के रचयिता एव उत्कृष्ट गुणो के मदिर थे।[1]

ब्रह्मजिनदास ने अपने रामचरित्र काव्य मे इन्हीं भट्टारक भुवनकीर्त्ति का गुणानुवाद करते हुये लिखा है कि वे अगाध ज्ञान के वेत्ता तथा कामदेव को चूर्ण करने वाले थे। ससार पाश को त्यागने वाले एव स्वच्छ गुणो के धारक थे। अनेक साधुओ के पूजनीय होने से वे यतिराज कहलाते थे।[2]

भुवनकीर्त्ति के बाद होने वाले सभी भट्टारको ने इनका विविध रूप से

---

१ जयति भुवनकीर्त्ति विश्वविख्यातकीर्त्ति

बहुयतिजनयुक्तो, मुक्तिमार्गप्रणेता।
कुसमशरविजेता, भव्यसन्मागनेता ॥३॥

विवुधजननिषेव्य सत्कृतानेककाव्य।
परमगुणनिवास, सद्कृताली विलास

विजितकरणमार प्राप्तससारपार.
सभवतु गतदोष शर्म्मणे वा सतोष ॥४॥

जम्बूस्वामी चरित्र (ब्र० जिनदास)

२ पट्टे तदीये गुणावान् मनीषी क्षमानिधाने भुवनादिकीर्त्ति।
जीयाच्चिर भव्यसमूहवद्यो नानायतिव्रातनिषेवणीय ॥१८५॥

जगति भुवनकीर्तिभूर्तलख्यातकीर्त्ति,
श्रुतजलनिधिवेत्ता अनगमानप्रभेता।

विमलगुणनिवास: छिन्नससारपाश
सजयति यतिराज साधुराजि समाज. ॥१८६॥

रामचरित्र (ब्र० जिनदास)

गुणानुवाद गाया है। इनके व्यक्तित्व एवं पांडित्य से सभी प्रभावित थे। भट्टारक शुभचन्द्र ने इनका निम्न शब्दों में स्मरण किया है।

> तत्पट्टधारी भुवनादिकीर्ति, जीयाज्जिन धर्मधुरीणदक्ष ।
>
> चन्द्रप्रभचरित्र

> शास्त्रार्थ ... तस्य पट्टे भट्टारकभुवनादिकीर्ति ।
>
> पार्श्वनाथकाव्यपञ्जिका

भट्टारक सकलभूषण ने अपनी उपदेशरत्नमाला में आपका निम्न शब्दों में उल्लेख किया है।

> भुवनकीर्तिगुरुस्तस्य उज्जितो भुवनभासनशासन ।
> अजनि तीव्रतपश्चरणक्षमो, विविधधर्मसमृद्धिसुदेशक ॥३॥

भट्टारक रत्नचन्द्र ने भुवनकीर्ति को सकलकीर्ति की आम्नाय का सूर्य मानते हुये उन्हें महा तपस्वी एवं वनवासी शब्द से सम्बोधित किया है —

> गुरुभुवनकीर्त्याख्य भास्वत्पट्टोदयभानुमान् ।
> जातवान् जनितानन्दा वनवासी महातप ॥४॥

इसी तरह ब्र० ज्ञानकीर्ति ने अपने यशोधर चरित्र में इनकी कठोर तपस्या के कारण उत्कृष्ट कीर्ति वाले साधु के रूप में स्तवन किया है—

> पट्टे तदीये भुवनादिकीर्त्ति
> तपो वितातापनुकीर्तिमूर्तिन्

भुवनकीर्त्ति पहिले मुनि रहे और भट्टारक सकलकीर्त्ति की मृत्यु के पश्चात् किसी समय भट्टारक बने। भट्टारक बनने के पश्चात् इनके पांडित्य एवं तपस्या की चर्चा चारों ओर फैल गयी। इन्होंने अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य जनता को सास्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से जाग्रत करने का बनाया और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। इन्होंने अपने शिष्यों को उत्कृष्ट विद्वान एवं साहित्य-सेवी के रूप में तैयार किया।

भ० भुवनकीर्त्ति की अब तक जितनी रचनायें उपलब्ध हुई हैं उनमें जीवन्धररास, जम्बूस्वामीरास, अंजनाचरित्र आपकी उत्तम रचनायें हैं। साहित्य रचना के अतिरिक्त इन्होंने कितने ही स्थानों पर प्रतिष्ठा विधान सम्पन्न कराये तथा

१ सवत् १५११ में इनके उपदेश से हूबड जातीय श्रावक करमण एव उसके परिवार ने चौबीसी की प्रतिमा (मूल नायक प्रतिमा शातिनाथ स्वामी) स्थापित की थी।

२ सवत् १५१३ मे इनकी देखरेख मे चतुर्विशति प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई गयी।

३ सवत् १५१५ मे गधारपुर में प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई तथा फिर इन्ही के उपदेश से जूनागढ मे एक शिखर वाले मदिर का निर्माण करवाया गया और उसमे धातु पीतल) की आदिनाथ की प्रतिमा की स्थापना की गई। इस उत्सव मे सौराष्ट्र के छोटे वडे राजा महाराजा भी सम्मिलित हुये थे। भ० भुवनकीर्ति इसमे मुख्य अतिथि थे।

४ सवत् १५२५ मे नागद्रहा ज्ञातीय श्रावक पूजा एव उसके परिवार वालो ने इन्ही के उपदेश से आदिनाथ स्वामी की धातु की प्रतिमा स्थापित की।

---

१ सवत् १५११ वर्षे वैशाख वुदी ५ तिथौ श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुदकुदाचार्यान्वये भ० सकलकीर्त्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति उपदेशात् हूबड जातीय श्री करमण भार्या सूल्ही सुत हरपाल भार्या खाडी सुत आसाधर एते श्री शातिनाथ नित्य प्रणमति।

२ सवत् १५१३ वर्षे वैशाख वुदि ४ गुरौ श्री मूलसघे भ० सकलकीर्ति तत्पट्टे भुवनकीर्त्ति—देदड भार्या लाडी सुत जगपाल भार्या सुत जाइया जिणदास एते श्री चतुर्विशतिका नित्य प्रणमति। शुभभवतु।

३ प्रतख्य पनर पनरोत्तरिइ गुरु श्री गधारपुरी प्रतिष्ठा सघवइ रागरिए ॥१९॥
जूनोगढ गुरु उपदेसइ सिखरबध अतिसव।
सखि ठाकर अदराज्यस्सघ राजिप्रासाद माडीउए ॥२०॥
मडलिक राइ वहू मानीउ देश व देशी ज व्यापीसु।
पतीलमइ आदिनाथ थिर थापीया ए ॥२१॥

सकलकीर्त्तिनुरास

४ सवत् १५२५ वर्षे ज्येष्ठ वदी ८ शुक्रे श्रीमूलसघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये श्री सकलकीर्त्तिदेवा तत् पट्टे भ० भुवनकीर्त्ति गुरूपदेशात् नागद्रहा ज्ञातीयश्रेष्ठि पूजा भार्या वाछू सुत तोल्हा भार्या वारु सुत काला, तोल्हा सुत वेला-एते श्री आदिनाथ नित्य प्रणमति।

५ सवत् १५२७ वैशाख वुदि ११ को आपने एक और प्रतिष्ठा करवाई। इस अवसर पर हूवड जातीय जयसिंह आदि श्रावको ने धातु की रत्नत्रय चौवीसी की प्रतिष्ठा करवाई।

३. भट्टारक जिनचन्द्र

भट्टारक जिनचन्द्र १६ वी शताब्दी के प्रसिद्ध भट्टारक एव जैन सन्त थे। भारत की राजधानी देहली मे भट्टारको की प्रतिष्ठा वढाने मे इनका प्रमुख हाथ रहा था। यद्यपि देहली मे ही इनकी भट्टारक गादी थी लेकिन वहा से ही ये सारे राजस्थान का भ्रमण करते और साहित्य एव सस्कृति का प्रचार करते। इनके गुरू का नाम शुभचन्द्र था और उन्ही के स्वर्गवास के पश्चात् सवत् १५०७ की जेष्ठ कृष्णा ५ को इनका वडी धूम-धाम से पट्टाभिषेक हुआ। एक भट्टारक पट्टावली के अनुसार इन्होने १२ वर्ष की आयु मे ही घर वार छोड दिया और भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य वन गये। १५ वर्ष तक इन्होंने शास्त्रो का खूव अध्ययन किया। भाषण देने एव वाद विवाद करने की कला सीखी तथा २७ वें वर्ष मे इन्हे भट्टारक पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। जिनचन्द्र ६४ वर्ष तक इस महत्वपूर्ण पद पर आसीन रहे। इतने लम्बे समय तक भट्टारक पद पर रहना बहुत कम सन्तो को मिल सका है। ये जाति से वघेरवाल जाति के श्रावक थे।

जिनचन्द्र राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पजाव एव देहली प्रदेश मे खूव विहार करते। जनता को वास्तविक धर्म का उपदेश देते। प्राचीन ग्रन्थो की नयी नयी प्रतिया लिखवा कर मन्दिरो मे विराजमान करवाते, नये २ ग्रथो का स्वय निर्माण करते तथा दूसरो को इस ओर प्रोत्साहित करते। पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाते तथा स्थान स्थान पर नयी २ प्रतिष्ठायें करवा कर जैन धर्म एव सस्कृति का प्रचार करते। आज राजस्थान के प्रत्येक दि० जैन मन्दिर मे इनके द्वारा प्रतिष्ठित एक दो मूर्त्तिया अवश्य ही मिलेंगी। सवत् १५४८ मे जीवराज पापडीवाल ने जो वडी भारी प्रतिष्ठा करवायी थी वह सब इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई थी। उस प्रतिष्ठा मे सैंकडो ही नही हजारो मूर्त्तिया प्रतिष्ठापित करवा कर राजस्थान के अधिकाश मन्दिरो मे विराजमान की गयी थी।

---

५ सवत् १५२७ वर्षे वैशाख वदी ११ बुधे श्री मूलसघे भट्टारक श्री भुवनकीर्त्ति उपदेशात् हूंवड व्र० जयसिग भार्या भूरी सुत धर्मा भार्या हीरु भ्राता वीरा भार्या मरगदी सुत माड्या भूधर खीमा एते श्री रत्नत्रयचतुर्विशतिका नित्य प्रणमति।

आवा (टोक, राजस्थान) मे एक मील पश्चिम की ओर एक छोटी सी पहाडी पर नासिया हैं जिसमे भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एव प्रभाचन्द्र की निषेधिकायें स्थापित की हुई हैं ये तीनो निषेधिकाए सवत् १५९३ ज्येष्ठ सुदी ३ सोमवार के दिन भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य मडलाचार्य धर्मचन्द्र ने साह कालू एव इसके चार पुत्र एव पौत्रो के द्वारा स्थापित करायी थी । भट्टारक जिनचन्द्र की निषेधिका की ऊचाई एव चौडाई १४½ फीट ×९ इच है ।

इसी समय आवा मे एक वडी भारी प्रतिष्ठा भी हुई थी जिसका ऐतिहासिक लेख वही के एक शातिनाथ के मन्दिर में लगा हुआ है । लेख सस्कृत मे है और उसमें भ० जिनचन्द का निम्न शब्दो मे यशोगान किया गया है—

तत्पट्टस्थपरो धीमान् जिनचन्द्र सुतत्ववित् ।
अभूतो ऽस्मिन् च विख्यातो ध्यानार्थी दग्धकर्मक ॥

साहित्य सेवा—

जिनचन्द्र का प्राचीन ग्रथो का नवीनीकरण की ओर विशेष ध्यान था इसलिये इनके द्वारा लिखवायी गयी कितनी ही हस्तलिखित प्रतिया राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होती हैं । सवत् १५१२ की अषाढ कृष्ण १२ को नेमिनाथ चरित की एक प्रति लिखी गयी थी जिसे इन्हें घोघा वन्दगाह मे नयनन्दि मुनि ने समर्पित की थी ।[1] सवत् १५१५ मे नैणवा नगर मे इनके शिष्य अनन्तकीर्त्ति द्वारा नरसेनदेव की सिद्धचक्र कथा (अपभ्र श) की प्रतिलिपि श्रावक नाराइण के पठनार्थ करवायी । इसी तरह सवत् १५२१ में ग्वालियर मे पउमचरिउ की प्रतिलिपि करवा कर नेत्रनन्दि मुनि को अर्पण की गयी ।[2] सवत् १५५८ की श्रावण शुल्क १२ को इनकी आम्नाय मे ग्वालियर मे महाराजा मानसिंह के शासन काल मे नागकुमार चरित की प्रति लिखवायी गयी ।

मूलाचार की एक लेखक प्रशस्ति मे भट्टारक जिनचन्द्र की निम्न शब्दों मे प्रशसा की गयी है—

तदीयपट्टाबरभानुमाली क्षमादिनानागुणरत्नशाली ।
भट्टारकश्रीजिनचन्द्रनामा सैद्धान्तिकाना भुवि योस्ति सीमा ॥

इसकी प्रति को सवत् १५१६ मे झु झुनु (राजस्थान) में साह पार्श्व के पुत्रो

१ देखिये भट्टारक पट्टावली पृष्ठ सख्या १०८

२. वहीं

ने श्रुतपचमी उद्यापन पर लिखवायी थी। स १५१७ मे झुझुणु मे ही तिलोयपण्णत्ति की प्रति लिखवायी गयी थी। प० मेधावी इनका एक प्रमुख शिष्य था जो साहित्य रचना मे विशेप रुचि रखता था। इन्होने नागौर मे धर्मसग्रहश्रावकाचार की सवत् १५४१ मे रचना समाप्त की थी इसकी प्रशस्ति मे विद्वान् लेखक ने जिनचद्र की निम्न शब्दो मे स्तुति की है—

> तस्मान्नीरनिधेरिर्वेंदुरभवच्छ्रीमज्जिनेंद्रगणी ।
> स्याद्वादावरमडले कृतगतिर्दिगवाससा मडन ॥
>
> यो व्याख्यानमरीचिभि कुवलये प्रल्हादन चक्रिवान् ।
> सद्वृत्त सकलकलकविकल पट्तर्कनिष्णातधी ॥१२॥

स्वय भट्टारक जिनचन्द्र की अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण रचना उपलब्ध नही हो सकी है लेकिन देहली, हिसार, आगरा आदि के शास्त्र भण्डारो की खोज के पश्चात् सभवत कोई इनकी वडी रचना भी उपलब्ध हो सके। अव तक इनकी जो दो रचनाये उपलब्ध हुई हैं उनके नाम है सिद्धान्तसार और जिनचतुर्विशतिस्तोत्र। सिद्धान्तसार एक प्राकृत भापा का ग्रन्थ है और उसमे जिनचन्द्र के नाम से निम्न प्रकार उल्लेख हुआ है—

> पवयणपमाणलक्खण छदालकार रहियहियएण ।
> जिणइ देण पउत्त इणमागमभत्तिजुत्तेण ॥७८॥

(माणिकचन्द्र ग्रथमाला बम्बई)

जिनचतुर्विशति स्तोत्र की एक प्रति जयपुर के विजयराम पाड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है। रचना सस्कृत मे है और उसमे चौवीस तीर्थंकरो की स्तुति की गयी है।

साहित्य प्रचार के अतिरिक्त इन्होंने प्राचीन मन्दिरो का खूब जीर्णोद्धार करवाया एव नवीन प्रतिमाओ की प्रतिष्ठाये करवा कर उन्हे मन्दिरो मे विराजमान किया गया। जिनचन्द्र के समय मे भारत पर मुसलमानो का राज्य था इसलिये वे प्राय मन्दिरो एव मूर्त्तियो को तोडते रहते थे। किन्तु भट्टारक जिनचन्द्र प्रतिवर्ष नयी नयी प्रतिष्ठायें करवाते और नये नये मन्दिरो का निर्माण कराने के लिये श्रावको को प्रोत्साहित करते रहते। सवत् १५०९ मे सभवत उन्होने भट्टारक वनने के पश्चात् प्रथम वार धौपे ग्राम मे शान्तिनाथ की मूर्त्ति स्थापित की थी। स १५१७ मगसिर शुल्क १० को उन्होने चौवीसी की प्रतिमा स्थापित की। इसी तरह १५२३ मे भी चौवीसी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करके स्थापना की गयी। सवत् १५४२,

१५४३, १५४८ आदि वर्षों मे प्रतिष्ठापित की हुई कितनी ही मूर्त्तिया उपलब्ध होती हैं। सवत् १५४८ मे जो इनकी द्वारा शहर मुडासा (राजस्थान) मे प्रतिष्ठा की गयी थी। उसमे सैकडो ही नही किन्तु हजारो की सख्या मे मूर्त्तिया प्रतिष्ठापित की गयी थी। यह प्रतिष्ठा जीवराज पापडीवाल द्वारा करवायी गयी थी। भट्टारक जिनचन्द्र प्रतिष्ठाचार्य थे।

भ० जिनचन्द्र के शिष्यो मे रत्नकीर्त्ति, सिंहकीर्त्ति, प्रभाचन्द्र, जगतकीर्त्ति, चारुकीर्त्ति, जयकीर्त्ति, भीमसेन, मेघावी के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। रत्नकीर्त्ति ने सवत् १५७२ मे नागौर (राजस्थान) मे भट्टारक गादी स्थापित की तथा सिंहकीर्त्ति ने अटेर मे स्वतत्र भट्टारक गादी की स्थापना की।

इस प्रकार भट्टारक जिनचन्द्र ने अपने समय मे साहित्य एव पुरातत्व की जो सेवा की थी वह सदा ही स्वर्णाक्षरो मे लिपिबद्ध रहेगी।

४. भट्टारक प्रभाचन्द्र

प्रभाचन्द्र के नाम से चार प्रसिद्ध भट्टारक हुये। प्रथम भट्टारक प्रभाचन्द्र बालचन्द के शिष्य थे जो सेनगण के भट्टारक थे तथा जो १२ वी शताब्दी मे हुये थे। दूसरे प्रभाचन्द्र भट्टारक रत्नकीर्त्ति के शिष्य थे जो गुजरात की बलात्कारगण-उत्तर शाखा के भट्टारक बने थे। ये चमत्कारिक भट्टारक थे और एक बार इन्होने अमावस्या को पूर्णिमा कर दिखायी थी। देहली मे राघो चेतन से जो विवाद हुआ था उसमे इन्होने विजय प्राप्त की थी। अपनी मन्त्र शक्ति के कारण ये पालकी सहित आकाश मे उड गये थे। इनकी मन्त्र शक्ति के प्रभाव से बादशाह फिरोजशाह की मलिका इतनी अधिक प्रभावित हुई कि उन्हे उसको राजमहल मे जाकर दर्शन देने पडे। तीसरे प्रभाचन्द्र भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य थे और चौथे प्रभाचन्द्र भ० ज्ञानभूषण के शिष्य थे। यहा भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र के जीवन पर प्रकाश डाला जावेगा।

एक भट्टारक पट्टावली के अनुसार प्रभाचन्द्र खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे और वैद इनका गोत्र था। ये १५ वर्ष तक गृहस्थ रहे। एक बार भ० जिनचन्द्र विहार कर रहे थे कि उनकी दृष्टि प्रभाचन्द्र पर पडी। इनकी अपूर्व सूझ-बूझ एव गम्भीर ज्ञान को देख कर जिनचन्द ने इन्हे अपना शिष्य बना लिया। यह कोई सवत् १५५१ की घटना होगी। २० वर्ष तक इन्हे अपने पास रख कर खूब विद्याध्यन कराया और अपने से भी अधिक शास्त्रो का ज्ञाता तथा वादविवाद मे पटु बना दिया। सवत् १५७१ की फाल्गुण कृष्णा २ को इनका दिल्ली मे धूमधाम से पट्टाभिषेक हुआ। उस समय ये पूर्ण युवा थे। और अपनी अलौकिक वाक् शक्ति

एव साधु स्वभाव से वरबस हृदय को स्वत: ही आकृष्ट कर लेते थे। एक भट्टारक पट्टावलि के अनुसार ये २५ वर्ष तक भट्टारक रहे। श्री वी० पी० जोहरापुरकर ने इन्हे केवल ९ वर्ष तक भट्टारक पद पर रहना लिखा है।[1] भट्टारक वनने के पश्चात् इन्होने अपनी गद्दी को दिल्ली से चित्तौड (राजस्थान) मे स्थानान्तरित कर लिया और इस प्रकार से भट्टारक सकलकीर्त्ति की शिष्य परम्परा के भट्टारको के सामने कार्यक्षेत्र मे जा डटे। इन्होने अपने समय मे ही मडलाचार्यो की नियुक्ति की इनमें धर्मचन्द को प्रथम मडलाचार्य वनने का सौभाग्य मिला। सवत् १५९३ मे मडलाचार्य धर्मचन्द द्वारा प्रतिष्ठित कितनी ही मूर्त्तिया मिलती है। इन्होने ने आवा नगर मे अपने तीन गुरुओ की निषेधिकायें स्थापित की जिससे यह भी ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्र का इसके पूर्व ही स्वर्गवास हो गया था।

प्रभाचन्द्र अपने समय के प्रसिद्ध एव समर्थ भट्टारक थे। एक लेख प्रशस्ति मे इनके नाम के पूर्व पूर्वाचलदिनमणि, षड्तर्कतार्किकचूडामणि, वादिमदकुद्दल, अवुध–प्रतिवोधक आदि विशेषण लगाये हैं जिससे इनकी विद्वत्ता एव तर्कशक्ति का परिज्ञान होता है।

साहित्य सेवा

प्रभाचन्द्र ने सारे राजस्थान मे विहार किया। शास्त्र–भण्डारो का अवलोकन किया और उनमे नयी-नयी प्रतिया लिखवा कर प्रतिष्ठापित की। राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे इनके समय मे लिखी हुई सैकडो प्रतिया सग्रहीत है और इनका यशोगान गाती है। सवत् १५७५ की मागशीर्ष शुक्ला ४ को वाई पावती ने पुष्पदन्त कृत जसहर चरिउ की प्रति लिखवायी और भट्टारक प्रभाचन्द्र को भेंट स्वरूप दी।[2]

सवत् १५७९ के मगसिर मास में इनका टोक नगर में विहार हुआ। चारो ओर आनन्द एव उत्साह का वातावरण छा गया। इसी विहार की स्मृति मे पण्डित नरसेनकृत "सिद्धचक्रकथा" की प्रतिलिपि खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न टोंग्या गोत्र वाले साह धरमसी एव उनकी भार्या खातू ने अपने पुत्र पौत्रादि सहित करवायी और उसे वाई पदमसिरी को स्वाध्याय के लिये भेंट दी।

सवत् १५८० मे सिकन्दरावाद नगर मे इन्ही के एक शिष्य ब्र० वीडा को खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न साह दोदू ने पुष्पदन्त कृत जसहर चरिउ की प्रतिलिपि लिखवा कर भेंट की। उस समय भारत पर वादशाह इब्राहीम लोदी का शासन

---

१ देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ ११०.

२. देखिये लेखक द्वारा सम्पादित प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ सख्या १८३.

था। उसके दो वर्ष पश्चात् सवत् १५८२ मे घटियालीपुर मे इन्ही के आम्नाय के एक मुनि हेमकीर्त्ति को श्रीचन्दकृत रत्नकरण्ड की प्रति भेंट की गयी। भेंट करने वाली थी बाई मोली। इसी वर्ष जब इनका चपावती (चाटसू) नगर मे विहार हुआ तो वहा के साह गोत्रीय श्रावको द्वारा सम्यक्त्व–कौमुदी की एक प्रति ब्रह्म बूचा (बूचराज) को भेंट दी गयी। ब्रह्म बूचराज भ० प्रभाचन्द के शिष्य थे और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। सवत् १५८३ की अषाढ शुक्ला तृतीया के दिन इन्ही के प्रमुख शिष्य मडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से महाकवि श्री यश कीर्त्ति विरचित 'चन्दप्पहचरित' की प्रतिलिपि की गयी जो जयपुर के आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत हैं।

सवत् १५८४ मे महाकवि धनपाल कृत वाहुबलि चरित की बघेरवाल जाति मे उत्पन्न साह माधो द्वारा प्रतिलिपि करवायी गयी और प्रभाचन्द्र के शिष्य ब्र० रत्नकीर्त्ति को स्वाध्याय के लिये भेंट दी गयी। इस प्रकार भ० प्रभाचन्द्र ने राजस्थान मे स्थान–स्थान मे विहार करके अनेक जीर्ण ग्रन्थो का उद्धार किया और उनकी प्रतिया करवा कर शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीन की। वास्तव मे यह उनकी सच्ची साहित्य सेवा थी जिसके कारण सैकडो ग्रन्थो की प्रतिया सुरक्षित रह सकी अन्यथा न जाने कब ही काल के गाल मे समा जाती।

प्रतिष्ठा कार्य

भट्टारक प्रभाचन्द्र ने प्रतिष्ठा कार्यों में भी पूरी दिलचस्पी ली। भट्टारक गादी पर बैठने के पश्चात् कितनी ही प्रतिष्ठाओ का नेतृत्व किया एव जनता को मन्दिर निर्माण की ओर आकृष्ट किया। सवत् १५७१ की ज्येष्ठ शुक्ला २ को षोडशकारण यन्त्र एव दशलक्षण यन्त्र की स्थापना की। इसके दो वर्ष पश्चात् सवत् १५७३ की फाल्गुन कृष्णा ३ को एक दशलक्षण यन्त्र स्थापित किया। सवत् १५७८ की फालगुण सुदी ९ के दिन तीन चौवीसी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी और इसी तरह सवत् १५८३ मे भी चौबीसी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई। राजस्थान के कितने ही मन्दिरो मे इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्तिया मिलती हैं।

सवत् १५९३ में मडलाचार्य धर्मचन्द्र ने आवा नगर मे होने वाले बडे प्रतिष्ठा महोत्सव का नेतृत्व किया था उसमे शान्तिनाथ स्वामी की एक विशाल एव मनोज्ञ मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की गयी थी। चार फीट ऊची एव ३॥ फीट चौडी श्वेत पाषाण की इतनी मनोज्ञ मूर्त्ति इने गिने स्थानों मे ही मिलती हैं। इसी समय के एक लेख मे धर्मचन्द्र ने प्रभाचन्द्र का निम्न शब्दों मे स्मरण किया है—

तत्पट्टस्थ श्रुताधारी प्रभाचन्द्र श्रियानिधि ।
दीक्षितो योलसत्कीर्त्ति प्रचंड. पंडिताग्रणी ।

प्रभाचन्द्र ने राजस्थान मे साहित्य तथा पुरातत्व के प्रति जो जन साधारण मे आकर्षण पैदा किया था वह इतिहास मे सदा चिरस्मरणीय रहेगा । ऐसे सन्त को शतश. प्रणाम ।

५. ब्र० गुणकीर्त्ति

गुणकीर्त्ति ब्रह्म जिनदास के शिष्य थे । ये स्वय भी अच्छे विद्वान् थे और ग्र थ रचना मे रुचि लिया करते थे । अभी तक इनकी रामसीतारास की नाम एक राजस्थानी कृति उपलब्ध हुई है जिनके अध्ययन के पश्चात् इनकी विद्वत्ता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । रास का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

श्री ब्रह्मचार जिणदास तु, परसाद तेह तणोए ।
मन वांछित फल होइ तु, बोलीइ किस्यु घणुए ॥३६॥

गुणकीरति कृत रास तु, विस्तारु मनि रलीए ।
बाई धनश्री ज्ञानदास नु, पुण्यमती निरमलीए ॥३७॥

गावउ रली रमि रास तु, पावउ रिद्धि वृद्धिए ।
मन वाछित फल होइ तु, सपजि नव निधिए ॥३८॥

'रामसीतारास' एक प्रबन्ध काव्य है जिसमे काव्यगत सभी गुण मिलते है । यह रास अपने समय मे काफी लोकप्रिय रहा था इसलिये इसकी कितनी ही प्रतिया राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होती है । ब्रह्म जिनदास की रचनाओ की समकक्ष की यह रचना निश्चय हो राजस्थानी साहित्य के इतिहास मे एक अमूल्य निधि है ।

६. आचार्य जिनसेन

आचार्य जिनसेन भ० यश कीर्त्ति के शिष्य थे । इनकी अभी एक कृति नेमिनाथ रास मिली है जिसे इन्होने सवत् १५५८ मे जवाछ नगर मे समाप्त की थी । उस नगर मे १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चैत्यालय था उसी पावन स्थान पर रास की रचना समाप्त हुई थी ।

नेमिनाथ रास मे भगवान नेमिनाथ के जीवन का ९३ छन्दो मे वर्णन किया गया है । जन्म, बरात, विवाह ककण को तोडकर वैराग्य लेने की घटना, कैवल्य प्राप्ति

एव निर्वाण इन सभी घटनाओ का कवि ने सक्षिप्त परिचय दिया है। रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव झलकता है।

रास एक प्रबन्ध काव्य है लेकिन इसमें काव्यत्व के इतने दर्शन नही होते जितने जीवन की घटनाओ के होते हैं, इसलिये इसे कथा कृति का नाम भी दिया जा सकता है। इसकी एक प्रति जयपुर के दि० जैन बडा मदिर तेहरपथी के शास्त्र भडार में सग्रहीत है। प्रति मे १०½"×४½" आकार वाले ११ पत्र हैं। यह प्रति सवत् १६१३ पौष सुदि १५ की लिखी हुई है।

ग्र थ का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

सारद सामिणि मागु माने, तुझ चलणे चित लागू ध्याने।
अविरल अक्षर आलु दाने, मुझ मूरख मनि अविशात रे।

गाउ राजा रलीयामणु रे, यादवना कुल मडणसार रे।
नामि नेमीश्वर जाणि ज्यो रे, तसु गुण पुहुवि न लाभि पार रे।

राजमती वर रुयडू रे, नवहू भवतर मगीय भू तरे।
दशमि दुरधर तप लीउ रे, आठ कर्म चउमी आणु अ त रे॥

अन्तिम भाग—

श्री यशकिरति सूरीनि सूरीश्वर कहीइ, महीपलि महिमा पार न लही रे।
तात रूपवर वरसि नित वाणी, सरस सकोमल अमीय सयाणी रे।

तास चलणे चित लाइउ रे, गाइउ राइ अपूरव रास रे।
जिनसेन युगति करी दे, तेह ना वयण तणउ वली वास रे॥९१॥

जा लगि जलनिधि नवसिनी रे, जा लगि अचल मेरि गिरि घी रे।
जा गयण गणि चदनि सूर, ता लगि रास रहू भर करि रे।

प्रगति सहित यादव तणु रे, भाव सहित भणसि नर नारि रे।
तेहनि प्रणय होसि घणो रे, पाप तणु करसि परिहार रे॥९२॥

चद्र वाण सवच्छर कीजि, पचाणु पुण्य पासि दीजि।
माघ सुदि पचमी भणीजि, गुरुवारि सिद्ध योग ठवीजिरे।

जावछ नयर जगि जाणीइ रे, तीर्थंकर वली कहींइ सार रे।
शातिनाथ तिहा सोलमु रे, कस्यु राम तेह भवण मझार रे॥९३॥

७. ब्रह्म जीवन्धर

ब्रह्म जीवंधर भ० सोमकीर्ति के प्रशिष्य एवं भ० यशःकीर्ति के शिष्य थे। सोमकीर्ति का परिचय पूर्व पृष्ठो मे दिया जा चुका है। इसके अनुसार ब्र० जीवंधर का समय १६ वी शताब्दि होना चाहिए। अभी तक इनकी एक 'गुणठाणा वेलि' कृति ही प्राप्त हो सकी है अन्य रचनाओ की खोज की अत्यधिक आवश्यकता है। गुणठाणा वेलि मे २८ छन्द है जिसका अन्तिम चरण निम्न प्रकार है—

चौदि गुणठाणा सुण्या जे भण्या श्रीजिनराइ जी,
सुरनर विद्याधर नमा पूजीय वदीय पाय जी।

पाय पूजी मनहर जी भरत राजा सचर्‌या,
अयोध्यापुरी राज करवा सयल सज्जन परवर्‌या।

विद्या गणवर उदय भूधर नित्य प्रकटन भास्कर,
भट्टारक यशकीरति सेवक भणिय ब्रह्म जीवधर ॥२२॥

वेलि की भाषा राजस्थानी है तथा इसकी एक प्रति महावीर भवन जयपुर के सग्रह मे है।

८. ब्रह्मधर्म रुचि

भ० लक्ष्मीचन्द्र की परम्परा मे दो अभयचन्द्र भट्टारक हुए। एक अभयचन्द्र (स० १५४८) अभयनन्दि के गुरु थे तथा दूसरे अभयचन्द्र भ० कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। दूसरे अभयचन्द्र का पूर्व पृष्ठो मे परिचय दिया जा चुका है किन्तु ब्रह्म धर्मरुचि प्रथम अभयचन्द्र के शिष्य थे। जिनका समय १६ वी शताब्दि का दूसरा चरण था। इनकी अब तक ६ कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं जिनमे सुकुमालस्वामीनो रास'[1] सबसे बडी रचना है। इसमे विभिन्न छन्दो में सुकुमाल स्वामी का चरित्र वर्णित है। यह एक प्रबन्ध काव्य है। यद्यपि काव्य सर्गों मे विभक्त नही है लेकिन विभिन्न भास छन्दो मे विभक्त होने के कारण सर्गों मे विभक्त नही होना खटकता नही है। रास की भाषा एव वर्णन शैली अच्छी है। भाषा की दृष्टि मे रचना गुजराती प्रभावित राजस्थानी भाषा मे निबद्ध है।

ते देखी भयभीत हवी, नागश्री कहे तात। '
कवण पातिग एणे कीया, परिपरि पामइ छे घात।

---

१. रास की एक प्रति महावीर भवन जयपुर के सग्रह मे है।

तब ब्राह्मण कहे सुन्दरी सुणो तह्यो एणी वात ।
जिम आनद बहु उपजे जग माहे छे विख्यात ।।२।।

रास की रचना घोघा नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय में प्रारम्भ की गयी थी और उसी नगर के आदिनाथ चैत्यालय मे पूर्ण हुई थी। कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

श्रीमूलसघ महिमा निलो हो, सरस्वती गच्छ सणगार ।
बलात्कार गण निर्मलो हो, श्री पद्मनन्दि भवतार रे जी० ।।२३।।

तेह पाटि युक गुणनिलो हो, श्री देवेन्द्रकीर्त्ति दातार ।
श्री विद्यानन्दि विद्यानिलो हो, तस पट्टोहर सार रे जी०।।२४।।

श्री मल्लिभूषण महिमानिनो हो, तेह कुल कमल विकास ।
भास्कर समपट तेह तणो हो, श्री लक्ष्मीचद्र रिछरु वासरे जी० ।।२५।।

तस गछपति जगि जाणियो हो, गौतम सम अवतार ।
श्री अभयचन्द्र वखाणीये हो, ज्ञान तणे भडार रे जीवडा ।।२६।।

तास शिष्य भणि रुवडो हो, रास कियो मे सार ।
सुकुमाल नो भावइ जट्टो हो, सुणता पुण्य अपार रे जी० ।।२७।।

ख्याति पूजानि नवि कीयु हो, नवि कीयु कविताभिमान ।
कर्मक्षय कारणइ कीयु हो, पामवा वलि रूडू ज्ञान रे जी० ।।२८।।

स्वर पदाक्षर व्यजन हीनो हो, मइ कीयु होयि परमादि ।
साधु तम्हो सोधि लेना हो, क्षमितवि कर जो आदि रे जी० ।।२९।।

श्री घोघा नगर सोहामणू हो, श्रीसघव से दातार ।
चैत्याला दोइ गामणा हो, महोत्सव दिन दिन सार रे जी० ।।३०।।

कवि की अन्य कृतियो के नाम निम्न प्रकार हैं—

१ पीहरसासडा गीत,
२ वणियडा गीत
३ मीणारे गीत
४. अरहत गीत
५ जिनवर वीनती
६ आदिजिन विनती
७ पद एव गीत

९. भट्टारक अभयनन्दि

भट्टारक अभयचन्द्र के पश्चात् अभयनन्दि भट्टारक पद पर अभिषिक्त हुए। ये भी अपने गुरु के समान ही लोकप्रिय भट्टारक थे,शास्त्रो के ज्ञाता थे, विद्वान् थे और उपदेष्टा थे। साहित्य के प्रेमी थे। यद्यपि अभी तक उनकी कोई महत्त्वपूर्ण रचना नही उपलब्ध हो सकी है लेकिन सागवाडा, सूरत एव राजस्थान एव गुजरात के अन्य शास्त्र भण्डारो मे सभवत इनकी अन्य रचना भी मिल सके। एक गीत मे इन्होने अपना परिचय निम्न प्रकार किया है—

अभयचन्द्र वादेन्द्र इह . . .अनत गुण निधान।
तास पाट प्रयोज प्रकासन, अभयनन्दि सुरि भाण।

अभयनदी व्याख्यान करता, अभेमति ये थल पासु।
चरित्र श्री वाई तणे उपदेशे ज्ञान कल्याणक गाउ॥

उनके एक शिष्य सयमसागर ने इनके सम्बन्ध मे दो गीत लिखे हैं। गीतो के अनुसार जालणपुर के प्रसिद्ध बघेरवाल श्रावक सघवी आसवा एव सघवी [illegible]राम ने सवत् १६३० मे इनको भट्टारक पद पर अभिषिक्त किया। वे गौर वर्ण एव शुभ देह वाले यति थे—

कनक कांति शोभित तस गात, मधुर समान सुवाणि जी।
मदन मान मर्दन पचानन, भारती गच्छ सन्मान जी।

श्री अभयनन्दिसूरी पट्ट धुरधर, सकल सघ जयकार जी।
सुमतिसागर तस पाय प्रणमें, निर्मल सयम धारी जी॥१॥

१०. ब्रह्म जयराज

ब्रह्म जयराज भ० सुमतिकीर्त्ति के प्रशिष्य एव भ० गुणकीर्त्ति के शिष्य थे। सवत् १६३२ मे भ० गुणकीर्त्ति का पट्टाभिषेक डूगरपुर नगर मे बडे उत्साह के साथ किया गया था। गुरु छन्द[1] में इसी का वर्णन किया गया है। पट्टाभिषेक मे देश के सभी प्रान्तो से श्रावक गण सम्मिलित हुए थे क्योकि उस समय भ० सुमतिकीर्त्ति का देश मे अच्छा सम्मान था।

सवत् सोल बत्रीसमि, वैशाख कृष्णा सुपक्ष।
दशमी सुर गुरु जाणिय, लगन लक्ष सुभ दक्ष।

---

१ इसकी प्रति माहवीर भवन जयपुर के रजिस्टर सख्या ५ पृष्ठ १४५ पर लिखी हुई है।

सिंहासणरूपा तणि, बिसार्‌या गुरु सत ।
श्री सुमतिकीर्त्ति सूरि रिग भरी, ढाल्या कुभ महत ।

× × × ×

श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र चरण सेवि नर नारि,
श्री गुणकीर्त्ति यतीद्र पाप तापादिक हारी ।

श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र ज्ञानदानादिक दायक,
श्री गुणकीर्त्ति यतीन्द्र, चार सघाष्टक नायक ।

सकल यतीश्वर मडणो, श्रीसुमतिकीर्त्ति पट्टोघरण ।
जयराज ब्रह्म एव वदति श्रीसकलसघ मगल करण ।।

इति गुरु छन्द

११. सुमतिसागर

सुमतिसागर भ० अभयनन्दि के शिष्य थे। ये ब्रह्मचारी थे तथा अपने गुरु के सघ मे ही रहा करते थे। अभयनन्दि के स्वर्गवास के पश्चात् ये भ० रत्नकीर्त्ति के सघ मे रहने लगे। इन्होने अभयनन्दि एव रत्नकीर्त्ति दोनो भट्टारकों के स्तवन मे गीत लिखे हैं। इनके एक गीत के अनुसार अभयनन्दि स० १६३० मे भट्टारक गादी पर बैठे थे। ये आगम काव्य, पुराण, नाटक एव छद शास्त्र के वेत्ता थे।

सवत् सोलसा त्रिस सवच्छर, वैशाख सुदी त्रीज सार जी ।
अभयनन्दि गोर पाट थाप्या, रोहिणी नक्षत्र शनिवार जी ।।६।।
आगम काव्य पुराण सुलक्षण, तर्क न्याय गुरु जाणे जी ।
छद नाटिक पिंगल सिद्धान्त, पृथक पृथक बखाणे जी ।।७।।

सुमतिसागर अच्छे कवि थे। इनकी अब तक १० लघु रचनाए उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार है—

१ साधरमी गीत	७ गणधर वीनती
२-३ हरियाल वेलि	८. अझारा पार्श्वनाथ गीत
४-५ रत्नकीर्त्ति गीत	९. नेमिवदना
६ अभयनन्दि गीत	१० गीत

उक्त सभी रचनायें काव्य एव भाषा की दृष्टि से अच्छी कृतिया है एक उदाहरण देखिये—

ऊजल पूनिम चद्र सम, जस राजीमती जगि होई।
ऊजलु सोहइ अबला, रूप रामा जोइ।

ऊजल मुखवर भामिनी, खाय मुख तबोल।
ऊजल केवल न्यान जानू, जीव भव कलोल।

ऊजलु रुपानु भल्लु, कटि सूत्र राजुल धार।
ऊजल दशन पालती, दुख नास जय सुखकार।

नेमिवदना

समय—सुमतिसागर ने अभयनन्दि एव रत्नकीर्त्ति दोनो का शासन काल देखा था इसलिये इनका समय सभवत, १६०० से १६६५ तक होना चाहिए।

१२. ब्रह्म गरोश

गरोश ने तीन सन्तो का भ० रत्नकीर्त्ति, भ० कुमुदचन्द व भ० अभयचन्द का शासनकाल देखा था। ये तीनो ही भट्टारको के प्रिय शिष्य थे इसलिये इन्होने भी इन भट्टारको के स्तवन के रूप मे पर्याप्त गीत लिखे है। वास्तव मे ब्रह्म गरोश जैसे साहित्यिको ने इतिहास को नया मोड दिया और उनमे अपने गुरुजनो का परिचय प्रस्तुत करके एक वडी भारी कमी को पूरा किया। ब्र० गरोश के अब तक करीब २० गीत एव पद प्राप्त हो चुके हैं और सभी पद एव गीत इन्ही सन्तो की प्रशसा मे लिखे गये है। दो पद 'तेजाबाई' की प्रशसा मे भी लिखे हैं। तेजाबाई उस समय की अच्छी श्राविका थी तथा इन सन्तो को सघ निकालने मे विशेष सहायता देती थी।

१३. संयमसागर

ये भट्टारक कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। ये ब्रह्मचारी थे और अपने गुरु को साहित्य निर्माण मे योग दिया करते थे। ये स्वय भी कवि थे। इनके अब तक कितने ही पद एव गीत उपलब्ध हो चुके हैं। इनमे नेमिगीत, शीतलनाथगीत, गुणावलि गीत के नाम विशेषत' उल्लेखनीय है। अपने अन्य साथियो के समान इन्होने भी कुमुदचन्द्र के स्तवन एव प्रशसा के रुप मे गीत एव पद लिखे हैं। ये सभी गीत एव पद इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

१. भ० कुमुदचन्द्र गीत
२. पद (आवो साहेलडीरे सहू मिलि सगे)
३ ,, (सकल जिन प्रणमी भारती समरी)

४ नेमिगीत
५ शीतलनाथ गीत
६ गीत।
७ गुरावली गीत

१४. त्रिभुवनकीर्त्ति

त्रिभुवनकीर्त्ति भट्टारक उदयसेन के शिष्य थे। उदयसेन रामसेनान्वय तथा सोमकीर्त्ति कमलकीर्त्ति तथा यश कीर्त्ति की परम्परा मे से थे। इनकी अब तक जीव धररास एव जम्बूस्वामीरास ये दो रचनायें मिली हैं। जीवधररास को कवि ने कल्पवल्ली नगर मे सवत् १६०६ मे समाप्त किया था। इस सम्बन्ध मे ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति देखिये—

नदीयड गच्छ मझार, राम सेनान्वयि हवा।
श्री सोमकीरति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हवउ ॥५०॥

तेह पाटि प्रसिद्ध, चारित्र भार धुरधुरो।
वादीय भजन वीर, श्री उदयसेन सूरीश्वरो ॥५१॥

प्रणमीय हो गुरु पाय, त्रिभुवनकीरति इस वीनवइ।
देयो तह्म गुणग्राम, अनेरो काई वाछा नही ॥५२॥

कल्पवल्ली मझार, सवत् सोल छहोत्तरि।
रास रचउ मनोहारि, रिद्धि हयो सघह घरि ॥५३॥

दुहा

जीवधर मुनि तप करी, पुहुतु सिव पद ठाम।
त्रिभुवनकीरति इस वीनवइ, देयो तह्म गुणग्राम ॥६४॥
॥व॥

उक्त रास की प्रति जयपुर के तेरहपथी वडा मन्दिर के शास्त्र भडार के एक गुटके में सग्रहीत है। रास गुटके के पत्र १२९ से १५१ तक सग्रहीत है। प्रत्येक पत्र मे १९ पक्तिया तथा प्रति पक्ति मे ३२ अक्षर हैं। प्रति सवत १६४३ पौष वदि ११ के दिन आसपुर के शान्तिनाथ चैत्यालय मे लिखी गयी थी। प्रति शुद्ध एव स्पष्ट है।

विषय—

प्रस्तुत रास मे जीवधर का चरित वर्णित है। जो पूर्णत रोमाञ्चक घटनाओ

से मुक्त है। जीवन्धर अन्त में मुनि बनकर घोर तपस्या करते हैं और निर्वाण प्राप्त करते हैं।

भाषा—

रचना की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव है। रास में दूहा, चौपई, वस्तुबन्ध, छंद ढाल एवं रागों का प्रयोग किया गया है।

जम्बूस्वामीरास त्रिभुवनकीर्ति की दूसरी रचना है। कवि ने इसे संवत् १६२५ में जवाछनगर के शान्तिनाथ चैत्यालय में पूर्ण किया था जैसा कि निम्न अन्तिम पद्य में दिया हुआ है—

> संवत् सोल पचवीसि जवाछ नयर मझार।
> भुवन शांति जिनवर तणि, रच्यु रास मनोहार ॥१६॥

प्रस्तुत रास भी उसी गुटके के १६२ से १९० तक पत्रों में लिपि बद्ध है।

विषय—

रास में जम्बूस्वामी का जीवन चरित वर्णित है ये महावीर स्वामी के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली हैं। इनका पूरा जीवन आकर्षक है। ये श्रेष्ठि पुत्र थे अपार वैभव के स्वामी एवं चार सुन्दर स्त्रियों के पति थे। माता ने जितना अधिक संसार में इन्हें फसाना चाहा उतना ही ये संसार से विरक्त होते गये और अन्त में एक दिन सबको छोड़ कर मुनि हो गये तथा घोर तपस्या करके निर्वाण लाभ लिया।

भाषा—

रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती का प्रभाव है। वर्णन शैली अच्छी एवं प्रभावक है। राजग्रही का वर्णन देखिये—

> देश मध्य मनोहर ग्राम, नगर राजग्रह उत्तम ठाम।
> गढ मढ मन्दिर पोल पगार, चउहटा हाट तणु नहिं पार ॥१३॥
>
> धनवंत लोक दीसि तिहां घणा, सज्जन लोक तणी नही मणा।
> दुर्ज्जन लोक न दीसि ठाम, चोर उचट नही तिहां ताम ॥१४॥
>
> घरि घरि वाजित वाजि भंग, घिर घिर नारी धरि मनि रंग।
> घरि घरि उछव दीसि सार, एह सहू पुण्य तणु विस्तार ॥१५॥

१५. भट्टारक रत्नचन्द (प्रथम)

ये भ० सकलचन्द्र के शिष्य थे । इनकी अभी एक रचना 'चौवीसी' प्राप्त हुई है जो सवत् १६७६ की रचना है। इसमे २४ तीर्थंकर का गुणानुवाद है तथा अन्तिम २५ वें पद्य मे अपना परिचय दिया हुआ है । रचना सामान्यत अच्छी है—

अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है —

सवत् सोल छोत्तरे कवित्त रच्या सघारे,
पचमीशु शुक्रवारे ज्येष्ठ वदि जान रे ।

मूलसघ गुणचन्द्र जिनेन्द्र सकलचन्द्र,
भट्टारक रत्नचन्द्र बुद्धि गछ भाणरे ।

त्रिपुरो पुरो पि राज स्वतो ने तो अभ्रराज,
मामोस्यो मोलखराज त्रिपुरो वखाणरे ।

पीछो छाजु ताराचद, छीतरवचद,
ताउ खेतो देवचद एहु की कल्याण रे ।।२५।।

१६. ब्रह्म अजित

ब्रह्म अजित सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। ये गोलशृगार जाति के श्रावक थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह एव माता का नाम पीथा था। ब्रह्म अजित भट्टारक सुरेन्द्रकीर्त्ति के प्रशिष्य एव भट्टारक विद्यानन्दि के शिष्य थे।[1] ये ब्रह्मचारी थे और इसी अवस्था मे रहते हुए इन्होने भृगुकच्छपुर (भडौच) के नेमिनाथ चैत्यालय मे हनुमच्चरित की समाप्ति की थी। इस चरित की एक प्राचीन प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे सग्रहीत है।- हनुमच्चरित में १२ सर्ग हैं और यह अपने समय का काफी लोक प्रिय काव्य रहा है।

ब्रह्म अजित एक हिन्दी रचना 'हसागीत' भी प्राप्त हुई है। यह एक उपदेशात्मक अथवा शिक्षाप्रद कृति है जिसमे 'हस' (आत्मा) को सबोधित करते हुए ३७ पद्य हैं। गीत की समाप्ति निम्न प्रकार की है—

---

१ सुरेंद्रकीर्त्तिशिष्यविद्यानद्यनगमवनैकपडित: कलाधर ।
स्तदीय देशनामवाप्यबोधमाश्रित्तो जितेंद्रियस्य भक्तित' ।।

रास हस तिलक एह, जो भावइ दढ चित्त रे हसा ।
श्री विद्यानदि उपदेसिउ, वोलि ब्रह्म अजित रे हसा ॥३७॥

हसा तू करि सयम, जम न पडि ससार रे हसा ॥

ब्रह्म अजित १७ वी शताब्दि के विद्वान् सन्त थे ।

१७. आचार्य नरेन्द्रकीर्त्ति

ये १७ वी शताब्दि के सन्त थे । भ० वादिभूषण एव भ० सकलभूषण दोनो ही सन्तो के ये शिष्य थे और दोनो को ही इन पर विशेष कृपा थी । एक बार वादिभूषण के प्रिय शिष्य ब्रह्म नेमिदास ने जब इनसे 'सगरप्रबन्ध' लिखने की प्रार्थना की तो इन्होने उनकी इच्छानुसार 'सगर प्रबन्ध' कृति को निवद्ध किया । प्रबन्ध का रचनाकाल स० १६४६ आसोज सुदी दशमी है । यह कवि की एक अच्छी रचना है । आचार्य नरेन्द्रकीर्त्ति की ही दूसरी रचना 'तीर्थंकर चौवीसना छप्पय' है । इसमे कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई परिचय नही दिया है । दोनो ही कृतिया उदयपुर के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत है ।

गोलशृगार वशे नभसि दिनमणि र्वीरसिंहो विपश्चित् ।
भार्या पीथा प्रतीता तनुरुहविदितो ब्रह्म दीक्षाश्रितोऽभूत ॥

२ भट्टारक विद्यानन्दि बलात्कारगण—सूरत शाखा के भट्टारक थे ।

भट्टारक सम्प्रदाय पत्र स० १९४

तेह भवन माहि रह्या चोमास, महा महोत्सव पूगी आस ।
श्री वादिभूषण देशना सुधा पान, कीरति शुभमना ॥१९॥

शिष्य ब्रह्म नेमिदासज तणी, विनय प्रार्थना देखी घणी ।
सूरि नरेन्द्रकीरति शुभ रूप, सागर प्रबन्ध रचि रस कूप ॥२०॥

मूलसघ मडन मुनिराय, कलिकालि जे गणधर पाय ।
सुमतिकीरति गछपति अवदीत,, तस गुरु बोधव जग विख्यात ॥२१॥

सकलभूषण सूरीश्वर जेह, कलि माहि जगम तीरथ तेह ।
ते दोए गुरु पद कज मन धरि, नरेन्द्रकीरति शुभ रचना करी ॥२२॥

सवत सोलाछितालि सार, आसोज सुदि दशमी बुधवार ।
सगर प्रवन्ध रच्यो मनरग, चिरु नदो जा सायर गग ॥२३॥

१८. कल्याण कीर्त्ति

कल्याणकीर्त्ति १७ वी शताब्दी के प्रमुख जैन सन्त देवकीर्ति मुनि के शिष्य थे। कल्याणकीर्त्ति भीलोडा ग्राम के निवासी थे। वहा एक विशाल जैन मन्दिर था। जिसके ५२ शिखर थे और उन पर स्वर्ण कलश सुशोभित थे। मन्दिर के प्रागण मे एक विशाल मानस्तम था। इसी मन्दिर मे बैठकर कवि ने चारुदत्त प्रबन्ध की रचना की थी। रचना सवत् १६९२ आसोज शुक्ला पचमी को समाप्त हुई थी। कवि ने उक्त वर्णन निम्न प्रकार किया है।

चारुदत्त राजानि पुन्यि भट्टारक सुखकर सुखकर सोमागि अति विचक्षण।
वादिवारण केशरी भट्टारक श्री पद्मनदि चरण रज सेवि हारि ।।१०।।

ए सहु रे गछ नायक प्रणमि करि, देवकीरति मुनि निज गुरु मन्य धरी।
धरि चित्त चरणे नमि 'कल्याण कीरति' इम भणि।
चारूदत्त कुमर प्रबध रचना रचिमि आदर धरिण ।।११।।

राय देश मध्यि रे भिलोडउ वसि, निज रचनासि रे हरिपुरिनि हसी।
हस अमर कुमारनि, तिहा धनपति वित्त विलसए।
प्राशाद प्रतिमा जिन मति करि सुकृत साचए ।।१२।।

सुकृत सचिरे व्रत बहु आचरि, दान महोछव रे जिन पूजा करि।
करि उछव गान गध्रव चद्र जिन प्रसादए।
बावन सिखर सोहामणा ध्वज कनक कलश विसालए ।।१३।।

मडप मध्यि रे समवसरण सोहि, श्री जिनबिंब रे मनोहर मन मोहि।
मोहि जन मन अति उन्नत मानस्थम विसालए।
तिहा विजयभद्र विख्यात सुन्दर जिन सासन रक्ष पायलये ।।१४।।

तिहा चोमासि के रचना करि सोलबाणुगिरे १६९२ आसो अनुसरि।
अनुसरि आसो शुक्ल पचमी श्री गुरुचरण हृदयधरि।
कल्याणकीरति कहि सज्जन भणो सुणो आदर करि ।।१५।।

दूहा

आदर ब्रह्म सघजीतणि विनयसहित सुखकार।
ते देखि चारूदत्तनो प्रबध रच्यो मनोहर ।।१।।

कवि ने रचना का नाम 'चारुदत्तरास' भी दिया है। इसकी एक प्रति

जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है। प्रति संवत् १७३३ की लिखी हुई है।

कवि की एक और रचना 'लघु बाहुबलि वेल' तथा कुछ स्फुट पद भी मिले हैं। इसमे कवि ने अपने गुरु के रूप मे शान्तिदास के नाम का उल्लेख किया है। यह रचना भी अच्छी है तथा इसमे त्रोटक छन्द का उपयोग हुआ है। रचना का अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

भरतेस्वर आवीया नाम्यु निज वर शीस जी।
स्तवन करी इम जपए, हूं किंकर तु ईस जी।

ईश तुमनि छोडी राज मझनि आपीड।
इम कहीइ मदिर गया सुन्दर ज्ञान भुवने व्यापीउ।

श्री कल्याणकीरति सोममूरति चरण सेवक इम भणि।
शांतिदास स्वामी बाहुबलि सरण राखु मझ तह्म तणि ॥६॥

१६. भट्टारक महीचन्द्र

भट्टारक महीचन्द्र नाम के तीन भट्टारक हो चुके हैं। इनमे से प्रथम विशालकीर्त्ति के शिष्य थे जिनकी कितनी ही रचनायें उपलब्ध होती है। दूसरे महीचद्र भट्टारक वादिचन्द्र के शिष्य थे तथा तीसरे भ० सहस्रकीर्त्ति के शिष्य थे। लवाकुश छप्पय के कवि भी संभवत वादिचन्द्र के ही शिष्य थे। 'नेमिनाथ समवशरण विधि' उदयपुर के खन्डेलवाल मदिर के शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है उसमे उन्होंने अपने को भ० वादिचन्द्र का शिष्य लिखा है।

श्री मूलसघे सरस्वती गच्छ जाणो,
बलातकार गण बखाणो।

श्री वादिचन्द्र मने आणो,
श्री नेमीश्वर चरण नमेसू ॥३२॥

तस पाटे महीचन्द्र गुरु थाप्यो,
देश विदेश जग बहु व्याप्यो।
श्री नेमीश्वर चरण नमेसू ॥३३॥

उक्त रचना के अतिरिक्त आपकी 'आदिनाथविनति' 'आदित्यव्रत कथा' आदि रचनायें और भी उपलब्ध होती हैं।

'लवाकुश छप्पय' कवि की सबसे बडी रचना है। इसमे छप्पय छन्द के ७० पद्य हैं। जिनमे राम के पुत्र लव एव कुश की जीवन गाथा का वर्णन है। भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती एव मराठी का प्रभाव है। रचना साहित्यिक है तथा उसमें घटनाओ का अच्छा वर्णन मिलता है। इसे हम खन्डकाव्य का रूप दे सकते हैं। कथा राम के लका विजय एव अयोध्या आगमन के वाद से प्रारम्भ होती है। प्रथम पद्य मे कवि ने पूर्व कथा का साराश निम्न प्रकार दिया है।

के अक्षौहनि कटक मेलि रघुपति रण चल्यो।
रावण रण भूमीय पड्यो, सायर जल छल्यो।

जय निसान बजाय जानकी निज घर आणि।
दशरथ सुत कीरति भुवनत्रय माहि वखानी।

राम लक्ष्मण एम जीतिने, नयरी अयोध्या आवया।
महीचन्द्र कहे फल पुन्य थिएडा, वहु परे वामया॥१॥

एक दिन राम सीता वैठे हुए विनोद पूर्ण वातें कर रहे थे। इतने में सीता ने अपने स्वप्न का फल राम से पूछा। इसके उत्तर मे राम ने उसके दो पुत्र होगे, ऐमी भविष्यवाणी की। कुछ दिनो बाद सीता का दाहिना नेत्र फडकने लगा। इससे उन्हे बहुत चिन्ता हुई क्योकि यही नेत्र पहिले जव उन्हे राज्यभिपेक के स्थान पर वनवास मिला था तव भी फडका था। एक दिन प्रजा के प्रतिनिधि ने आकर राम के सामने सीता के सम्वन्ध मे नगर मे जो चर्चा थी उसके विपय मे निवेदन किया। इसको सुन कर लक्ष्मण को वडा क्रोध आया और उसने तलवार निकाल ली लेकिन राम ने वडे ही धैर्य के साथ सारी बातो को सुनकर निम्न निर्णय किया।

रामे वार्‌यो सदा रहो भ्राता तह्मे मे छाना।
कैहनो नहि छे वाकलोक अपवाद जनाह्मा।

सावु हुवु लोक नही कोई निश्चय जांने।
यद्वा तद्वा कर्‌यु तेज खल जन सहु मानें।

एमविचार करी तदा निज अपवाद निवारवा।
सेनापति रथ जोडिने लइ जावो वन घालवा॥७॥

सीता घनघोर वन में अकेली छोड दी गई। वह रोई चिल्लाई लेकिन किसी ने कुछ न सुना। इतने मे पुडरीक युवराज 'वज्रसघ' वहा आया। सीता ने अपना परिचय पूछने पर निम्न शब्दो मे नम्र निवेदन किया।

सीता कहे सुन भ्रात तात तो जनकज हमारो ।
भामडल मुझ भ्रात दियर लक्ष्मण भट सारो ।

तेह तणो वड भ्रात नाथ ते मुझनो जानो ।
जगमा जे विक्षात तेहनो माननी मानो ।

एहवु वचन साभली कहे, वंहीन आव जु मुझ परे ।
बहु महोत्सव आनद करी सीता ने आने घरे ।।१०।।

कुछ दिनो के वाद सीता के दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम लव एव कुश रखा गया। वे सूर्य एव चन्द्रमा के समान थे। उन्होने विद्याध्ययन एव शास्त्र सचालन दोनो की शिक्षा प्राप्त की। एक दिन वे बैठे हुए थे कि नारद ऋषि का वहा आगमन हुआ। लव कुश द्वारा राम लक्ष्मण का वृत्तान्त जानने की इच्छा प्रकट करने पर नारद ने निम्न शब्दो मे वर्णन किया।

कोण गाम कुण ठाम पूज्यते कहो मुझ आगल ।
तेव रुपि कहे छे वात देश नामे छे कोशल ।

नगर अयोध्या घनीवश इश्वाक मनोहर ।
राज्य करे दशरथ चार सुत तेहना सुन्दर ।

राज्य आप्पु जव भरत ने वनवास जथ पोरा मने ।
सती सीतल लक्ष्मण समो सोल वरस दडक वने ।।२५।।

तव दशवदनो हरी रामनी राणि सीता ।
युद्धे करीस जथया राम लक्ष्मण दो भ्राता ।।

हणुमत सुग्रीव घणा सहकारी कीधा ।
के विद्याधर तना घनी ते साथे लीधा ।।

युद्ध करी रावण हणी सीता लई घर आवया ।
महीचन्द्र कहे तेह पुन्य थी जगमाहि जस पामया ।।२६।।

सीता परघर रही तेह थी थयो अपवादह ।
रामे मूकी वने कीघो ते महा प्रमादह ।।

रोदन करे विलाप एकली जगल जेहवे ।
वज्रजघ नृप एह पुन्य थि आव्यो ते हवे ।।

भगनि करि घर लाव्यो तेहथिं तुम्ह दो सूत थया ।
भाग्ये एह पद पामया वज्रजघ पद प्रणमया ।।२७।।

बिना अपराध ही राम द्वारा सीता को छोड देने की बात सुनकर लव कुश बडे क्रोधित हुए और उन्होने राम से युद्ध करने की घोषणा कर दी। सीता ने उन्हे बहुत समझाया कि राम लक्ष्मण बडे भारी योद्धा है, उनके साथ हनुमान, सुग्रीव एव विभीषण जैसे वीर हैं, उन्होने रावण जैसे महापराक्रमी योद्धा को मार दिया है इसलिये उनसे युद्ध करने की आवश्यकता नही है लेकिन उन्होने माता की एक बात न सुनी और युद्ध की तैयारी कर दी। लाखो सेना लेकर वे अयोध्या की ओर चले। साकेत नगरी के पास जाने पर पहिले उन्होंने राम के दरबार मे अपने एक दूत को भेजा। लक्ष्मण और दूत मे खूब वादविवाद हुआ। कवि ने इसका अच्छा वर्णन किया है। इसका एक वर्णन देखिये।

दूत बात सामलि कोपे कप्यो ते लक्ष्मण,
एह वल आव्यो कोंण लेखवे नहि हमने पण।
रावण मय मार्यो तेह थिये कुण अधिको,
वज्रजघते कोण कहे दूत ते छे को॥
दूत कहे रे सामलो लव कुश नो मातुलो,
जगमा जेहनो नाम छे जाने नहि केम वातुलो॥३६॥

दोनो सेनाओ मे घनघोर युद्ध हुआ लेकिन लक्ष्मण की सेना उन पर विजय प्राप्त न कर सकी। अन्त मे लक्ष्मण ने चक्र आयुध चलाया लेकिन वह भी उनकी प्रदक्षिणा देकर वापिस लक्ष्मण के पास ही आ गया। इतने मे ही वहां नारद ऋषि आ गये और उन्होने आपसी गलत फहमी को दूर कर दिया। फिर तो लव कुश का अयोध्या मे शानदार स्वागत हुआ और सीता के चरित्र की अपूर्व प्रशसा होने लगी। विभीषण आदि सीता को लेने गये। सीता उन्हे देखकर पहिले तो बहुत क्रोधित हुई लेकिन क्षमा मागने के पश्चात् उन्होने उनके साथ अयोध्या लौटने की स्वीकृति दे दी। अयोध्या आने पर सीता को राम के आदेशानुसार फिर अग्नि परीक्षा देनी पडी जिसमे वह पूर्ण सफल हुई। आखिर राम ने सीता से क्षमा मागी और उससे घर चलने के लिये कहा लेकिन सीता ने साध्वी बनने का अपना निश्चय प्रकट किया और सत्यभूषण केवली के समीप आर्यिका बन गई तथा तपस्या करके स्वर्ग मे चली गई। राम ने भी निर्वाण प्राप्त किया तथा अन्त मे लव और कुश ने भी मोक्ष लाभ किया।

भाषा

महीचन्द्र की इस रचना को हम राजस्थानी डिंगल भाषा की एक कृति कह सकते हैं। डिंगल की प्रमुख रचना कृष्ण रूक्मिणी वेलि के समान है इसमें भी

शब्दो का प्रयोग हुआ है । यद्यपि छप्पय का मुख्य रस शान्त रस है लेकिन आधे से अधिक छद वीर रस प्रधान हैं । शब्दो को अधिक प्रभावशील बनाने के लिये चल्यो, छल्यो, पामया, लाज्या, आव्यो, पाव्यो, पाड्या, चल्यो,नम्या, उपसम्या, वोल्या आदि क्रियाओ का प्रयोग हुआ है । "तुम" "हम" के स्थान पर तुह्म, अह्म का प्रयोग करना कवि को प्रिय है । डिंगल शैली के कुछ पद्य निम्न प्रकार ।

रण निसाण वजाय सकल सैन्या तव मेली ।
चढ्यो दिवाजे करि कटक करि दश दिश भेली ॥
हस्ति तुरग मसूर भार करि शेषज शको ।
खडगादिक हथियार देखि रवि शशि पण कप्यो ॥
पृथ्वी आदोलित थई छत्र चमर रवि छादयो ।
पृथु राजा ने चरे कह्यो, व्याघ्र राम तवे आवयो ॥१५॥

× × × × ×

रू ध्या के असवार हणीगय वरनि घटा ।
रथ की धाच कूचर हणी वली हयनी थटा ॥
लव अ कुश युद्ध देख दशो दिशि नाठा जावे ।
पृथुराजा बहु बढे लोहि पण जुगति न पावे ॥
वज्र जघ नृप देखतो वल साथे भागो यदा ।
कुल सील हीन केतो जिते पृथु रा पगे पड्यो तदा ॥२ ॥

२०. ब्रह्म कपूरचन्द

ब्रह्म कपूरचन्द मुनि गुणचन्द्र के शिष्य थे । ये १७ वी शताब्दि के अन्तिम चरण के विद्वान् थे । अव तक इनके पार्श्वनाथरास एव कुछ हिंदी पद उपलब्ध हुये हैं । इन्होने रास के अन्त मे जो परिचय दिया है, उसमे अपनी गुरु-परम्परा के अतिरिक्त आनन्दपुर नगर का उल्लेख किया है, जिसके राजा जसवन्तसिह थे तथा जो राठौड जाति के शिरोमणि थे । नगर मे ३६ जातिया सुखपूर्वक निवास करती थी । उसी नगर मे ऊ चे-ऊ चे जैन मन्दिर थे । उनमे एक पार्श्वनाथ का मन्दिर था । सम्भवत उसी मन्दिर मे बैठकर कवि ने अपने इस रास की रचना की थी ।

पार्श्वनाथरास की हस्तलिखित प्रति मालपुरा, जिला टोक (राजस्थान) के चौधरियो के दि० जैन मन्दिर के शास्त्र-भण्डार मे उपलब्ध हुई है । यह रचना एक गुटके मे लिखी हुई है, जो उसके पत्र १४ से ३२ तक पूर्ण होती है । रचना राजस्थानी-भाषा मे निबद्ध है, जिसमे १६६ पद्य है । "रास" की प्रतिलिपि वाई

रत्नाई की शिष्या श्राविका पारवती गगवाल ने सवत् १७२२ मिती जेठ वुदी ५ को समाप्त की थी।

श्रीमूल जी सघ वहु सरस्वती गछि।
भयो जी मुनिवर वहु चारित स्वछ ॥

तहा श्री नेमचन्द गछपति भयो।
तास कै पाट जिम सौमे जी भाण ॥

श्री जसकीरति मुनिपति भयो।
जाणो जी तर्क अति शास्त्र पुराण ॥श्री०॥१५९॥

तास को शिष्य मुनि अविक (प्रवीन)।
पच महाव्रत स्यो नित लीन ॥

तेरह विधि चारित धरै।
व्यजन कमल विकासन चन्द ॥

ज्ञान गौ इम जिसौ अवि ' ले।
मुनिवर प्रगट सुमि श्री गुणचन्द ॥श्री०॥१६०॥

तासु तणु सिषि पडित कपुर जी चन्द।
कीयो रास चिति धरिवि आनद ॥

जिणगुण कहु मुझ अल्प जी मति।
जसि विधि देख्या जी शास्त्र-पुराण ॥

वुधजन देखि को मति हमै।
तैसी जी विधि मे कीयौ जी वखाण ॥श्री॥ १६१॥

सोलासै सत्ताणवै मासि वैसाखि।
पचमी तिथि सुभ उजल पाखि ॥

नाम नक्षत्र आद्रा मलो।
वार वृहस्पति अधिक प्रधान ॥

रास कीयो वामा सुत तणो।
स्वामी जी पारसनाथ के थान ॥श्री०॥१६२॥

अहो देस को राजा जी जाति राठोड।
सकल जी छत्री याकै सिरिमोड ॥

नाम जसवतसिंघ तसु तणो ।
तास आनदपुर नगर प्रधान ।।

पोणि छत्तीस लीला करें ।
सोभै जी जैसे हो इन्द्र विमान ।।श्री०।।१६३।।

सोभो जी तहा जीण भवण उत्त ग ।
मडप वेदी जी अधिक अभग ।।

जिण तणा विब सोभै भला ।
जो नर वदे मन वचकाइ ।।

दुख कलेस न सचरे ।
तीस घरा नव निधि थिति पाइ ।।श्री०।।१६४।।

इस रास की रचना सवत् १६९७, वैशाख सुदी ५ के दिन समाप्त हुई थी, जैसा कि १६२ वें पद्य मे उल्लेख आया है।

रास मे पार्श्वनाथ के जीवन का पद्य-कथा के रूप मे वर्णन है। कमठ ने पार्श्वनाथ पर क्यो उपसर्ग किया था, इसका कारण बताने के लिए कवि ने कमठ के पूर्व-भव का भी वर्णन कर दिया है। कथा में कोई चमत्कार नही है। कवि को उसे अति सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करना था सम्भवत, इसीलिए उसने किसी घटना का विशेष वर्णन नही किया।

पार्श्वनाथ के जन्म के समय माता-पिता द्वारा उत्सव किया गया। मनुष्यों ने ही नही स्वर्ग से आये हुये देवताओ ने भी जन्मोत्सव मनाया—

अहो नगर मे लोक अति करे जी उछाह ।
खर्चे जी द्रव्य मनि अधिक उमाह ।।

घरि घरि मगल अति घणा,
घरि घरि गावे जी गीत सुचार ।।

सब जन अधिक आनदिया ।
धनि जननी तसु जिण अवतार ।।श्री०।।१२४।।

पार्श्वनाथ जब बालक ही थे। तभी एक दिन बन-क्रीडा के लिए अपने साथियों के साथ गये। वन मे जाने पर देखा कि एक तपस्वी पचाग्नि तप तप रहा है और अपनी देह को सुखा रहा है। बालक पार्श्व ने, जो मति, श्रुत एव अवधि-ज्ञान के धारी थे, कहा-यह तपस्वी मिथ्याज्ञान

के वशीभूत होकर तप कर रहा है। तपस्वी के पास जाकर कुमार ने कहा तपस्वी महाराज ! आपने सम्यक्-तप एव मिथ्या तप के भेद को जाने विना ही तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया है। इस लकडी को आप जला तो रहे हैं, लेकिन इसमे एक सर्प का जोडा अन्दर-ही-अन्दर जल रहा है। तपस्वी यह सुनकर बडा क्रुद्ध हुआ और उसने कुल्हाडी लेकर लकडी काट दी। लकडी काटने पर उसमे से आधे जले हुए एव सिसकते हुए सर्प एव सर्पिणी निकले। कवि ने इसका सरल भाषा मे वर्णन किया है—

सुणि विरतात बोलियो जी कुमार।
एहु तपयुगी नवि तारणहार।।

एहु अज्ञान तप निति करै।
सुणि तहा तापसी बोलियो एम।।

चित में कोध्र उपनौ घणे।
कहो जी अज्ञान तप हम तणो केम ।।श्री०।।१३९।।

सुणि जिणवर तहा वोलियो जाणि ।
लोक तिथि जाणों जी अवधि प्रमाणि ।।

सुणि रे अज्ञानी हो तापसी।
वलै छै जी काष्ट माफ सर्प्पणी सर्प।

ते तो जी भेद जाण्यो नहीं।
कर्यो जी वृथा मन मे तुम्ह दर्प ।।श्री०।।१४०।।

करि अति कोप करि ग्रहो जी कुठार।
काठ तहां छेदि कीयो तिण छार ।।

सर्पणी सर्प तहा निसर्या।
अर्घ जी दग्घ तहा भयो जी सरीर ।।

आकुला व्याकुला बहु करै।
करि कृपा भाव जीणवर वरवीर ।।श्री०।।१४१।।

पार्श्वकुमार के यौवन प्राप्त करने पर माता-पिता ने उनसे विवाह करने का आग्रह किया; लेकिन उन्हे तो आत्मकल्याण अभीष्ट था, इसलिए वे क्यो इस चक्कर मे फसते। आखिर उन्होने जिन-दीक्षा ग्रहण करली और मुनि हो गये। एक दिन जब वे ध्यानमग्न थे, सयोगवश उधर से ही वह देव भी विमान से जा

रहा था। पार्श्व को तपस्या करते हुए देखकर उससे पूर्व-भव का वैर स्मरण हो आया और उसने बदला लेने की दृष्टि से मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ कर दी। वे सर्प-सर्पिणो, जिन्हे बाल्यावस्था मे पार्श्वकुमार ने बचाने का प्रयत्न किया था, स्वर्ग मे देव-देवी हो गये थे। उन्होने जब पार्श्व पर उपसर्ग देखा, तब ध्यानस्थ पार्श्वनाथ पर सर्प का रूप धारण कर अपने फरण फैला दिये। कवि ने इसका सक्षिप्त वर्णन किया किया है—

वन मे जी आइ धर्‌यो जिरण (ध्यान)।
थम्यौ जी गगनि सुर तरणो जी विमान ॥

पूरव रिपु अधिक तहा कोपयो।
करे जी उपसर्ग जिरण नै बहु आइ ॥

की वृष्टि तहा अति करै।
तहा कामनी सहित आयो अहिराइ ॥श्री०॥१५३॥

वेगि टाल्या उपसर्ग अस (जान)।
जिरण जी ने उपनो केवलज्ञान ॥

२१. हर्षकीर्त्ति

हर्षकीर्त्ति १७ वी शताब्दि के कवि थे। राजस्थान इनका प्रमुख क्षेत्र था। इस प्रदेश मे स्थान स्थान पर विहार करके साहित्यिक एव सान्कृतिक जाग्रति उत्पन्न किया करते थे। हिन्दी के ये अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी चतुर्गति वेलि, नेमिनाथ राजुल गीत, नेमीश्वरगीत, मोरडा, कर्महिंडोलना, की भाषा छहलेश्याकवित्त, आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। इन सभी कृतियो राजस्थानी है। इनमें काव्यगत सभी गुण विद्यमान है। ये कविवर बनारसीदास के समकालीन थे। चतुर्गति वेलि को इन्होने सवत् १६८३ मे समाप्त किया था। कवि की कृतिया राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे अच्छी सख्या मे मिलती हैं जो इनकी लोकाप्रियता का द्योतक है।

२२. भ० सकलभूषण

सकलभूषण भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य थे तथा भट्टारक सुमतिकीर्त्ति के गुरु भ्राता थे। इन्होने सवत् १६२७ मे उपदेशरत्नमाला की रचना की थी जो सस्कृत की अच्छी रचना मानी जाती है। भट्टारक शुभचन्द्र को इन्होने पान्डवपुराण एव करकडुचरित्र की रचना में पूर्ण सहयोग दिया था जिसका शुभचन्द्र ने उक्त

ग्रन्थो मे वर्णन किया है। अभी तक इन्होने हिन्दी मे क्या क्या रचनायें लिखी थी, इसका कोई उल्लेख नही मिला था, लेकिन आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर के एक गुटके मे इनकी लघु रचना 'सुदर्शन गीत,' 'नारी गीत' एव एक पद उपलब्ध हुये हैं। सुदर्शनगीत मे सेठ सुदर्शन के चरित्र की प्रशसा का गई है। नारी गीत मे स्त्री जाति से ससार मे विशेष अनुराग नही करने का परामर्श दिया गया है। सकलभूषण की भाषा पर गुजराती का प्रभाव है। रचनाए अच्छी हैं एव प्रथम वार हिन्दी जगत के सामने आ रही हैं।

२३. मुनि राजचन्द्र

राजचन्द्र मुनि थे लेकिन ये किसी भट्टारक के शिष्य थे अथवा स्वतन्त्र रूप से विहार करते थे इसकी अभी कोई जानकारी प्राप्त नही हो सकी है। ये १७वी शताब्दि के विद्वान थे । इनकी अभी तक एक रचना 'चपावती सील कल्याणक' ही उपलब्ध हुई है जो सवत् १६८४ मे समाप्त हुई थी। इस कृति की एक प्रति दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर उदयपुर के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है। रचना मे १३० पद्य है। इसके अन्तिम दो पद्य निम्न प्रकार है—

सुविचार धरी तप करि, ते ससार समुद्र उत्तरि।
नरनारी साभलि जे रास, ते सुख पामि स्वर्ग निवास ॥१२६॥

सवत सोल चुरासीयि एह, करो प्रबन्ध श्रावण वदि तेह।
तेरस दिन आदित्य सुद्ध वेलावही, मुनि राजचद्र कहि हरखज लहि ॥१३०॥

इति चपावती सील कल्याणक समाप्त ॥

२४. ब्र० धर्मसागर

ये भ० अभयचन्द्र (द्वितीय) के शिष्य थे तथा कवि के साथ साथ सगीतज्ञ भी थे। अपने गुरू के साथ रहते और विहार के अवसर पर उनका विभिन्न गीतो के द्वारा प्रशसा एव स्तवन किया करते। अब तक इनके ११ से अधिक गीत उपलब्ध हो चुके हैं। जो मुख्यत नेमिनाथ एव भ० अभयचन्द्र के स्तवन मे लिखे गये हैं। नेमि एव राजुल के गीतो मे राजुल के विरह एव सुन्दरता का अच्छा वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिये—

दूखडा लोउ रे ताहरा नामना, वलि वलि लागु छु पायनरे।
बोलडो घोरे मुझने नेमजी, निठुर न थइये यादव रायनरे ॥१॥

किम रे तोरण तम्हें आविया, करि अमस्यु घणो नेहन रे।
पशुअ देखी ने पाछा वल्या, स्यु दे विमास्यु मन रोहन रे ॥२॥

इम नही कीजे रुडा न होला, तम्हे अति चतुर सुजाणन रे।
लोकह सार तन कीजीये, छेह न दीजिये निरवाणिन रे ॥३॥

नेमिगीत

कवि को अब तक जो ११ कृतिया उपलब्ध हो चुकी है उनमे से कुछ के नाम निम्न प्रकार है—

१. मरकलडागीत
२. नेमिगीत
३. नेमीश्वर गीत
४. लालपछेवडी गीत
५ गुरुगीत

२५. विद्यासागर

विद्यासागर भ० शुभचन्द्र के गुरु भ्राता थे जो भट्टारक अभयचन्द्र के शिष्य थे। ये वलात्कारगण एव सरस्वती गच्छ के साधु थे। विद्यासागर हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। इनकी अब तक (१) सोलह स्वप्न, (२) जिन जन्म महोत्सव, (३) सप्तव्यसनसवैय्या, (४) दर्शनाष्टाग, (५) विषापहार स्तोत्र भाषा, (६) भूपाल स्तोत्र भाषा, (७) रविव्रतकथा (८) पद्मावतीनीवीनति एव (९) चन्द्रप्रभनीवीनती ये ९ रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इन्होने कुछ पद भी मिले हैं जो भाव एव भाषा की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। यहा दो रचनाओ का परिचय दिया जा रहा है।

जिन जन्म महोत्सव षट् पद मे तीर्थंकर के जन्म पर होने वाले महोत्सव का वर्णन किया गया है। रचना मे केवल १२ पद्य है जो सवैय्या छन्द में हैं। रचनाकाल का कोई उल्लेख नही मिलता। रचना का प्रथम पद निम्न प्रकार है—

श्री जिनराज नो जन्म जाणा शुरराज ज आवे।
वात वयणे कीर सार श्वेत अैरावण ल्यावे ॥

प्रति वयणे वसुदत दत दते अेक सरोवर।
सरोवर प्रति पचवीस कमलनि सोहे सु दर ॥

कमलनि कमलनि प्रति भला कवल सवासो जाणीये ।
प्रति कमले शुभ पाखडी वसुधिक सत वखाणीये ॥१॥

२६. भ० रत्नचन्द्र (द्वितीय)

भ० अभयचन्द्र की परम्परा मे होने वाले भ० शुभचन्द्र के ये शिष्य थे तथा ये अपने पूव गुरुओ के समान हिन्दी प्रेमी सन्त थे। अब तक इनकी चार रचनायें उपलब्ध हो चुकी है जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१ आदिनाथगीत — २ बलिभद्रनुगीत
३. चितामणिगीत — ४ बावनगजागीत

उक्त रचनाग्रो के अतिरिक्त इनके कुछ स्फुट गीत एव पद भी उपलब्ध हुये हैं। 'बावनगजागीत' इनकी एक ऐतिहासिक कृति है जिसमे इनके द्वारा सम्पन्न चूलगिरि की ससघ यात्रा का वर्णन किया गया है। यह यात्रा सवत् १७५७ पौष सुदि २ मगलवार के दिन सम्पन्न हुई थी।

सवत् सतर सतवनो पोस सुदि बीज भौमवार रे।
सिद्ध क्षेत्र अति सोभतो तेनि महि मानो नहि पार रे ॥१४॥

श्री शुभचद्र पट्टे हवी, परखा वादि मद भजे रे'
रत्नचन्द्र सुरिवर कहे भव्य जीव मन रंजे रे ॥१५॥

चितामणि गीत मे अकलेश्वर के मन्दिर में विराजमान पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है।

रत्नचन्द्र साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। ये १८वी शताब्दि के द्वितीय-तृतीय चरण के सन्त थे।

२७. विद्याभूषण

विद्याभूषण भ० विश्वसेन के शिष्य थे। ये सवत् १६०० के पूर्व ही भट्टारक बन गये थे। हिन्दी एव सस्कृत दोनो के ही ये अच्छे विद्वान् थे। हिन्दी भाषा मे निबद्ध अब तक इनकी निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी है—

सस्कृत ग्रथ

१ लक्षण चौबीसी पद[1] — १ बारहसैचौतीसो विधान

1. देखिये ग्रथ सूची भाग—३ पृष्ठ संख्या २६४

२ द्वादशानुप्रेक्षा[2]
३. भविष्यदत्त रास

भविष्यदत्त रास इनकी सबसे अच्छी रचना है जिसका परिचय निम्न प्रकार है—

भविष्यदत्त के रोमांचक जीवन पर जैन विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी राजस्थानी आदि सभी भाषाओं में पचासों कृतियां लिखी है। इसकी कथा जनप्रिय रही है और उसके पढ़ने एवं लिखने में विद्वानों एवं जन साधारण ने विशेष रुचि ली है। रचना स्थान सोजत्रा नगर में स्थित सुपार्श्वनाथ का मन्दिर था। रास का रचनाकाल संवत् १६०० श्रावण सुदी पञ्चमी है। कवि ने उक्त परिचय निम्न छन्दों में दिया है—

काष्ठासंघ नंदी तट गच्छ, विद्या गुण विद्याइ स्वच्छ।
रामसेन यति गुणनिला, परम सनेह आगुर भला ॥४६७॥

विमलसेन तस पाटि जाणि, विशालकीर्त्ति हो आगुध जाण।
तस पट्टोधर महा मुनीश, विश्वसेन सूरिवर जगदीस ॥४६८॥

सकल शास्त्र तणु भंडार, सर्व दिगंबरनु शृंगार।
विश्वसेन सूरीश्वर जाण, गच्छ जेहनो मानि आण ॥४६९॥

तेह तणु दासानुदास, सूरि विद्याभूषण जिनदास।
आणी मन मांहि उल्हास, रचीन्द्र रास शिरोमणिदास ॥४७०॥

महानयर सोजत्रा ठाम, त्याह सुपास जिनवरनु धाम।
भट्टोरा ज्ञाति अभिराम, नित नित करि धर्मना काम ॥४७१॥

संवत सोलसि श्रावण मास, सुकल पचमी दिन उल्हास।
कहि विद्याभूषण सूरी सार, रास ए नदु कोड वरीस ॥४७२॥

भाषा

रास की भाषा राजस्थानी है जिस पर गुजराती भाषा का प्रभाव है।

छन्द

इसमें दूहा, चउपई, वस्तुबंध, एवं विभिन्न ढाल है।

२ भट्टारक सम्प्रदाय—पृष्ठ संख्या—२७१

प्राप्ति स्थान—रास की प्रति दि० जैन मन्दिर बडा तेरह पथियो के शास्त्र भडार के एक गुटके मे सग्रहीत है। गुटका का लेखन काल स० १६४३ से १६६१ तक है। रास का लेखनकाल स० १६४३ है।

२८. ज्ञानकीर्ति

ये वादिभूषण के शिष्य थे। आमेर के महाराजा मानसिंह (प्रथम) के मन्त्री नानू गोधा की प्रार्थना पर इन्होने 'यशोधर चरित्र' काव्य की रचना की थी।[1] इस कृति का रचनाकाल सवत् १६५९ है। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्र भडार मे सग्रहीत है।

श्वेताम्बर जैन संत

अब तक जितने भी सन्तो की साहित्य-सेवाओ का परिचय दिया गया है, वे सब दिगम्बर सन्त थे, किन्तु राजस्थान मे दिगम्बर सन्तो के समान श्वेताम्बर सन्त भी सैंकडो की सख्या में हुए हैं—जिन्होने सस्कृत, हिन्दी एव राजस्थानी कृतियो के माध्यम से साहित्य की महती सेवा की थी। श्वेताम्बर कवियो की साहित्य सेवा पर विस्तृत प्रकाश कितनी ही पुस्तको मे डाला जा चुका है। राजस्थान के इन सन्तो की साहित्य सेवाओ पर प्रकाश डालने का मुख्य श्रेय श्री अगरचन्द जी नाहटा, डा० हीरालाल जी माहेश्वरी प्रभृति विद्वानो को है जिन्होंने अपनी पुस्तको एव लेखो के माध्यम से उनकी विभिन्न कृतियो का परिचय दिया है। प्रस्तुत पृष्ठो मे श्वेताम्बर समाज के कतिपय सन्तो का परिचय उपस्थित किया जा रहा है—

२९. मुनि सुन्दरसूरि

ये तपागच्छीय साधु थे। सवत् १५०१ मे इन्होने 'सुदर्शनश्रेष्ठिरास' की रचना की थी। कवि की अब तक १८ से भी अधिक रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। जिनमें 'रोहिणीय प्रबन्धरास', जम्बूस्वामी चौपई', 'वज्रस्वामी चौपई', अभय-

---

[1] इति श्री यशोधरमहाराजचरित्रे भट्टारकश्रीवादिभूषण शिष्याचार्य श्री ज्ञानकीर्तिविरचिते राजाधिराज महाराज मानसिंह प्रधानसाह श्री नानूनामाङ्किते भट्टारकश्रीअभयरुच्यादि दीक्षाग्रहण स्वर्गादि प्राप्त वर्णनो नाम नवम सर्ग।

कुमार श्रेणिकरास' के नाम विशेषत. उल्लेखनीय हैं। श्री अगरचन्द जी नाहटा के अनुसार मुनि सुन्दर सूरि के स्थान पर मुनिचन्द्रप्रभ सूरि का नाम मिलता है।[1]

३०. महोपाध्याय जयसागर

जयसागर खरतरगच्छाचार्य मुनि राजसूरि के शिष्य थे। डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने इनका सवत् १४५० से १५१० तक का समय माना है[2] जब कि डा० प्रेमसागरजी ने इन्हे सवत् १४७८–१४९५ तक का विद्वान माना है।[3] ये अपने समय के अच्छे साहित्य निर्माता थे। राजस्थानी भाषा मे निबद्ध कोई ३२ छोटी बडी कृतिया अब तक इनकी उपलब्ध हो चुकी हैं। जो प्राय स्तवन, वीनती एव स्तोत्र के रूप मे है। सस्कृत एव प्राकृत के भी ये प्रतिष्ठित विद्वान थे। 'सन्देह दोहावाली पर लघुवृत्ति', उपसर्गहरस्तोत्रवृत्ति, विज्ञप्ति त्रिवेणी, पर्वरत्नावलि कथा एव पृथ्वीचन्दचरित्र इनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

३१. वाचक मतिशेखर

१६वी शताब्दि के प्रथम चरण के श्वेताम्बर जैन सन्तो मे मतिशेखर अपना विशेष स्थान रखते हैं।[4] ये उपकेशगच्छीय शीलसुन्दर के शिष्य थे। इनकी अब तक सात रचनायें खोजी जा चुकी है जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१ धन्नारास (स० १५१४)
२ मयणरेहारास (स० १५३७)
३ नेमिनाथ बसत फुलडा
४ कुरगडु महर्षिरास
५ इलापुत्र चरित्र गाथा
६ नेमिगीत
७ बावनी

३२. हीरानन्दसूरि

ये पिप्पलगच्छ के श्री वीरप्रभसूरि के शिष्य थे।[5] हिन्दी के ये अच्छे कवि थे।

---

१ परम्परा–राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल–पृष्ठ सख्या ५६
२ राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ सख्या २४८
३. हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि—पृष्ठ सख्या ५२
४ राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ स० २५१
५ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ सख्या ५४

अब तक इनकी वस्तुपाल तेजपाल रास (स० १४८४) विद्याविलास पवाडो (वि०स० १४८५) कलिकाल रास (वि० स० १४८६) दशार्णभद्ररास, जबूस्वामी वीवाहला (१४६५)और स्थूलिभद्र बारहमासा आदि महत्वपूर्ण रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं। विद्याविलास का मगलाचरण देखिये जिसमे ऋपभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्व नाथ, महावीर एव देवी सरस्वती को नमस्कार किया गया है—

पहिलु प्रणमीय पढम जिणेसर सत्तु जय अवतार।
हथिणाउरि श्री शाति जिणेसर उज्जति निमिकुमार।

जीराउलिपुरि पास जिणेसर, साचउरे वर्द्धमान।
कासमीर पुरि सरसति सामिणि, दिउ मुझ नई वरदान॥

३३. वाचक विनयसमुद्र

ये उपकेशीयगच्छ वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। इनका रचना काल सवत् १५८३ से १६१४ तक का है। इनकी बीस रचनाओ की खोज की जा चुकी है। इनके नाम निम्न प्रकार है—

१	विक्रम पचदड चोपई	(स० १५८३)	पद्य सख्या ५६३
२	आराम शोभा चौपई	,,	पद्य सख्या २४८
३.	अम्बड चौपई	१५९९	
४.	मृगावती चौपई	१६०२	
५	चित्रसेन पद्मावतीरास	१६०४	पद्य सख्या २४७
६	पद्मचरित्र	१६०४	
७	शीलरास	१६०४	पद्य सख्या ४४
८	रोहिणीरास	१६०५	
९	सिंहासनबत्तीसी	१६११	
१०	पार्श्वनाथस्तवन	,,	पद्य सख्या ३९
११	नलदमयन्तीरास	१६१४	,, ३०५
१२	सग्राम सूरि चौपई	,,	
१३	चन्दनबालारास	,,	
१४	नमिराजर्षिसधि	,,	पद्य सख्या ६९
१५	साधु वन्दना	,,	,, १०२
१६	ब्रह्मचरी गाथा	,,	५५

१ देखिये परम्परा—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ स० ६६-७६

कतिपय लघु कृतियां और उद्धरण

भट्टारक सकलकीर्त्ति (स० १४४३-१४९९)

सार सीखामणि रास (पृष्ठ सख्या १-२१/१७)

प्रणमवि जिणवर वीर, सीखामरिण कहिसु ।
समरवि गोतम धीर, जिरणवाणी पमरणेसु ॥१॥

लाख चुरासी माहि फिर तु, मानव भव लीधु कुलवतु ।
इन्द्री आयु निरामय देह, बुधि बिना विफल सहु एह ॥२॥

एक मना गुरु वारिण सुरगीजि, बुद्धि विवेक सही पामीजि ।
पढउ पढावु आगम सार, सात तत्व सीखु सविचार ॥
पढउ कुशास्त्र म काने सुरगु, नमोकार दिन रयरणीय गुरगु ॥३॥

एक मना जिनवर आराधु, स्वर्ग मुगति जिन हेला साधु ।
जाख सेष जे बीजा देव तिह तरणी नवि कीजे सेव ॥४॥

गुरु निर्ग्रंथ एक प्रणमीजि, कुगुरु तरणी नवि सेवा कीजि ।
धर्मवंत नी सगति करु, पापी सगति तम्हे परिहरु ॥५॥

जीव दया एक धर्म करीजि, तु निश्चे ससार तरीजि ।
श्रावक धर्म करु जगिसार, नहि भुल्यु तम्हे सयम भार ॥६॥

धर्म प्रपच रहित तम्हे करु, कुधर्म सवे दूरि परिहरु ।
जीवत माइ बाप सु नेह, धर्म करावु रहित सदेह ॥७॥

मूया पूठि जै काई कीजि, ते सहूइ फोकि हारीजि ।
दृढ समकित पालु जगिसार, मूढ पणु मूकु सविचार ॥८।

रोग क्लेश उप्पना जाणी, धर्म करावु शकति प्रमाणी ।
मडल पूछ कहि नवि कीजि, करम तणा फल नवि छूटीजि ॥९॥

आव्यइ मरण तम्हे दृढ होज्यो, दीक्ष्या अणसरण वन्हि लेयो ।
धर्म करी निफल मनभांगु, मारगि मुगति तणि तम्हे लागु ॥१०॥

गुति आम्बर मथ्यात न कीजइ सका नवि टाली घालीजि ।
जे समकित पालि नरनार, ते निश्चि तिरसि संसार ॥११॥
ये मिथ्यात घणेरु करेसि, ते संसार घणु बूडेसि ॥

--वस्तु--

जीव राखु जीव राखु काय छह भेद ।
अजीव लक्ष चिह्न अगलो एक चित्त परणाम आणीइ ।
चालत विरात गूयता जीव जतु सठाण जाणीय ॥
जे नर मन कोमल करी, पालि दया अपार ।
सार भोग नवि भोगवी, ते तिरसि संसार ॥

--ढाल बीजी--

जीव दया दृढ पालीइए, मन कोमल कीजि ।
आप सरीसा जीव सवे, मन माहि धरीजइ ॥

नाहण धोयण काज सवे, पाणी गली धरु ।
अणगल नीर न जडोलीइए दातण मन मोडु ॥

गाढि घाइ न मारीइए सवि चुपद जाणु ।
कणसल कण मन वणज करु, मन जिम वा आणु ॥

पसूय गाढू नवि वाधीइए, नवि छेदि करीजि ।
मानउ पहिरु लोभ करी, नवि भार करीजि ॥

लहिणि देवि काज करी, लाघणि म करावु ।
च्यार हाथ जोईय भूमि, तम्हे जाउ आवु ॥

फासू आहार जामिलु, मन आफणी राधु ।
अ गीठु मन तम्हे करु मन आयुध साधु ॥

लाकड न विकयावीइए नाह्लाम चडावु ।
सगा तणा वीवाह सही, म करु म करावु ॥

लोह मधु विष लाख ढोर विवसा छाडवु ।
मिण महूजा कद मूल माखण मत वावु ॥

कटोल सावू पान धाहि धाणी नवि कीजइ ।
खटकसाल हथीयार आगि मांग्या नवि दीजि ॥

नारी बालक रीस करी कातर मन मारु ।
तिल विट जल नवि घालीइए मूया मन सारु ।।

झूठा वचन न बोलीइए करकस परिहरु ।
मरम म बोलु किहि तणा ए चाडी मन करु ।।

घम करता न वारीइए नवि पर नदीजि ।
परगुण ढाकी आप तणा गुण नवि बोलीजइ ।।

नालजथाई न बोलीइए हासु मन करु ।
आलन दीजि काणी परि नवि दूषण घरु ।।

अप्रीछय नवि बोलिइए नवि बात करीजइ ।
गाल न दीजि वचन सार मीठु बोलीजि ।।

परिधन सवि तम्हे परिहरु ए चोरी नावे कीजइ ।
चोरी आणी वस्तु सही मूलि नवि लीजि ।

अधिक लेई निकीणीय परि उछु मन आलु ।
सखर विसाणा माहि सही निखर मन घालु ।।

थापणि मोसु परिहरुए पडीउ मन लेयो ।
कूडु लेखु मन करुए मन परत्यह कीयो ।।

घरनारी विण नारि सवे माता सभी जाणु ।
परनारी सोभाग रूप मन हीयडु आणु ।।

परनारी सुं बात गोठि सगति मन करु ।
रूप नरीक्षण नारि तणु वेश्या परिहरु ।।

परिग्रह सख्या तम्हे करुए मन पसर निवारु ।
नाम विना नवि पुण्य हुइ हुइ पाप अपारु ।

—वस्तु—

तप तपीजइ तप तपीजइ भेद छि बार ।
करम रासि इ घण अग्नि स्वर्ग मुगति पग थीय जाणु ।
तप चिंतामणि कलपतरु वस्य पच इ द्रीप आणु ।
जे मुनिवर सकति करी तप करेसि घोर ।
मुगति नारि वरसि सही करम हणीय कठोर ।।

—अथ ढाल त्रीजी—

देश दिशानी सख्या करु, दूर देश गमन परिहरु ।
जिणि नयर धर्म्म नाव कीजि, तिणि नयर वासु न वसीजि ।

देश वर्त्त तम्हे उठी लेयो, गमन तणी मरयाद करेयो ।
दूषण सहित भोग तम्हे टालु, कदमूल अथाणा रालु ॥

मेलर फूल सवे वीली फल, पत्र साक विगण कालीगड ॥
बोर महूजा अण जाण्या फल, नीम करेयो तम्हे जावू फल ।

धानसाल ना घोल कहीजि, दिज विहु पूठि नीम करीजि ।
स्वाद चल्या जे फूल्या धान, नाम नही ते माणस खान ॥

दीन सहित तम्हे व्यालू करु, राति आहार सवि परिहरु ॥
उपवास अवलु फल पामीजइ, आण फल दातेन धरीजि ॥

एक वार विवार जमीजइ, अरता फिरता नवि खाईजइ ।
वस्तु पाननी सख्या कीजि, फूल सचित्त टाली घालीजि ॥

अण काल सामायक लेयो, मन रु धानि ध्यान करेयो ।
आठमि चौदिश पोसु धरु, धरहु तणा पातिक परिहरु ॥

उत्तम पात्र मुनीश्वर जाणु, श्रावक मध्यम पात्र वखाणु ॥
आहार ऊषध पोथी दीजइ, अभयदान जिन पूजा कीजइ ॥

थोडु दान सुपात्रा दीजि, परिभवि फल अनत लहीजइ ।
दान कुपात्रा फल नवि पावि, ऊसर भूमि बीज व आवि ।

दया दान तम्हे देयोसार, जिणवर बिब करु उद्धार ॥
जिणवर भवननी सार करेज्यो, लक्ष्मीनु फल तम्हे लेज्यो ॥

—वस्तु—

दमु इन्द्री दमु इन्द्री पच छि चोर
धर्म रत्न चोरी करीय नरग माहि लेईय मूकि ।
सवहु दु'खनी खाण जीय रोग सोक भडार ढूकि ।
जे तप खडग धरीय पुरुष इन्द्री करि सघार ।
देवलोक सुख भोगवी ते तिरसि ससार ॥

—अथ ढाल चुथी—

योवन रे कुटब हरिधि लक्ष्मीय चचल जाणीइए ।
जीव हरे सरण न कोई धर्म विना सोई आणीइए ।।

ससार रे काल अनादि जीव आगि घणु फिरयु ए ।
एकलु रे आवि जाइ कर्म आठे गलि धरयुए ।

काय धीरे जू जूउ होइ कुटब परिवारि वेगलुए ।
शरीर रे नरग भडार मूकीय जासि एकलु ए ।

खिमा रे खडग धरेवि क्रोध विरी सघारीइए ।
मार्द्दव रे पालीइ सार मान पापी परु टालीइए ।

सरलु रे चित्तकरेवि माया सवि दूरि करुए ।
सतोष रे आयुध लेवि लोभविरी सघारीइए ।

वेराग रे पालीइ सार, राग टालु सकलकीर्त्ति कहिए ।
जे भणिए रास ज "सार सीखा मणि" पढते लहिए ।

इति सीखामणिरास समाप्त·

—

ब्रह्म जिनदास (समय १४४५-१५१५)

सम्यक्त्व-मिथ्यात्वरास[1]

ॐ नम सिद्धेभ्य

[१]

ढाल वीनतीनी

सरसति स्वामिणि वीनवउ मागू एक पसाउ ।
तम्ह परसादेइ गाइस्यु, रुयडो जिणवर राउ ।।१।।

सहीए समाणीए तम्हे सुणो भुणउ अम्हारीए वात ।
जिण चैत्यालइ जाइस्यु छांडि घरकीय गात ।।२।।

अ ाग पखालीसु आपणो, पहिरीसु निरमल चीर ।
जिन चैत्यालेइ पैसता निरमल होइ सरीर ।।३।।

जिणवर स्वामिइ पूजीए वादीए सहगुरु पाय ।
तत्व पदारय सामलि निरमल कीजिए काय ।।४।।

सहगुरु स्वामि तम्हे कहु, श्रावक धर्म वीचार ।
उतीम धरम जगि जाणिए उतीम कुलि अवतार ।।५।।

सहगुरु स्वामिय बोलीया मधुरीय सुललीत वाणि ।
श्रावक धरम सुणो निरमलो जीम होइ सुखनीय खाणि ।।६।।

समिकित निरमल पालीए, टालि मिथातह कद ।
जिणवर स्वामिय ध्याइए, जैसो पूनिम चद ।।७।।

वस्त्राभरण थाए वेगला जयमालि करी नवि होइ ।
नारी आयुध थका वेगला, जिन तोलै अवर न वोइ ।।८।।

सोम मूरति रलीयावणा वीकार एक न अ गि ।
दीसता सोहावणा, ते पूजो मनरगि ।।९।।

इन्द्र नरेन्द्रइ पुजीया न जिणवर मुगति दातार ।
निरदोष देव एह्वा ध्याइये, जीम णमो भवपार ।।१०।।

अवर देव नवी मानीइ दूखण सहीत वीचार ।
मोहि करमि जे मोहीया ते अजू भमिसी ससारि ।।११।।

---

१ ब्रह्म जिनदास कृत-विशेष परिचय देखिये पृष्ठ सख्या ३८-३९ तक

वस्त्राभरणइ मडीया, सरसीय दीसे ए नारी ।
आयुध हाथि बीहावणो, अजीय नमु कीय मारी ॥१२॥

जे आगलि जीव मारेए ते, कीम कहीय ए देव ।
युजें धरमन पामीइ, झणी करो तेहनीय सेव ॥१३॥

दीसता वीहावणा देवदेवी तेह जाणो ।
रौद्रध्यान दीठें उपजे झणीकरो तेह ॥१४॥

वडपीपल नवि पुजीए, तुलसी मरोय उवारि ।
द्रोव छाड नवि पूजिए, एह वीचारउ नारि ॥१५॥

उबर थामन पूजीए, काजिणी चूलहउ आगि ।
घागरि मडका पूजी करी, ते कान्ह फल मन मागि ॥१६॥

सागर नदीयन पुजीए, वावि कूवा अडसोइ ।
जलवा एन जुहारीय ए, सवे देव न होइ ॥१७॥

गजघोडा नवि पुजीए, पसुव गाइ सवे मोर ।
काग वास जे नाखि से, माणस नही ते ढोर ॥१८॥

खीचड पीतर न पुजीए, एकल निडम घालो ।
मूआ पुठे नवि कलपीए, कुदान की हानम आलो ॥१९॥

उकरडी नवि पुजीए, होलीय तम्हे म जुहारो ।
गणागउरि नवि मानीइ, भवा मिथ्यात नी वारो ॥२०॥

[२]

ढाल बीजी

मिथ्यात सयल नीवारीए, जाग म रोपउ नारि ।
माटी कोराउतु करीए, पछे किम मोडीए गवारि ॥१॥

तामटे धान बोवावीए कहीए रना देवि तेह ।
सात दीवस लागें पूजीए, पछे किम बोलीए तेह ॥२॥

जोरनादेवि पुत्र देइ, तो कोई वांझीयो न होइ ।
पुत्र धरम फल पामीइ, एह वीचार नु जोइ ॥३॥

धरमइ पुत्र सोहावणाए, धरमइ लाछि भण्डार ।
धरमइ घरि वधावणा, धरमइ रूप अपार ॥४॥

इम जाणी तम्हे धरम करो, जीवदया जगि सार ।
जीम एहा फल पामीइ, वली तरीए ससारि ॥५॥

सीलि सातमि द्रोव आठमि, नवलि नेमि दुखखाणि ।
जीवरती सयल निवारीइ, जीम पामो सुखखाणि ॥६॥

आदित रोट तम्हे झणी करो, माहा माइ पुज निवारि ।
कलप्प कहो किम खाइए, श्रावक धरम मझारि ॥७॥

गुरुणा रोट तम्हे भणी करो, नारीय सयल सुजाणि ।
रोट दीढें नवि गुझीए, ग्रझीए पापें वखाणि ॥८॥

रोट तुठें नवि सोभाग रुठें दोभागजि होइ ।
धरमे सोभाग पामीऐ, पापें दो भाग जिहोइ ॥९॥

रोट वरत जे नारि करे, मनि धरि अति बहुभाउ ।
घीय ग्रुल दहि काकडि, ए खवा को उपाय ॥१०॥

जाग भोग उतारणा, मडल सयल मिथ्यात ।
सका सबल निवारीए, बाडीए मूढ तणी वात ॥११॥

नव राव भोडण न पुजीए, एह मिथ्यातजी होइ ।
नवराति जीवा मेरे घणा, एह वीचार तु जोइ ॥११॥

कुल देवता नवि मानइ, दीराडी मिथ्यातजी होइ ।
जिण सासण ध्याउ निरमलो, एह वीचार तु जोइ ॥१३॥

[३]

ढाल सहेलडी की

मू वा बारसी म करो हो, सराधि मिथ्यातजि होइ ।
परोलोकी जीव किम पामिसि हो, एह वीचारतु जोइ साहेलडी ॥१॥

जिन धरम अराधि सुचदो, छेदि मिथ्यातह कदो ।

पीतर पाटा तम्हे मलीखोहो, एह मीथ्या तजिहोइ ।
मू वो जीव कीम पाछो आवे, एह वीचार तु जोइ सहेलडी ॥२॥

ग्रहणममानो राहतणी हो, एह मिथ्यात जी होइ ।
चाद सूरिज इद्र निरमला हो, एह ने ग्रहण न होइ सलेलडी ॥३॥

माहमना हो सु दरि हो, एह, मिथ्यात जी होइ ।
अनगलि नीर जीव मरे घणाहो, एह वीचार तु जोइ ॥ सहे० ॥४॥

इग्यारसि सोमवार दितवार हो,ए लोकीक धरम होइ ।
साच्यो दितवार म करो हो, एह वीचार तु जोइ ।। सहे० ।।५।।

डावें हाथि तम्हे म जीमो हो, नवसीइ फलनवि होइ ।
अपवित्र हाथ ए जाणीइ हो, ए बीचार तु जोइ ।। सहे० ।।६।।

कष्ट भक्षरण तम्हे म करोहो, एह मिथ्यातजि होइ ।
आतमा हत्याय नीय जो हो, एह वीचार तु जोइ ।। सहे० ।।७।।

सीता मदोवरि द्रौपदी हो, अ जना सु दरी सती होइ ।
कष्ट भक्षरण इरों नवी कीयाए, एह वीचार तु जोई ।। सहे० ।।८।।

तारा सुलोचना राजमती हो, चदन बाला सती होइ ।
कष्ट भक्षरण नवि इगो कीया, एह वीचार तु जोइ ।। सहे० ।।६।।

नीलीय चेलरणा प्रभावती हो, अनतमती सती होइ ।
कष्ट भक्षरण नवि इन्हु कीधो, एह वीचार तु जोइ ।। सहे० ।।१०।।

ब्राह्मिय सु दरि अहिल्यामती हो, मदनमजूषा सती होइ ।
कष्ट भक्षरण नवि इन्हु कीधो, एह वीचार तु जोइ ।। सहे० ।।११।।

रुकुमीरिण जांबुवती सतीभामाहो, लक्षमीमती सती होइ ।
कष्ट भक्षरण नवि इन्हु कीधो, एह वीचार तु जोइ ।। सहे० ।।१२।।

एह्वी मरण न वाछीए हो, कुमरणें सुगति न होइ ।
समाधि मरण नीत वाछीए हो, जीम परमापद होइ ।। सहे० ।।१३।।

तप जप ध्यान पुजा कीधें हो, सीयल पालें सती होइ ।
सीयली आगि तम्हे अनदिनसाधो, जीम परमापद होइ ।। सहे० ।।१४।।

इम जारिण निश्च्यो करिहो, मिथ्यात भरणी करो कोइ ।
समिकीत पालो निरमलो हो, जीम परमापद होइ ।। सहे० ।।१५।।

पारिण मथिइ जीम घी नही हो, तुष माहि चोउल न होइ ।
तीम मिथ्या धर्म सर्म बहु कीधे, श्रावक फल नवि होइ ।। सहे० ।।१६।।

[४]

भास रासनी

पचम कालि अज्ञान जीव मिथ्यात प्रगस्यो अपारतो ।
मूढें लोकें बहु आदर्‌योए, कोरण जाणे एह पारतो ।।१।।

केवली भास्यु घरम करोए, श्रावक तुम्हे इसु जाणतो ।
निग्रयगुरु उपदेसीयाए तेहनी करउ वखाणतो ॥२॥

जीव दया व्रत पालीयए, सत्य वयरण बोलो मारतो ।
परधन सयल निवारीयए, जीम पामो भवपारतो ॥३॥

शीयल वरत प्रतिपालीयए, त्रिभुवन माहि जे मारनो ।
परनारी सवे परहरोए, जीम पामो भव ए पारतो ॥४॥

परिग्रह सख्या (एया) तम्हे करो ए, मन पसरनो निवारितो ।
नीम घणा प्रतिपालीयए, जीम पामो भव पारतो ॥५॥

दान पुजा नित निरमनए, माहा मत्र गणो णवकारतो ।
जिणवर भुवन करावीयए, जीम पामो भव पारतो ॥६॥

चरम पात्र घृत उदकए, छोती सयल नीवारि तो ।
आचार पालो निरमलोए, जीम पामो भव पारतो ॥७॥

सोलकारण व्रत तम्हे करोए, दश लक्षण भव पारतो ।
पुष्पाजलि रत्नत्रयह, जीम पामो भव पारतो ॥८॥

अक्षयनिधि व्रत तम्हे करो, सुगध दशमि भव पारतो ।
आकासपाचमि निर्झरपाचमीय, जीय जीम पामो भवपारतो ॥९॥

चादन छठी व्रत तम्हे करो ए, अनतवरत भव तारतो ।
निर्दोष सातमि मोड सातमिह, जीम पामो भव पारतो ॥१०॥

मुगतावलि व्रत तम्हे करोए, रतनावलि भव तारतो ।
कनकावलि एकावलिए, जीम पामो भवपारतो ॥११॥

लवधवीधान व्रत तम्हे करोए, श्रुतकद भव तारतो ।
नक्षत्रमाला कर्म निर्जरणीय, जीम पामो भव पारतो ॥१२॥

नदीस्वर पगति तम्हे करोए, मेर पगति भव तारतो ।
विमान पगति लक्षण पगतीय, जीम पामो भवपारतो ॥१३॥

शीलकल्याण व्रत तम्हे करोए, पाच ज्ञान भव तारतो ।
सुख सपति जिणगुण सपतीय,जीम पामो भव पारतो ॥१४॥

चोवीस तीर्थंकर तम्हे करोए, भावना चौवीसी भव तारतो ।
पल्योपम कल्याणक तम्हे करोए, जीम पामो भव पारतो ॥१५॥

चारित्र सुधि तप तम्हे करोए, धरम चक्र भव तारतो ।
जतिय वरत सवे निरमलाए, जीम पामो भवपारतो ॥१६॥

दीवाली अब तम्हे करोए, आखातीज भव तारतो ।
बीजय दशमि वलि राखीडी ए, जीम पामो भव पारतो ॥१७॥

आठमि चोदसि परव तीथि, उजालि पाचमि भव तारतो ।
पुरदरविधान तम्हे करोए,जीम पामो भव पारतो ॥१८॥

जीण सासण अनत गुण कहो, कीम लाभ ए पारतो ।
केवल भाक्षो (ख्यो) धर्म करोए, जीम पामो भव पारतो ॥१९॥

समिकित रासो निरमलो ए, मिथ्यातमोड एकदतो ।
गावो भवीयण रुवडोए, जीम सुख होइ अनदतो ॥२०॥

श्री सकलकीर्ति गुरु प्रणमीनए, श्री भवनकीर्ति भवतारतो ।
ब्रह्म जिणदास भणे ध्याइए, गाइए सरस अपारतो ॥२१॥

॥ इति समिकितरासनु मीथ्यात मोड समाप्त ॥

आमेर शास्त्र भडार जयपुर

गुर्वावलि[1] (रचनाकाल स० १५१८)

बोली

तेह श्री पद्मसेन पट्टोधरण ससारसमुद्र तारणतरण सन्मार्गचरण पचेन्द्रिय विसिकरण एकासीमइ पाटि श्री भुवनकीर्ति राउलजपन्ना पुण जिणि श्री भुवनकीर्तिइ ढीली नयर मध्य शुलतान श्री वडा महिमु दसाह समातरि आपणी विद्यानि प्रमाणि निराधार पालखी चलावी। सुलताण महिमु दसाह सह थइ मान दीधु। तेह नयर मध्य पत्रालवन वाधी पच मिथ्यात्व वादी वृदराज सभाइ समस्त लोक विद्यमान जीता। जिनधर्म प्रगट कीधु। अमर जस इणी परि लीधु। अनि तेह श्री गुरु तणि पाटि श्री भावसेन अनि श्री वासवसेन हूया। जे श्री वासवसेन मलमलिन गात्र चारित्रपात्र नित्य पक्षोपवास अनि अ तराइ निसयोग मासोपवास इसा तपस्वी इणि कालि हूया न कोहसि। अनि तेहनि नामि तथा पीछीनि स्पर्शि समस्त कुष्टादिक व्याधि जाति। तेह गुरु ना गुण केतला एक, वोलीइ॥ हवि श्री भावसेन देव तणि पाटि श्री रत्नकीर्ति उपन्ना।

छंद त्रिवलय

श्रीनदीतटगच्छे पट्टे श्रीभावसेनस्य।
नयसाखाश्रृ गारी उपन्नो रयणकीत्तिया॥१॥

उपनु रयणकीत्ति सोहि निम्मल चित्त।
हूउ विख्यात क्षिति यतिपवरो॥

जीतु जीतु रे मदन बलि सक्यु न वाही—
छलि जिनवर धम्म वली धुरा-धरो॥

जाणि जाणि रे गोयम स्वामि तम नासि जेह नामि।
रह्यु उत्तम ठामि मडोयरण॥

छाड्यु छाड्यु रे दुर्जय क्रोध अभिनवु एह योध।
पचेइ द्री कीधु रोध एकक्षण॥२॥

उद्धरण तेह पाट नरयनी भाजी वाट
माडीला नवा अघाट विवह पार॥

---

१ आचार्य सोमकीर्त्ति की इस कृति का परिचय देखिये पृष्ठ सख्या—४३ पर देखिये।

आणि आणि रे जेन माण सर्वविद्या तणु जाण ।
नरवरहि आण रग भार ।।
दीसि दीसि रे अति झूझार हेलामाटि जीतु मार ।
घडीयन लागी वार वरह गुरो ।।
इणी परि अति सोहि भवीयण मन मोहि ।
ध्यानहय आरोहि श्रीलक्ष्मसेन आणद करो ।।३।।

कहि कहि रे ससार सार म जाणु तम्हे असार ।
अत्थि अति असार भेद करी ।।
पूजु पूजु रे अरिहत देव सुरनर करि सेव
हवि मलाउ खेव भाव धरी ।।
पालु पालु रे अहसा धम्म मणूयनु लाधु जम्म ।
म करु कुत्सित कम्म भव हवणे ।।
तरु तरु रे उत्तम जन अवर म आणु मनि ।
ध्याउ सर्वज्ञ घन लख्मसेन गुरु एम भणें ।।४।।

दीठि दीठि रे अति आणद मिथ्यातना टालि कद ।
गयण विहूणउ चद कुलहितिलु ।
जोइ जोइ रे रयणी दीसि तत्वपद लही कीशि ।
धरि आदेश शीशि तेह भलु ।।
तरि तरि रे ससार कर तिजगुरु मूकिइए ।
मोकलु कर दान भणी ।।
छडि छडि रे रठडी वाल लेइ बुद्धि विशाल ।
वाणीय अति रसाल लख्मसेन मुनिराउ तणी ।।५।।

श्री रयणकीर्ति गुरु पट्टि तरणि सा उज्जल तपैं ।
छडावी पाखड धम्मि मारगि आरोपैं ।।
पाप ताप सताप मयण मछर भय टाले ।
क्षमा युक्त गुणराशि लोभ लीला करि राले ।।
बोलिज वाणि अम्मी अग्गली सावयजन घन चित्त हर ।
श्री लख्मसेन मुनिवर सुगुरु सयल सघ कल्याण कर ।।६।।

सगुण जगुण भडार गुणह करि जण मण रजैं ।
उवसम हय वर चडवि मयण भडइ वाइ भजैं ।।

रयणायर गंभीर धीर मंदिर जिम सोहै ।
लख्म सेन गुरु पाटि एह भवीयण मन मोहै ।
दीपति तेज दणीयर सिसुमच्छत्ती मणमाणहर ।
जयवंता चउ वय संघसु श्रीधर्मसेन मुनिवर पवर ॥१॥

पहिरवि सील सनाह तवह चरणु कडि कछीय ।
क्षमा खडग करि धरवि गहीय भुज बलि जय लछी ॥
काम कोह मद मोह लोह आवतु टालि ।
कट्ठ संघ मुनिराउ गछ इणी परि अजूयालि ॥
श्री लखमसेन पट्टोधरण पाव पंक छिप्पि नही ।
जे नरह नरिंदे वंदीइ श्री भीमसेन मुनिवर सही ॥ ॥

सुरगिरि सिरि को चडै पाउ करि अति वलवंतौ ।
केवि रणायर नीर तीर पुहुतउय तरतौ ॥
कोई आयासय माण हत्थ करि गहि कमतौ ॥
कट्ठ संघ गुण परिलहिउ विह कोइ न्हतौ ॥
श्री भीमसेन पट्टह धरण गछ सरोमणि कुल तिलौ ।
जाणति सुजाणह जाण नर श्री सोमकीर्ति मुनिवर भलौ ॥३॥

पनरहसि अठार मास आषाढह जाणु ।
अक्कवार पंचमी बहुल पष्यह वखाणु ॥
पुव्वा भद्द नक्षत्र श्री सोभीत्रिपुर वरि ।
सत्यासीवर पाट तणु प्रबंध जिणिपरि ॥
जिनवर सुपास भवनि कीउ श्री सोमकीर्त्ति बहु भाव धीर ।
जयवंतउ रवि तलि विस्तरु श्री शांतिनाथ सुपसाउ करि ॥४॥

गुटका दि० जैन मन्दिर बघेरवाल—नैंणवा

———

आदीश्वरफाग[1]

(जन्म कल्याणक वर्णन)

आहे चैत्र तणी वदि नवमीय सुन्दर वार अपार ।
रवि जनमी तइ जनमीया करइ जय जय कार ।।७३।।

आहे लगनादि कर्यू वरणवू जेणइ जनम्या देव ।
बाल पणइ जस सुरनर आव्या करवा सेव ।।७४।।

आहे घटा रव तव वाजीउ गाजीउ अम्बरि नाद ।
जिनवर जनम सु सीवउ दीधउ सघलइ साद ।।७५।।

आहे एरावण गज सज कर्यु सज कर्या वाहन सर्व ।
निज निज घरि थका नीकल्या कुणइ न कीधउ गर्व ।।७६।।

आहे नाभि नरेसर अ गण नइ गगणगण देश ।
देवीय देवइ पूरीयु नहीय किहीय प्रवेश ।।७७।।

आहे माहिमई इन्द्राणीय आणीय रूपउ बाल ।
इन्द्र तणइ करि सुन्दरी गावइ गीत विशाल ।।७८।।

आहे छत्र चमर करि धरता करता जय जय कार ।
गिरिवर शिखिर पहूत बहूत न लागीय वार ।।७९।।

आहे दीठउ पडुक कानन वर पचानन पीठ ।
तिहा जिन थापीय आखलि पाखलि इन्द्र वईठ ।।८०।।

आहे रतन जडित अति मोटाउ मोटाउ लीधउ कुम्भ ।
क्षीर समुद्र थकू पूरीय पूटीय आणीयू अम्भ ।।८१।।

आहे कुम्भ अदम्भ पणइ लेई ढाल्या सहस नइ आठ ।
ककण करि रणझणतइ भणतइ जय जय पाठ ।।८२।।

आहे दुमि दुमि तवलीय वज्जइ धुमि धुमि मद्दल नाद ।
टणण टणण टकारव झिणिझिणि झल्लर साद ।।८३।।

---

१. भ० ज्ञानभूषण एव उनकी कृतियों का विशेष परिचय पृष्ठ सख्या ४९-९३ पर देखिये ।

आहे अभिषव पूरउ सीधउ कीधउ अंगि विलेप ।
आगीय अंगिकारवाउ कीधउ बहू आक्षेप ॥८४॥

आहे आणीय वहुत विभूषण दूपण रहीत अभंग ।
पहिराव्या ते मनि रली वली वली जोअइ अंग ॥८५॥

आहे नाम वृषभ जिन दीधउ कीधउ नाटक चंग ।
रूप निरूपम देखीय हरिखइ भरिया अंग ॥८६॥

आहे आगलि पाछलि केईय केईय जमला देव ।
लेईय जिनपति सुरपति चालीउ करतउ सेव ॥८७॥

आहे अवीया गगन गमनि नवि लागीय वार लगार ।
नाभि धरगणि देवीय देव न लाभइ पार ॥८८॥

आहे नाभि पिता सखि वइठउ वइठीय मरुदेवी मात ।
खोलइ मूकीय वाल विशाल कही सहू वात ॥८९॥

आहे आपीय साटक हाटक नाटक नाचइ इन्द ।
नरखइ पागति परखइ हरखइ नाभि नरिन्द ॥९०॥

आहे जनम महोत्सव कीधउ दीधउ भोग कदम्ब ।
देव गया नृप प्रणमीय प्रणमीय जिनवर अंब ॥९१॥

आहे दिनि २ बालक वाधइ बीज तणु जिम चन्द ।
रिद्धि विवुद्धि विशुद्धि समाधि लता कुल कंद ॥९२॥

आहे देवकुमार रमाडइ मात जमाडइ क्षीर ।
एक धरइ मुख आगलि आणीय निरमल नीर ॥९३॥

आहे एक हसावइ ल्यावइ कइडि चडावीय बाल ।
नीति नहीय नहीय सलेखन नइ मुखिलाल ॥९४॥

आहे आगीय अंगि अनोपम उपम रहित शरीर ।
टोपीय उपीय मस्तकि बालक छइ पण वीर ॥९५॥

आहे कानेय कुण्डल झलकइ खलकइ नेउर पाइ ।
जिम जिम निरखइ हरखइ हियडइ तिमतिम माइ ॥९६॥

आहे सोहइ हाटकनू शुभ घाटि ललाटि ललाम ।
सहूअ बधावा नइ सिसि जोवा आवइ गाम ॥९७॥

आहे कोटइ मोटा मोतीयनु पहिराव्यु हार ।
पहिरीया भूषण रंगि न अंगि लगा रज भार ॥९८॥

आहे'करि पहिरावइ साकली साकली आपइ हाथि ।
रीखतु रीखुत चालइ चालइ जननी साथि ॥९९॥

आहे कटि कटि मेखल वाधइ वांधइ अंगद एक ।
कटक मुकट पहिरावइ जाणइ वहुत विवेक ॥१००॥

आहे घण घण घूघरी बाजइ हेम तणी विह्णु पाइ ।
तिमतिम नरपति हरखइ हरखइ मरुदेवी माइ ॥१०१॥

आहे वगनाउ वगनाउ मगनाउ लाडूआ मूंकइ आणि ।
थाल भरी नइ गमताउ गमताउ लिइ निजपाणि ॥१०२॥

आहे क्षिणि जोवइ क्षिणि सोवइ रोवइ लहीअ लगार ।
आलि करइ कर मोडइ ओडइ नवसर हार ॥१०३॥

आहे आपइं एक अकाल रसाल तणी करि साख ।
एक खवारइ खारिकि खरमाउ दाडिम द्राख ॥१०४॥

आहे आगलि मूंकइ एक अनेक अखोड वदाम ।
लेईय आवइ ठाकर साकर नावहु ठाम ॥१०५॥

ओह आवइ जे नर तेवर घेवर आपिइ हाथि ।
जिम जिम वालक वाधइ तिम तिम बाधइ आथि ॥१०६॥

आह अवर वतू सहू छाडीय माडीय मरकीय लेवि ।
आपइ थापइ आगलि रमति बहू मरूदेवि ॥१०७॥

आहे खाड मिलीय गलीय तलीय खवारइ सेव ।
सरगि थका नित सेवाउ जोवाउ आवउ देव ॥१०८॥

खाड मिली हरखिइ तली गली खवारइ सेव ।
कइ आवइ सेविवा केई जोवा देव ॥१०९॥

आहे आपइ एक अहीणीय फीणीय झीणीय रेख ।
अविय देवीय देव तणी देखाडइ देख ॥११०॥

आपइ फीणी मनिरली माहइ झीणी रेख ।
देवी आवइ सरगिथी देखाउइ ते देख ॥१११॥

आहे कोइ न आणइ अमरख कमरख मू कड पासि ।
वेलाइ वेलाइ सूनेला केलानी बहु रासि ॥११२॥

सूनेला केला भला काठेलानी गमि ।
केइ ल्यावइ कूकरणा कमरख मू कइ पासि ॥११३॥

आहे एक वजावइ वाजाउ निवजाउ आपइ एक ।
गावइ गायरण रायरण आपइ एक अनेक ॥११४॥

वाजइ वाजा अति घरणा निवजा एक अनेक ।
आपइ रायरण कोकडी पाका रायरण एक ॥११५॥

आहे गू द तलयउ गुरु गू द वडा वर गू द विपाक ।
आपइ कूलिरि चोलीय चोलीय आरणीय वाक ॥११६॥

आरणइ गू द वडा वडा सरिस्यु गू द विपाक ।
गू द तलिउ कूलेरि तरणउ चोली आरणइ वाक ॥११७॥

आहे एक आरणइ वर सोनाउ कोहला केरउ पाक ।
अ रिणरण आरणीय वावइ एक अनेक पताक ॥११८॥

आहे आरणइ साकर दूध विसूधउ दूध विपाक ।
आपइ एक जरणी घरणी खाडतरणी वर चाक ॥११९॥

साकर दूध कचोलडी सूधउ दूध विपाक ।
आपइ एक जरणी घरणी खाडतरणी वर चाक ॥१२०॥

आहे कोमल कोमल कमल तरणा फल आपइ सार ।
नहीय दहीय दहीयथरानउ धोक लगार ॥१२१॥

कमल तरणा फल टोपरा पस्ता आपइ सार ।
दहीय दहीयथ रातरणु वाक नहीय जगार ॥१२२॥

आहे वूरइ पूरइ पस तस खस खस आपइ एक ।
उन्हऊ पारणीय आरणीय अ गिकरइ नित सेक ॥१२३॥

आपइ वूरू खाडनू खसखस आपइ एक ।
चापेल वडइ चोपडी अ गि करइ जल सेक ॥१२४॥

आहे कोठइ मोटा मोतीय मोतीय लाडू हाथि ।
जोवाउ नित नित आवइ इन्द्र इन्द्रारणी साथि ॥१२५॥

कोटइ मोती अति भला मोती लाडू हाथि ।
जोवानइ आवइ वली इन्द्र सची बहु साथि ॥१२६॥

आहे चारउ लीनी वाचकी साकची आपइ एक ।
एक आपइ गुड बीजीय बीजीय फणस अनेक ॥१२७॥

आहे मायइ कूचीय ढीलीय नीलीय आपइ द्राख ।
नित नित लूण ऊतारइ जे मन लागइ चाख ॥१२८॥

चार तणा फल साकची सूका केला एक ।
पहू मागुड बीजी घणी आपइ फनस अनेक ॥१२६॥

सिरि कूची मोती भरी हाथिइ नीली द्राख ।
लूण उतारइ माडली जे मन लागइ चाख ॥१३०॥

आहे मान तणीया साहेलडी सेलडी आपइ नारि ।
छोलीय छोलीय आपइ वइठीय रहइ घर वारि ॥१३१॥

आहे जादरीया काकरीया घरेया लाडूआ हाथि ।
सेवईया मेवईया आपइ तिलवट साथि ॥१३२॥

सेव तणा आदिइ करी लाडू मूकइ हाथि ।
आणइ गुलभेला करी आपइ तिलवट साथि ॥१३३॥

आहे तीगण काईय आईय आणीय आपइ हाथि ।
तेवडा तेवडा वालक जमला चालइ साथि ॥१३४॥

नालिकेर नीला भला माडी आपइ हाथि ।
जमला तेवड तेवडा वालक चालइ साथि ॥१३५॥

आहे आपइ लीवुअ वीजाउ वीजउरा जबीर ।
जोईय जोईय मूकइ जिनवर बावन वीर ॥१३६॥

आपइ लीवू अतिभला वीजुरा जवीर ।
हाथि लेई जोअइ रयइ जिनवर बावन वीर ॥१३७॥

आहे साजाउ साजाउ करेउ कीधउ चूर खजूर ।
आपइ केईय जोअइ गाअइ वाअइ तूर ॥१३८॥

आपइ फलद खजूर गु केई खाजा चूर ।
केई गावइ गीतडा एक वजाउइ तूर ॥१३९॥

आहे श्रीयुत नित नित आवइ देव तणाउ सघात ।
अमिरिन आपइ आणीय क्षाणीयनी कुणवात ॥१४०॥

सन्तोस जय तिलक[1]

(संवत् १५९१)

सादिक

जा अज्ञान अधार भेदि करण, सन्यान दी वपठे ।
जा दुरत वंधु फरण एण हरण, दारक सुर्गसुह ॥
जादे वमगुणा तियन रमणी, मणिकत तारणी
सार्ज जं जिणवीर वयण सरिय वाणी अर्त निम्मल । १॥

रड

विमल उज्जल गुर गुर गणेहि,
सुविमल उज्जल गुर सुर सणेहि ।
सुण भवियण गह गहहि, गन सु सरि जणु कवल खिल्लहि ।
फल केवल पयडि यहि, पाप-पटल मिथ्यात पिल्लहि ॥
कोटि दिवाकर तेउ तपि, निधि गुण रतनकरडु ।
सो ग्रथमानु प्रमनु नितु तारण तरणु तरडु ॥२॥

भविय चित्त बहु विधि उल्हासणु ।
अठ कम्मह खिउ कारणु सुद्ध धम्मु दह दिसि पयासणु ॥
पावापुरि श्री वीर जिणु जने सु पहुत्तइ आइ ।
तव देविहि मिलि सठयउ समोसरणु बहु भाइ ॥३॥

जव सुदेखइ इद्र धरि ध्यानु नहु वाणी होइ जिण ।
तव सुर (क) पट मन महि उपायउ,
हुइ वभणु डोकरउ मच्च लोइ सुरपत्ति आयउ ॥
गोतमु नोतमु जह वसै अवरु सरोतमु वीरु ।
तत्थ पहुतउ आइ करि मघवै गुणिहि गहीरु ॥४॥

थिवरु वोलइ सुणहु हो विप्प तुम्ह दीसर विमलमति ।
इकु सन्देहु हम मनिहि थक्कइ,

---

१. ब्रह्म बूचराज एव उनकी कृतियो का परिचय पृष्ठ ७० पर देखियें ।

नहुतै साके मिलइ जासु हुत यह गाठि चुक्कइ ।
वीरु हुता मुझ गुरु मोनि रह्या लो सोइ ।
हउस लोकु लीए फिरउ अत्थु न कहइ कोइ ॥'॥

गाथा

हो कह हुथि वर वमण को अछै तुम्ह चित्ति सदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हउ अविरुल्लु बुद्धि पडितु ॥६॥

षटपदु

तीन काल षट्ठ दव्वि नव सु पद जीय खट्ठक्कहि ।
रस ल्हेस्या पचास्तिकाइ व्रत समिति सिगक्कहि ॥
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहु वेण महवै कहिउ वचनु यहु अरिहि न रुत्तिहि ॥
यहु मूलु भेदु निज जाणि यहु सुद्ध भाइ जे के गहहि ।
समक्कत्त दिहि मति मान ते सिव पद सुख वछित लहहि ॥७॥

एय वयण सवणि सभलि चयकिउ चितपुरइ न अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु, चल्लिउ पुणि तत्थ जथ जिणणाहु ॥८॥

रड

तव सुगोइमु चाल्लिउ गजतु, जणु सिवरू मत्तमय-।
तरक छद व्याकरण अत्थह ।
खट्ठ अ गहु वेय धुनि, जोति वकलकार सत्थह ॥
तुलइ सु विद्या अवुल वलु चडिउ तेजि अति वभु ।
मान गल्या तिसु मन तणा देखत मानथभु ॥९॥

गाथा

देखत मान थभो, गलियउ तिसु मानु मनह मझम्मे ।
हूवउ सरल पणामो, पूछ गोइमु चित्ति सदेहो ॥१०॥

दोहा

गोइमु पूछइ जोडि कर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभ वियाये जीय सहि लूरिहि केउ ससारि ॥११॥

रड

लोभ लगंउ पाण वुध करइ ।

अलि जपइ लोभिरतु, ले अदतु जव लोभी आनइ।
लोभि पसरि परगहु वधावइ ॥
पचइ वरतह खिउ करइ देह सदा अनचारु।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहउ प्रगटु विथारु ॥१२॥

मूलह दुक्ख तणउ सनेहु।
सतु विसनह मूलु व कम्मह मूल आसउ भणिज्जइ।
जिव इ दिय मूल मनु नरय मूलु' हिंस्या कहिज्जइ ॥
जगु विस्वासे कपट मति पर जिय वछइ दोहु।
सुण गोइम परमारथु यहु पापह मूलु सुलोहु ॥१३॥

गाथा

भमियउ अनादि काले, चहुगति मज्झम्मि जीउ वहु जोनी।
वसि करि न तेनिसक्कियउ, यहु दारण् लोभ प्रचडु ॥१४॥

दोहडा

दारण् लोभ प्रचडु यहु, फिरि फिरि वहु दुख दीय।
व्यापि रह्या वलि अप्पइ, लख चउरासी जीय ॥१५॥

पद्धडी छद

यह व्यापि रह्या सहि जीय जत।
करि विकट बुद्धि परमन हडत ॥
करि छलु पपसै घू रत्त जेंव।
परपचु करिवि जगु मुसइर एव ॥१६॥

सकुडइ मुडइ वठलु कराइ।
वग जेंउ रहइ लिव ध्यान लाइ ॥
वग जेंउ गगौ लिय सौसि पाइ।
पर चित्त विस्वासै विविह भाइ ॥१७॥

मजार जेउ आसण वहुत्त।
सो करइ जु करणउ नाहि जुत्त ॥
जे वेस जेंव करि विविह ताल।
मतियावइ सुख दे वृद्ध वाल ॥१८॥

आपणं न ओसरि जाइ चुक्कि ।
तम जेउ रहइ तलि दीव लुक्कि ॥
जब देखइ डिगतह जोति तासु ।
तव पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ॥१९॥

जो करइ कुमति तव अण विचार ।
जिसु सागर जिउ लहरी अपार ॥
इकि चडहि एक उत्तरि विजाहि ।
वहु घाट घणइ नित हीयं माहि ॥२०॥

परपञ्च करेइ जहरं जगत्तु ।
पर अस्युन देखइ सत्तु मित्तु ॥
खिण ही अयासि खिण ही पयालि ।
खिण ही भ्रित मडलि रग तालि ॥२१॥

जिव तेल बुंद जल महि पडाइ ।
सा पसरि रहै भाजनह छाइ ॥
तिव लोभु करइ राई स चारु ।
प्रगटावै जगि मे रह विथारु ॥२२॥

जो अघट घाट दुघट फिराइ ।
जो लगउ जेंव लग्गत घाइ ॥
इकि सवणि लोभि लग्गिय कुरग ।
देह जीउ आइ पारधि निसग ॥२३॥

पत्तग नयण लोभिहि भुलाहि ।
कचण रसि दीपग महि पडाहि ॥
इक घाणि लोभि मधकर भमति ।
तनु केवइ कटइ वेधि यति ॥२४॥

जिह लोभि मच्छ जल महि फिराहि ।
ते लग्गि पप्पच अप्पणु गमाहि ॥
रसि काम लोभि गयवर भमति ।
मद अ घसि वध वधन सहति ॥२५॥

एक इक्कइ इदिय तणे सुख ।
तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ।।
पच इदिय लोभहि तिन रखुत्त ।
करि जनम मरण ते नर विगुत्त ।।२६।।

जगमसि तपी जोगी प्रचड ।
ते लोभी भमाए भमहि खड ।।
इद्राधि देव वहु लोभ मत्ति ।
ते वछहि मन महि मण वगत्ति ।।२७।।

चक्कवै महिम्य हुइ इक्क छत्ति ।
सुर पदइ वछई सदा चित्ति ।।
राइ राणे रावत मडलीय ।
इनि लोभि वसी केकें न कीय ।।२८।।

वण मझि मुनीसर जे वसहि ।
सिव रमणि लोभु तिन हियइ माहि ।।
इकि लोभि लगि पर भूम जाहि ।
पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ।।२९।।

सकुलीणे निकुलीणहे दुवरि (दुवारि)
लेहि लोभ डिगाए करु पसारि ।।
वसि लोभि न सुण ही ध्रम्मु कानि ।
निसि दिवसि फिरहि आरत्त ध्यानि ।।३०।।

ए कीट पडे लोभिहि भमाहि ।
सचहि सु अनु ले धरणि माहि ।।
ले वनरसु हेठं लोभि रत्तु ।
मखिका सुमधु सचइ वहुत्त ।।३१।।

ते किपन (कृपण) पडिय लोभह मझारि ।
धनु सचहि ले धरणी भडार ।।
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि ।
देखतन उठि हाथ झाडि जाहि ।।३२।।

गाथा

जहि हथ अडिक वरण घनु सचहि सुलह करिवि भडारे।
तरहि केंव ससारे, मनु वुद्धि ऐ रसी जाह ॥३३॥

रड

वसइ जिन्ह मनिइ सिय नित वुद्धि।
घनु विटवहि डहकि जगु सुगुर वचन चितिहि न भावइ।
मे मे मे करइ सुणात ढम्मु सिरि सूलु आवइ।
अप्पणु चित्त न रजही जगु रजावहि लोइ।
लोभि वियाये जेइ नर तिन्ह मति ऐसी होइ ॥३४॥

गाथा

तिन होइ इसिय मत्ते, चित्ते अय मलिन मुहुर मुहि वाणी।
विंदहि पुन न पावो, वस किया लोभि ते पुरिष ॥३५॥

मडिल

इसउ लोभु काया गढ अ तरि, रयणि दिवस सतवइ निरतरि।
करइ ढीवु अप्पण वलु मडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खडइ ॥३६॥

रड

कोहु माया मानु परचड।
तिन्ह मझिहि राउ यहु, इसु सहाइ तिन्नि उपज्जहि।
यहु तिव तिव विप्फुरइ उइ तेय वलु अधिकु सज्जहि॥
यहु चहु महि कारणु अव घट घाट फिरतु।
एक लोभ विणु वसि किए चौगय जीउ भमतु ॥३७॥

जासु तीवइ प्रीति अप्रीति
ते जग महि जाणि यह, जणिउ रागु तिनि प्रीति नारि।
अप्रीति हु दोष हुव, दहू कलाय परगट पसारि॥
अ ज्ञा फेरी आपणी घटि घटि रहे समाइ।
इन्ह दहु वसि करि ना सकै ता जीउ नरकिहि जाइ ॥३८॥

दोहा

सप्पउ रहु जैसे गरल उपने विष सजुत्त।
तैसे जाणहु लोभ के राग दोष दइ पुत्त ॥३९॥

पद्धडी छद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जापहि प्रगट ससारि घुत्त ।।
जह मित्त तणु तह राग रगु ।
जह सत्त तहा दोषह प्रसगु ।।४०।।

जह रागु तहा तह गुणहि थुत्ति ।
जह दोष तहा तह छिद्र चित्ति ।।
जह रागु तहा तह यति पत्तिट्ठु ।
जह दोष तहा तह काल दिट्ठु ।।४१।।

जह रागु तहा सरलउ सहाउ ।
जह दोषु तहा किछु वक्र भाउ ।।
जह रागु तह मनह प्रवाणि ।
जह दोषु तहा अपमानु जाणि ।।४२।।

ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह वाभुन दीसइ महिय कोइ ।।
नत हियइ सिसलहि राग दोष ।
वट वाडे दारण मग्गह मोख ।।४३।।

रड

पुत्त श्रीसिय लोभ घरि दोइ ।
वलु मडिउ अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इद जाल दिखाइ करि, वसी भून् सहु लोगु कीयउ ।।
जोगी जगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहि फिरि फिरि लग्गइ धाइ ।।४४।।

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउरासी लख महि जय जोड पुणि तत्थ सोईय ।
जे देखउ सोचि करि तासु वाभु नहु अत्थि कोइय ।।
विकट बुद्धि जिनि सहिमु सिय घाले कम्मह फघ ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय दीसहि ते नर अध ।।४५।।

दोहा

मणुव तिजचह नर सुरह हीडावै गति चारि।
वीरु भणइ गोइम निसुणि लोभु बुरा ससारि ।।४६।।

रड

कहिउ स्वामी लोभु बलिवडु।
तव पूछिउ गोइमिहि इसु समत्त गय जिउ गुजारहि।
इसु तनिइ तउ वलु, को समत्थु कहुइ सु विदारइ ।।
कवण वुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवण उपाय।
किस पौरिपि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाउ ।।४७।।

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु।
यहु सासण विम्मलइ सुणत ध्रम्मु भव वध तुट्टहि।
अति सूषिम भेद सुणि मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि ।।
काल अनतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
लोभु दुसहु इव ज्जित्तयइ सतोषह परसादि ।।४८।।

कहहु उपजइ कह सतोपु।
कह वासइ थानि उहु, किस सहाइ वलुइ तउ मडइ।
क्या पौरिपु सैनु तिसु, कास वुद्धि लोभह विहडइ ।।
जोरु सखाई भविय हुइ पयडावै पहु मोखु।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सभट्टु सतोषु ।।४९।।

सहजि उपज्जइ चिति सतोषु।
सो निमसइ सत्तपुरि, जिण सहाइ वलु करइ इत्तउ।
गुण पौरिषु सैन धम्मु, ज्ञान वुधि लोभह जित्तइ ।।
होति सखाई भवियहुइ, टालइ दुरगति दोषु।
सुणि गोइम सरवनि कहउ इसउ सूरु सतोषु ।।५०।।

रासा छद

इसउ सूरु सतोषु जिनिहि घट महि कियउ।
सकयत्थउ तिन पुरिसह ससारिहि जियउ ।।
सतोखिहि जे तिय ते ते चिरु नदियहि।
देवह जिउ ते माणुस महियलि वदियहि ।।५१।।

जग महि तिन्ह कीजोह जि संतोसिहि रम्मिय ।
पाप पटल मु पारगि अन्तर मनि दम्मिय ।।
राग दोष मन मलिन जिसु कछु आणियइ ।
सत्तु मित्तु निततरि सम करि जाणियइ ।।५२।।

जिन्ह संतोषु सम्वाई नित घटइ सला ।
नाइ कानि संतोष करइ जीयह कुसला ।।
जिनकर मह संतोषु विणासइ चिर कमला ।
गुर तम मह संतोषु कि वसिज देउफला ।।५३।।

रयणायर संतोषु कि रतनह रासि निधि ।
जिसु पसाइ साहहि मनोरथ सयल विधि ।।
. . .. ।
जे संतोषि समाणो तिन्ह भउ सभु गयउ ।।५४।।

जिन्हहि राउ संतोषु सु दृढ्उ भाउ धरि ।
परनारी पर दव्वि न लोपहि तेइ हरि ।।
कूड़ कपटु परपंचु सुचित्ति न लेसिहहि ।
तिणु कंचणु मणि लुद्धसि सम करि देखिहहि ।।५५।।

पियउ अमिय संतोषु तिन्हहि नित महासुषु ।
लहिउ अमर पद ठाणु गया पर भमण दुसु ।।
राइहंस जिउ नीर षीर गुण उद्धरइ ।
धम्म अधम्मह परिख तेव हीयै करइ ।।५६।।

आवै सुहमति ध्यानु सुबुद्धि हीयै भज्जइ ।
कलहि कलेसु कुध्यानु कुबुधि हियै तजइ ।।
लेइ न किसही दोसु कि गुण सव्वह गहइ ।
पडइ न आरति जीउ सदा चेतन रहइ ।।५७।।

जाहि व्वक्क परणाम होहि तिसु सरल गति ।
छप्प जिउ निम्मलउ न लग्गाहि मलण चित्ति ।।
ससि जिव जिन्ह पर कीर्त्ति सदा सीयलु रहइ ।
धवल जिव धरि कधु गरुव भारह सहइ ।।५८।।

सूरधीर वरवीर जिन्हहि संतोषु बलु ।
पुछ यणि पति सरीरि न लिपइ दोष जलु ॥

इसउ अहे संतोपु गुणिहि वनियै जिवा ।
सो लोभह खिउ करइ कहिउ सरवन्नि इवा ॥५९॥

रड

कहिउ सरवन्नि इसउ संतोषु ।
सो किज्जइ चित्ति दिढु जिसु पसाइ सभि सुख उपज्जहि ।
नहु आरति जीउ पडइ, रोर घोर दुख लख भज्जहि ॥

जिसु ते कल वडिम चडइ होइ सकल जगिप्रीय ।
जिन्ह घटि यहु भव द्दीपिय पुन्न प्रिकिति जे जीय ॥६०॥

मडिल्ल

पुन्न प्रिकिति जिय सवणिहि सुणियहि ।
जै जै जै लोवहि महि भणियहि ॥

गोइम सिउ परवीणु पयपिउ ।
इसउ संतोषु भवप्पति जपिउ ॥६१॥

चदाइणु छंदु

जपियँ एहु संतोपु भूवपति जासु ।
नारीय समाधि अछौ थिते ॥

जे ससा सुंदरी चित्ति हे आवए ।
जीउ तत्त खिणे वछिय पावए ॥६२॥

सवरो पुत्तु सो पयडु जाणिज्जए ।
जासु ओलवि संसारु तारिज्जए ॥

छेदि सौ आसरैं दूरि नैं वारए ।
मुत्ति मझ मिले हेल संचारए ॥६३॥

खतिय तासु को लगणा वन्निय ।
दुज्जण तेउ भजेइ पास निय ॥

कोह अगे गाह दझति जे नरा ।
ताह संतोस ए सोम सीयकरा ॥६४॥

एहु कोटवु सतोप राजा तणो ।
जासु पसाइ व ज्ञाति दती मणो ॥
तासु नं रिहि को दुद्धना श्रावए ।
सो भडो लोभ हपो जुग वावए ॥६५॥

दोहा

खो जुग वावइ लोभ कउ, ए गुणहहि जिसु पाहि ।
सो सतोपु मनि सगहहु, कहियउ तिहुँ वणणाहि ॥६६॥

गाथा

कहियउ तिहु वण णाहो, जाणहु सतोपु एहु परमाणो ।
गोइम चिति दिढुकरु, जिउ जित्तहि लोभु यहु दुसहु ॥६७॥

सुणि वीर वयण गोइमि आणिउ, सतोपु सूरु घटमझे ।
पज्जलिउ लोहु तखि खिणि मेले चउरगु सयनु श्रप्पणु ॥६८॥

रड

चित्ति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोसा इणु तम कियउ, लेइ लहरि विपु मनिहि घोलइ ।
रोमावलि उद्धसिय, काल रूइ हुइ भुवह तोलइ ॥
दावानल जिउ पज्जलिउ नयणनि लाडिय चाडि ।
श्राज सतोषह खिउ करउ जड मूलह उप्पाडि ॥६९॥

दोहा

लोभिहि कीयउ सोचणउ हूवउ श्रारति ध्यानु ।
श्राइ मित्या सिरु नाइ करि, झूठु सवलु परधानु ॥७०॥

षटपदु

श्रायउ झूठु पधानु मतु तत्त खिणि कीयउ ।
मनु कोहु अरु दोहु मोहु इक यद्धउ थीयउ ॥
माया कलहि कलेसु थापु सतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या श्रासरउ श्राद् श्रद्धाम्मि कियउ पख ॥
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ, रागि दोषि आइरू लहिउ ।
श्रप्पणउ सयनु वलु देखि करि, लोहुराउ तव गहगहिउ ॥७१॥

मडल्लि

गह गहियउ तव लोहु चिततरि ।
वज्जिय कपट निसाय गहिर सरि ॥
विषय तुरगिहि दियउ पलाणउ ।
सतोषह दिसि कियउ पयाणउ ॥७३॥

आवत सुणिउ सतोष तत्त क्षिणि ।
मनि आनदु कीयउ सु विचक्षिणि ॥
तह ठइ सयनह पति सतु आयउ ।
तिनि दलु अप्पणु वेगि वुलायउ ॥७४॥

गाथा

वुल्लायउ दलु अप्पणु, हरषिउ सतोषु सुरु वहु भाए ।
जिस ढार सहस अ ग सो मिलियइ सीलु भडु आइ ॥७५॥

गीतिका छदु

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु न्यानु चारित सवरो ।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति सजमु थिरू ॥
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आर्किचणो ।
इव मेलि दलु सतोष राजा लोभ सिउ मडइ रणो ॥७६॥

सासणिहि जय जय कारू हूवउभग्गि मिथ्याती दडे ।
नीसाण सुत वज्जिय महाधुनि मनिहि कि दूर लडेखडे ॥
वेसरिय जीव गज्जत वलु करि चित्ति जिसु सासण गुणो ।
इव मेलि दल सतोषु राजा लोम सिउ मडइ रणो ॥७७॥

गज ढल्ल जोग अचल गुढिय तत्तह यही सार हे ।
वड फरसि पचिउ सुमति जुट्टहि विनि धान पचार हे ॥
अति सबल सर आगम छुट्टहि असणि जणु पावस घणो ।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोम सिउ मडइ रणो ॥७८॥

षट पदु

मडिउ रणु लिनि सुमटि सैनु सभु अप्पण सज्जिउ ।
माव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगम विज्जउ ॥

पव्वान्यौ व्यातमु पयउ अप्पणु दल अ तरि ।
सूर हियँ गह गहहि धसहि काइर चित्त तरि ॥

उतु दिसि सुलोभु छलु तक्क वँवलु पवरिय णिय तणि तुलइ ॥
सतोषु गरुव मे रह सरि सुर सुकिय वण भय णिणु खलइ ॥८०॥

गाथा

कि खलि है भय पवण, गरुवउ सतोषु मेर सरि अटल ।
चवरगु सयनु गज्जिवि रणि अ गणि सूर वहु जुडिय ॥८१॥

तोटक छदु

रण अ गणि जुट्टय सूर नरा ।
तहि वज्जहि भेरि गहीर सरा ।
तह वोलउ लोभु प्रचड भडो ।
हुणि जाइ सतोष पयालि दडो ॥८२॥

फिटु लोभ न वोलहु गव्व करे ।
हुण कालु चड्या है तुम्ह सिरे ॥
तइ मूढ सतायउ सयल जणो ।
जह जाहिन छोडउ तथ खिणो ॥८३॥

जह लोभु तहा थिरु लछि वहो ।
दरि सेवइ उभउ लोउ सहो ॥
जिव इद्रिय चित्ति सतोषु करि ।
ते दीसहि भिख्य भयति परे ॥८४॥

जह लोभु तहा कहु कत्थ सुखो ।
निसि वासुरि जीउ सहत दुखो ।
सयतोषु जहा तह जोति उसो ।
पय वदहि इ द नरिंद तिसो ॥८५॥

सयतोष निवारहु गव्वु चित्ते ।
हउ व्यापि रह्या जगु मझि तिसो ॥
हउ आदि अनादि जुगादि जुगे ।
सहि जीय सि जीयहि मुत्यु लगे ॥८६॥

सुणु लोभ न कीजइ राडि घणी ।
सव थित्ति उपाडउ तुम्ह तणी ॥
हउ तुझ विदारउ न्यानि खगे ।
सहि जीय पठावउ मुत्ति मगे ॥८७॥

हउ लोभु अचलु महा सुमटो ।
जग्गु मैं सहु जितिउ वध पटो ॥
सभि सूर निगारउ तेज, मले ।
महु जित्तइ कौणु समत्थु कले ॥८८॥

तइ अत्थि सतायउ लोगु घणा ।
इव देखहु पौरिषु मुझ तणा ॥
करि राडउ खड विहड घणा ।
तर जेवउ पाडउ मूढ जडा ॥८९॥

सुणि इत्तउ कोपिउ लोभु मने ।
तव भूठु उठायउ वेरिण तिने ॥
साइ आपउ सूरु उठाइ करो ।
सतिरा इहि छेदिउ तासु सिरो ॥९०॥

तव वीडउ लीयउ भानि भडे ।
उठि चल्लिउ समुह गज्जि गुडे ॥
वलु कीयउ मद्दवि अप्पु घणो ।
पुरषो जुग वायउ तासु तणा ॥९१॥

इव दुक्क उछोहु सुजोहि अणी ।
मनि सक न मानइ भौर तणी ॥
तव उद्दि महाव्रत लग्गु वले ।
खिण मझि सुघाल्यो छोहु दले ॥९२॥

भडु उट्ठिउ मोहु प्रचडु गजे ।
वलु पौरिष अप्पय सैन सजे ॥
तव देखि ववेक चल्या अटल ।
दह वट्ठ किया सुइ भज्जि वल ॥९३॥

वहु माय महा करि रूप चली ।
महु अग्गइ सूरउ कवणु वली ॥
दुक्कि पौरपु अज्ज विचोरि किया ।
तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ॥९४॥

जव माय पडी रण मझ खले ।
तव आइय कक गजति वले ॥
तव उट्ठि खिमा जव घाउ दिया ।
तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ॥९५॥

अयज्ञानु चल्या उठि घोर मते ।
तिसु सोचन आईया कपि चिते ॥
उहु आवत हावया ज्ञानि जव ।
गय प्राण पड्या धरि भूमि तव ॥९६॥

मिथ्यातु सदा सहि जीय रिपो ।
रूद रूपि चड्या सुइ सज्जि अपो ॥
समक्कतु डह्या उठि जोणि अणी ।
धरि धूलि मिल्या दिय चूर घणी ॥९७॥

कम्म अट्ठसि सज्ज चडे विषम ।
जणु छायउ अवरु रेणु भम ॥
तपु भानु प्रगासिउ जाम दिसे ।
गय पाटि दिगतरि मझि घुसे ॥९८॥

जगु व्यापि रह्या सवु आसरय ।
तिनि पौरिषु घठिइ ता करय ॥
जव सवरू गज्जिउ घोरि घट ।
उहु भाडि पिछोडि कियाद वट ॥९९॥

रसि रागिहि धुत्तउ लोउसहो ।
रण अगणि लग्गउ मझि गहो ॥
वयरागु सुधायउ सज्जि करे ।
इव जुझि विताड्यौ दुट्ठ अरे ॥१००॥

यहु दोषु जु छिद्द गहति पर ।
रण अगांण उडाहि सिर ॥

उठि ध्यानिय मुक्किय श्रग्गि घरण ।
खिण मझ जलायउ दोपु तिण ॥१०१॥

कुमतिहि कुमारगि सयनु नठ्या ।
गय जेउ गजतउ आइ जुड्या ॥
खिण मत्तु परक्कम सिंघ परे ।
तिसु हाक सुण तप यहु घर ॥१०२॥

पर जीय कुसील जु वट्ठ करै ।
रण मज्झि भिडनु न सक धरै ॥
वभवत्तु समीरणु धाइ लग ।
कुर विदजि वागय पाटि दिग ॥१० ॥

दुखहु तजिदु गय दण सलो ।
साइज दिउ आइ निसक मलो ॥
परमा सुखु श्रायउ पूरि घट ।
उहु श्राडि पिछोडि कियाद वट ॥१०४॥

वहु जुझिय सूर पचारि घणे ।
उइ दीसहि जुटत मज्झि रणे ॥
किय दिन्नु रसातलि वीर वरा ।
किय तज्जित गए वलु मुक्कि घरा ॥१०५॥

श्रन दसण कद रहुत जहा ।
इकि भज्जि पइट्ठिय जाइ तहा ॥
यहु पैतु सतोषह राइ चल्या ।
दलु दिट्ठउ लोभिहि सैनु पल्या ॥१०६॥

रड

लोभि दिट्ठउ पडिउ दलु जाम ।
तव घुणियउ सीस कर अन्ध जेउ सुझिउ न अग्गउ ।
जणु घेरिउ लहरि विषु कच कचाइउ विघाइ लगाउ ॥
करइ सुश्रकरणु आकतउ किपिन वुभइ पट्टु ।
जेरु चणउ अति छलइ तकि मउ भनइ भट्टु ॥१०७॥

गाथा

रोसाइणु थरहरिय धरिय मन मझि रुद्द तिनि ध्यानो ।
मुक्कइ चित्ति न मानो, अज्ञानो लोभु गज्जेइ ॥१०८॥

रसिका छन्द

लोभु उठिउ अपणु गज्जि, मडिउ वलु नि लाजि ।
चडिउ दुसहु साजि रोसिहि भरे ॥

सिरि ताणिउ कपटु छतु, विषय खडगु कितु ।
छदमु फरियलितु समुह धरे ॥

गुण दसमैह ठाणै लगु, जाइ रोक्यौ सूर मगु ।
देइ वहु उपसग्गु जगत अरे ॥

अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु ।
सतवइ प्राणह षटु पौरिषु करै ॥ ०९॥

खिणु उठइ अणिय जुडि खिणिहि चालइ मुडि ।
खिणु गयजे व गुडि पिणिहि चालइ मुडि ॥

खिणु रहइ गगनु छाइ, खिणिह पयालि जाइ ।
खिणि मच्चलोइ आइ ।

चउदहठे वाकै चरत न जाणैं कोइ, व्यापैइ सकल लोइ ।
अवेक रुपिहि होइ जाइ सचरै ।

अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नहु ।
सतवइ प्राणह षटु पौरिषु करै ॥११०॥

जिनि समि जिय लिवलाइ, घाले तत वुधि छाइ ।
राखे ए वडह काइ देखत पडे ।

यह दीसइज परवधु, देस सैनु राजु गधु ।
जाण्या करि आप तधु, लाल चिपडे ॥

जाकी लहरि अनत परि, घोरह सागर सरि ।
सकर कवगु तरि हिय अन्ध ॥

अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ धूरत नटु ।
सतवइ प्राणह षटु पौरिषु करि ॥१११॥

जैसी करिणय पावक होइ, तिसहि न॰ जाणइ कोइ ।
पडि तिण सगि होइ, कि कि न करै ।

तिसु तणि यवि विहि रग, कौणु जाणै के ते ढग ।
आगम लग विलग, खिणिहि फिरै ॥

उहु अनतप सारै जाल, करइक लोल पलाल ।
मूल पेड पत्त डाल देइ उदरै ॥

अैसे चडिव लोभ विकट्टु, घूतइ घूरत नट्टु ।
सतवैइ प्राणह पट्टु पौरिषु करि ॥११२॥

षटपदु

लोभ विकट्टु करि कपटु अमिट्टु रोसाइणु चडियउ ।
लपटि दवटि नटि कुघटि झपटि झटि इवजगु नडियउ ॥

धरणि खडि ब्रह्म डि गगनि पयालिहि धावइ ।
मीन कुरग पतग भ्रिग मातग सतावइ ॥

जो इ द मुणिद फणिद सुरचद सूर समुह अडइ ।
उहु लडइ मुडइ खिणु गडवडइ खिण मुउट्ठि समुह जुडइ ॥११३॥

मडिल्ल

जव सुलोभि इतउ वलु कीयउ ।
अविक कष्टु तिन्ह जीयह दीयउ ॥
तव जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ ।
राउ सतोषु इनह परि सज्जिउ ॥११४॥

रगिका छन्दु

इव साजिउ सतोष राउ, हुवउ धम्म सहाउ ।
उठिउ मनिहि भाउ आनदु मय ॥

गुण उत्तिम मिलिउ माणु, हूवउ जोग पहाणु ।
आयउ सुक्ल झाणु तिमरु गय ॥

जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल ।
हृदय कवल दल खिडि पतदे ॥

यैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति ।
छेदिय लोभह थिति चडिउ पदे ॥११५॥

तनिक पंचु संजमु धारि, सत दह परकारि ।
तेरह विधि सहारि, चारितु लिय ॥

तपु द्वादस भेदह जाणि, आपणु अणिहि आणि ।
बैठउ गुणह ठाणि उदोत किय ॥

तम कुमतु गव्य धुसि, धोलिउ जगतु जसि ।
जैसेउ पुनिउ ससि, निसि सरदे ॥

अैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ॥११६॥

जिन वधिय सकल दुट्ठ, परम पाय निघट्ठ ।
करत जीयह कठ, रयणि दिणो ॥

जगि हो तिय जिन्हहि प्राण, देतिय नमुति जाण ।
नरय तणिय वाण भोगत घणे ॥

उइ आवत नरीहि जेइ, खडगु समुह लेइ ।
सुपनि न दीसे तेइ अवरु कंदे ॥

अैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति ।
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ॥११७॥

देव दुंदही वाजिय घण सुर मुनि गह गण ।
मिलिय भविक जण, हुंवर लिय ॥

अंग ग्यारह चौदह पूव्व, विचारे प्रगट सव्व ।
मिथ्याती सुणत गव्व, मनि गलिय ॥

जिसु वाणिय सकल पिय, चितिहि हरषु किय ।
संतोष उतिम जिय, धरमु वदे ॥

अैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि किय ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ॥११८॥

षटपदु

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप बलि अति गज्जिउ ।
उदउहु वउ सासणिहि सयनु आगमु मनु सज्जिउ ॥

हिंसा रहि हय वर तु सुभटु चारितु वलि जुट्ठिउ ।
हाकि विमलमति वाणि कुमतिदल दरहि वट्ठिउ ॥

वधिउ प्रचड्ड दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ धुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ सतोष कहु लोभहु सहु इव जित्तियउ ॥११९॥

गाथा

जव जित्त दुसह लोहु, कीयउ तव चित्त मझि आनदे ।
हूव निकट रजो गह गहियउ राउ सतोषु ॥१२०॥

सतोषुह जय तिलउ जपिउ, हिसार नयर मझ मे ।
जे सुरगहि भविय इक्क मनि, ते पावहि वछिय सुक्ख ॥१२१॥

सवति पनरइ इक्याराग भद्दवि, सिय पक्खि पचमी दिवसे ।
सुक्क वारि स्वाति वृखे, लेउ तह जाणि वमना मेरग ॥१२२॥

रड

पढहि जे के सुद्ध भाएहि ।
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु धरि ।
ते उतिम नारि नर अमर सुक्ख भोगवहि वहुघरि ।

यहु सतोषह जय तिलय जपिउ वल्हि सभाइ ।
मगल चौविह सघ कहु करीइ वीरु जिणराइ ॥१२३॥

इति सतोष जय तिलकु समाप्ता

[दि० जैन मदिर नागदा, बून्दी ।]

बलिभद्र चौपई[1]

(रचनाकाल स० १५८५)

चुपई

एक दिवस माली वनी गउ, अचरित देखी उभु रह्यु ।
फल्या वृक्ष सवि एकि काल, जोवे वैर तज्या दु ख जाल ।।४७।।

फरी २ जो वाला गुवन्न, समोसरणि जिन दीठा धन्नि ।
आव्या जाणी नेमिकुमार, मनस्करी जपि जयकार ।।४८।।

लेई भेट भेद्यु भूपाल, कर जोडी इम भणि रमाल ।
रेविगिरि जगगुरु आवीया, सभा सहित मिव द्वाविया ।।४९।।

कृष्ण राय तस वाणी सुणी, हरष वदन हूउ त्रिकु खड धणी ।
आलितोष पचाग पसाउ, दिशि सनमुख थाई नमीउराउ ।।५०।।

राइ आदेश भेरी ख कीया, छपन कोडि हीयडि हरपीया ।
भव्य जीव ध्धाइ समसि, करि ध्यौत एक मन माहि हसि ।।५१।।

पट हस्ती पाखरि परिगर्यु, जाणे ऐरावण अवतर्यु ।
घटा रखना घण घणकार, विचि २ धुघर घम घम सार ।।५२।।

मस्तकि सोहि कु कम पु ज, झरिदान ते मधुकर गु ज ।
वासि ढाल नेजा फरिहरि, सिणगारी राइ आगिल धरि ।।५३।।

चड्यु भूप मेगलनी पूठि, देर दान मागल जन मूंठ ।
नयर लोक अ तेउर साथि, धर्म तणि धुरि दीधु हाथ ।।५४।।

ढाल–सहीकी

समहर सज करी कृष्ण सावरीया ।
छपन कोडि परिवरीया ।

छत्र त्रण शिर उपरि धरीया ।
राही रूखमणि सम सरीया ।।

साहेलडी जिणवर वदण जाइ, नेमि तणा गुण गाइ ।
साहेलडी रे जग गुरु वदण जाई ।।५५।।

---

१. ब्रह्म यशोधर कृत इस कृति एवं कवि की अन्य रचनाओं का परिचय पृष्ठ ८३ पर देखिये ।

ढोल तिवल वसु वाबा बाजि
सरस सबद सवि छाजि ।

गुहिर नाद नीसाणअ गाजि
वेणा वलवि राजि ॥सा०॥५६॥

आगलि अपछर नाचि सुरंगा, चामर ढालि चंगा ।
देइय दान ए धार जिम गंगा, हीयडलि हरष अभंगा ॥
साहेलडी० ॥५७॥

मेगल उपरि चडाउ हो राजा, धरइ मान मन माहि ।
अवर राय मुझ सम उन कोई, नयणडे निम जिन चाहि ॥
साहेलडी० ॥५८॥

मान थंभ दीठि मद भाजि, लहलहि धजायए रूडी ।
परिहरी कुंजर पालु चालि, धरउ मान मति थोडी ॥
साहेलडी० ॥५९॥

समोसरण माहि कृष्णु पधारया साथि सपरिवार ।
रयण सिंघासण बिठादीठा, सिवादेवी तणउ मल्हार ॥
साहलडी० ॥६०॥

समुद्र विजय ए अवर बहू राजा वसुदेव वलिभद्र हरषि ।
करीय प्रदक्षण कृष्ण सु नमीया, नयडे नेम जिननरषि ॥
साहेलडी० ॥६१॥

वस्तु

हरषीया यादव २ मनह आणंदि ।
पुरषोतम पूजा रचि नेमिनाथ चलणे निरोपम ।
जल चंदन अक्षत करि सार पुष्प वल चरू अनोपम ।
दीप धूप सविफल घणा रचाय पूज धन हाथ ।
कर जोडी करि वीनती तु वलिभद्र वधव साथी ॥६२॥

चुपई

स्तवन करि वधवसार, जेठउ वमिलभद्र अनुज मोरार ।
कर संपुट जोडी अंजुली, नेमिनाथ सनमुख समली ॥६३॥

भवीयण हृदय कमल तू सूर,जाई दु ख तुझ नामि दूर ।
धर्म्मसागर तु सोहि चद, ज्ञान कर्णा इव वरसि इ दु ॥६४॥

तुझ स्वामी सेवि एक घडी, नरग पथि तस भोगल जडी ।
वाइ वागि जिम बादल जाइ, तिम तुझ नामि पाप पुलाइ ॥६५॥

तोरा गुण नाथ अनता कह्या, त्रिभुवन माहि घणा गहि गह्या ।
ते सुर गुरु वान्या नवि जाइ, अल्प बुधिमि किम कहाइ ॥६५॥

नेमनाथ नी अनुमति लही, वल केशव वे विठासही ।
धर्म्मदेश कह्या जिन तणा, खचर अमर नर हरख्या घणा ॥६६॥

एके दीक्षा निरमल धरी, एके राग रोप परिहरी ।
एके व्रत•वारि सम चरी, भव सायर इम एके तरी ॥६८॥

दुहा

प्रस्तावलही जिणवर प्रति पूछि हलधर वात ।
देवे वासी द्वारिका ते तु अतिहि विख्यात ॥६९॥

त्रिहु खड केरु राजीउ सुरनर सेवि जास ।
सोइ नगरी नि कृष्णनु कीणी परि होसि नास ॥७०॥

सीरी वाणी सभली वोलि नेमि रसाल ।
पूरव भवि अक्षर लिखा ते किम थाइ आल ॥७१॥

चुपई

द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी सघार ।
मद्य भाड जे नामि कही, तेह थकी बली बलसि सही ॥७२॥

पौरलोक सवि जलसि जिसि, वे वधव निकलसुतिसि ।
तह्मह सहोदर जराकुमार, तेहनि हाथि मरि मोरार ॥७३॥

बार वरस पूरि जे तलि, ए कारण होसि ते तलि ।
जिणवर वाणी अमीय समान, सुणीय कुमार तव चाल्यु रानि ॥७४॥

कृष्ण द्वीपायन जे रषिराय, मुकलावी नियर खड जाइ ।
बार सबछर पूरा थाइ, नगर द्वारिका आ चुराइ ॥७५॥

ए ससार असार ज कही, धन योवन ते थिरता नहीं ।
कुटब सरीर सहू पपाल, ममता छोडी धर्म्म संभाल ॥७६॥

पजून सबुनि मानकुमार, ते यादव कुल कहीइ सार ।
तीरो छोडयु सवि परिवार, पच महाव्रय लीधु भार ॥७७॥

कृष्ण नारि जे आठि कही, सजन राइ मोकलावि सही ।
अह मु आदेश देउ हवि नाथ, राजमति नु लीधु साथ ॥७८॥

वसु देव नदन विलखु थइ, नमीय नेमि निज मदिरगउ ।
बार वसनी अवधि ज कही, दिन सवे पूगे आवी सही ॥७९॥

तिरिण अवसरि आव्यु रषिराय, लेईय ध्यान ते रहयु वनमांहि ।
अनेक कुमर ते यादव तणा, धनुष धरी इमवाग्या घणा ॥८०॥

वन खड परवत हीडिमाल, वाजिलूय तप्पा ततकाल ।
जोता नीर न लाभि किहा, अपेय थान दीठा ते तिहा ॥८१॥

[गुटका नैणवा पत्र-१२१-१२३]

—— ——

महावीर छंद[1]

प्रणमीय वीर विबुह जण रजण, मदमइ मान महा भय भजण ।
गुण गण वर्णन करीय वखाणु, यती जण योगीय जीवन जाणु ॥

नेह गेह शुह देश विदेहह, कु डलपुर वर पुह विसुदेहह ।
सिद्धि वृद्धि वर्द्धक सिद्धारथ, नरवर पूजित नरपति सारथ ॥१॥

सरस सुदरि सुगुण मदर पीयु तसु प्रयकारिणी ।
अगि रग अनग सगति सयल काल सुवारिणी ॥

वर अमर अमरीय छपन कुमरीय माय सेवा सारती ।
स्नान मान सुदान भोजन पक्ष वार सुकारती ॥२॥

धनद यक्ष सुपक्ष पूरीय रयण अ गणि वरपतो ।
तव धम्म रम्म महप्प देखीय सयल लोकने हरुसती ॥३॥

मृगयनयणी पच्छिम रयणी सयन सोल सुमाणइ ।
विपुल फल जस सकल सुरकुल तित्थ जन्म वखाणइ ॥४॥

दीठो मद मातग मणोहर, गौहरि हरि श्रीउदाम शसी ।
पूषण जझस युग्म सरोवर सागर सिहासन सुवसी ॥

देव विमान असुर धर मणिकइ निरगत धूम कृशानुचय ।
पेखीय जागीय पूछीय तस फल पति पासि सतोष भय ॥५॥

पुष्पक पति अवतरीयो जिनपति ।
इ द्र नरेंद्र कराव्या वहु नति ॥

जात महोछव सुरवरि कीधो ।
दान मान दपतिनि दीधो ॥६॥

वाधिइ गरभ मार नाहि त्रिवलीहार करिइ सुख विहार शोक हरि ।
वरसि रयण रगि, घणह धनद धनद चगि छपन कुमारी सग सेव करि ॥

पूरीय पूरा रे मास, पूरवि सयल आस, हवोउ जनम तास मासि भलो ।
जाणी सयल इ द्र-भावि विगद तद्र, आवीय सुमति मद्रणाण निलो ॥७॥

1 भट्टारक शुभचन्द्र एव उनकी कृतियो का परिचय पृष्ठ ९३ पर देखिये ।

सुहम आपणि हाथि थापीय मदर माथि अमरनि कर साथिणहन कीयो ।
देइय सन्मति नाम सागी जनम काम, पामीय परम थाम थाइन दीयो ॥

नाचीय नाटक इद, भरीय भोगनुकद नमिय मह जिणद इद गया ।
वाधिइ विवुध स्वामी धरि अवधि भामी, थयासुभगगामीणाण बयरा ॥८॥

जुगि जोवन अगि धरिए रगि त्रीस वरस विभुभयो ।
एक निमित देखीय वरम पेखी निगथ मारगि तेगयो ॥

चउ अधिक बीसह मू की परीसह णाण रूप मुनीश्वरो ।
. ... ॥

श्री वीरस्वामी मुगति गामी गर्भहरण ते किम हुउयो ।
ते कवयानदन जगतिवदन जनक नाम ते कुण भये ॥९॥

रयण वृष्टि छमास श्री दिस दनि तँ कहिनि करी ।
स्वप्न सोल सुरीय सेवा गर्भ शुद्धि सु सचरी ॥

ऋषभदत्त विशाल शुक्रि देवनदा शोणित ।
वपु पिंड पुहुवि तेणि वाद्यो वृद्धि वाधि उन्नत ॥१०॥

ब्यासी दिवस रमसि वीसरीया ।
इन्द्र ज्ञान तिहा नवि सचरीया ॥

जाणी भक्षुक कुलि अवतरीया ।
गर्भ कल्याण किहा करीया ॥११॥

तिहा सयल सुरपति वीर जिनपति गर्भ कर्म ने जाणीय ।
कुल कमल भूषण विगतदूषण नीच कुल ते आणीय ॥

तस हरण खरखि हरण कश्यप पुहवि पटणि पाठव्यो ।
ते सुणउ लोका विगत शोका कर्मफल किम नाटव्यो ॥१२॥

जे जिन नाथि नही निषेध्यो ।
ते हर वा मघवा किम वेध्यो ॥
मरली सावी सवीय न राखी ।
ए चिन्ता तेणि किम भाखी ॥१३॥

गर्भ हर्यो ते केहु द्वार ।
जनमि मार्ग तँ सुणौउ प्रकार ।

जन्मि महोछव वली तिहा जोईइ ।
गमि गर्भ कल्याणक गोईई ॥१४॥

विचारि विचारि वीजि यारि किम नीकनतेगर्भमलो ।
उदारि उन्नत न्यूनत परिणत अवर कहु एक कलितकलो ।

नर नरकावासी कम्महुपाणीका नवि काढि देवगणा ।
सीता सुरपति लक्ष्मण नरपति नवि काड्या द्रष्टातन घणा ॥१५॥

वली नाल त्रूटि आयु त्रूटि किमह जीवितं वली ।
जे सुफल आम्र तरस नाम्रु अनेथि चहृटि किम भली ।

उदर कमलि गरभ ज मलि नाल माग्र सहु लहि ।
पाप पाकि नाल वा (न) कि गर्भ पातकह् महुकहि ॥१६॥

रोपि रोपी रोपउनि अपि आणी वद्धइ ।
अन्येवि थी अन्यग लेता गरभ कुण निषेधए ॥

भ्रष्ट नष्ट द्रष्टात दाखी लोकनि थिर कारइ ।
वर वीरवाणी विचार करता तेहनि वली वारइ ॥१७॥

रोप सम सहु माय जाणु गर्भ फल सम साभलो ।
अनेथि थी अन्वेथि धरती कोण कहितो नीमलो ॥

दोइ तात दूषण पाप लक्षण जिननि सभारिइ ।
अन्यु भाखि पाप दाखि शास्त्र ते किम तारइ ॥१८॥

जिननाथ सवमि करण उपरि खील खोसि गोवालीया ।
असम साहस साम्य मुकी जिनह छूत्र वगालीया ॥

वज्र रूप सरीर भेदी खीला सन किम खूचवइ ।
दोइ वीस परीसह अतिहि दुसह जिन्न कहो किम मुचइ ॥१९॥

राज मूकी मुगती शकी देव दूरुपते किम धरिइ ।
इन्द्र आपि थिरू थापि गुरु होइ ते इम करइ ॥

मूकइ समता धरइ ममता वस्त्र वीटि सहु सुणिइ ।
हारि नामा अचेलभामा परिसह किम जिन मणइ ॥२०॥

जे भाषि अथी निर्लिलि,
मारग मुगति तणि मनरगि ।

ते नवि जाइ सत्तम पुढवी,
अल्प पापि अथी माहव्वी ॥२१॥

माघवी पुढवी नही जावा यस्स पाप न सचउ ।
ते मुगति माग्न' किम माणइ एह महिमा खचउ ॥

सइ वरि अजी करि क ज्जानत्तक्षणानु दीक्षीउ ।
वदण नमसण तेह नेह्नि काइ तह्यो लक्षीउ ॥२२॥

स्त्री रूप पडिमा काइ न मानु जो उपामि शिवपुर ।
नाम अवला कर्म सवला जोयवा किय आदर ॥

कवल केवली करि आहार अणतु सुहते किहा घरे ।
वेदणीय सत्ता आहार करता रोग सघला सचरि ॥२३॥

नरकादि पीडा मरत कीडा देखिनि किम भुजइ ।
णाण झाण विनाश वेदन क्षुधा की सहु सीझइ ॥

सर सरस वली आहार करता वेदना वहु वुझइ ।
एवक घरि अनेक आहार घरि घरि भम्मता किम सुझइ ॥२४॥

एक घरि वर आहार जाणी जायता जीह लोलता ।
आहार कारणि गेह गेहि हीडता अणाणता ॥

समोसरणि जा करइ भोजन तोहि मोटी मम्मता ।
भूख लागि अवरनीपरि आहार ले जिन गम्मता ॥२५॥

अठार दूषण रहित वीरि केवलणाण सुपामीउ ।
जन नयन मन तन सुघट हरण हर करण वर भरमामीउ ।

इ द मद्र खगेंद्र शुभचद नाथ परपति ईश्वरो ।
सयल संघ कल्या (ण) कारक धर्म वेंश यतीश्वरो ॥२६॥

सिद्धारथ सुत सिद्धि वृद्धि वाछित वर दायक ।
प्रियकारिणी वर पुत्र सप्तहस्तोन्नत कायक ॥

द्वासप्तति वर वर्ष आयु सिहाक सुमडित ।
चामीकर वर वर्ण शरण गोत्तम यती पडित ॥

गर्भ शोध दूषण रहित शुद्ध गर्भ कल्याण करण ।
शुभचंद्र सूरि सेवित सदा पुहवि पाप पकह हरण ॥२७॥

इति श्री महावीर छन्द समाप्त

[दि० जैन मदिर पाटोदी, जयपुर]

श्री विजयकीर्त्ति छन्द

अविरल गुण गभीर वीर देवेन्द्र वदित वदे,
श्री गौतम सु जबु भद्र माघनदि गुरु ॥१॥

जिनचद कु दकु द मृन्तत्वार्थप्ररूपक सार ।
वंदे समतभद्र पूज्यपाद जिनसेनमुनि ॥२॥

अकलकममलमखिल मुनिवृ दपद्मनंदि ।
यतिसार सकलादिकीर्त्ति मीडे बोधभर ज्ञानभूषणक ॥३॥

वक्ष्ये विचित्र मदनैर्यति राजत विजयकीर्त्ति विज्ञान ।
चद्रामरेंद्रनरवरविस्मपद जगति विख्यात ॥४॥

विख्यात मदनपति रति प्रीति रगि ।
खेल्लइ खड खड हसाइ सुचगि ॥

तव सुण्योउ ददमट्ट द्रम छद्मामह ।
जय जय नादि धूजइ निज धामह ॥५॥

सुणि सुणि प्रीयि कस्यो रे ददामो,
कोण महिपति मझ आव्यो सामो ।

रगि रमनि रीति सुण्यो निजादह ।
नाह नाह तुम घरि विसादह ॥६॥

नाद एह वैरि वग्गि रगि कोइ नावीयो ।
मूलसघ पट्ट बध विविह भावि भावीयो ॥

तसट भेरी ढोल नाद वाद तेह उपन्नो ।
भणि मार तेह नारि कवण आज नीपन्नो ॥७॥

महा मइ मूलसघ गरिद्व, सुबह्यी गच्छ सुवछ वरिट्ठ ।
गुणह बलात्कार सीझइ काम, नदि विभूषण मुतीयदाम ॥८॥

जण घण वदि पुहुवि नदीय जनीय वरो ।
सुज्ञानभूषण दुमद दूसण विहवघरो ॥

तस पट्ट सुमुत्ती विजयह कीर्त्ति एह थिरो ।
गुणनाथ सुछदि यतिवर वृ दि पट्टि करो ॥९॥

पिये नरो मुनसरो सुमज्ञ श्राण ।
दुघरो समाण ए नही कय ।
अवुद्ध युद्ध द्यु भय ॥१०॥

नाह बोल समली रीति वाच उजोली वोल्लइ विचक्खणा ।
आलि मू कि मोजणा ॥११॥

तव आणि न माणि बुद्धि पमाणि सत्थ सुजाणि बुद्धि वल ।
सुणि काम सकोदह नाना दोहह टालि मोहह दूरि मल ॥

सुणि कामह कोप्यो वयण विलोप्यो जुखह अप्यो मयण मणि ।
वोलावु से नार हीया केह्ला वैरीय तेहना विये सुणि ॥१२॥

वयण सुणि नव कामिणी दुख घरिइ महत ।
कही विमासण मझहवी नवि वासो रहि कत ॥१३॥

रे रे कामणि म करि तु दुखह ।
इ द्र नरेन्द्र मृगाव्या भिखह ॥

हरि हर वभमि कीया रकह ।
लोय मव्व मम वसीहु निसकह । १४॥

इम कही इक टक मे लावीउ ।
तत खणह तिहा सहु आवीयो ॥

मद मान क्रोध विमीसणा ।
तिहा चालइ मिथ्या दी जणा ॥१५॥

करि कामिणी गल्ल माल्ला मयका ।
थण भारउडी याण चाल्या मयका ।

कोकिल न्माद भम्यर भकारा।
भेरि भमा बाजि चित्त हारा ॥१६॥

बोल्लत खेलत चालत धावत घूणत।
धूजत हाक्कत पूरत मोडत॥

तुदत भजत खजत मुक्कत मारत रगेण।
फाडत जाणत घालत फेडत खग्गेण॥१७॥

जाणीय मार गमण रमण यती सो।
बोल्यावइ निज वल सकल सुधी सो॥

सन्नाह बाहु बहु टोप तुषार दती।
राय गणयता गयो बहु युद्ध कती॥१८॥

तिहा मल्या रे कटक बहु बाजइ ददामा दहु नाचइ नरा।
मुकि मुंकइ रे मोटा रे बाण आपणु बल प्रमाण कपइधरा॥

धूजइ घूजि रे धनुषधारी मुकइ अगल्यामारी आपणिवलि।
फेडि फेडि रे वैरी नाना म सारइ स्वामीनु काम माहिमलि॥१९॥

जपइ जपि रे कठोरनाद करि विषम वाद वेरीय जणा।
काढि काढि रे खडग खड करिइ अनेक रड मारिइ घणा॥

वलगि वलगि रे वीर नि वीर पडि तुरग तीर अस्यू भणि।
मुक्यो मुक्यो रे जाहि न जाहि मारु अनही वोसाहीवयण सुणि॥२०॥

तव नम्मुय देख्यु रे वल करि न आपणो।
बल मिथ्यात महामल उट्ठीय वड्यो।

वोरु समकित महा नाणउ ग्योठ उत्तम।
भाण कीरिय घणु करिय घणु पराणभलु य भड्यो।

सहि रे भूटा नइ भूटि मुकइ मोट रे।
मुठि करइ कपट गूढि वीर वरा।

उद्यो रे कुबोध बोध भूझइयो घनि।
योध करीय विषम क्रोध धरि धरा॥२१॥

वली भणइ मयण राय उठ्ठतु कुमत भाइ।
छडाव्यो सयल ठाय सुणीय अस्यो।

तव देखीय यतीय जपइ हवि आपनी सेना रे।
कपइ उठो रे तत्खिन अप्पिइ कुमइ हण्यो॥२२॥

तव खङ्ग खङ्गि भल्लभल्लि वाण-वाणि मोकला।
खर जुष्ट यष्टि मुष्ट मुष्टि दुष्ट दुष्टि फोकला ॥
एफ-नाथ-नाथि-हाथ हाथि माथ माथि कुट्टइ।
वली रूड रूडि मुड मुडि तुड तुडि तुट्टइ ॥२३॥

इंद्रिय ग्रामह फीट उठामह मोहनो नामह टलीय गयो।
निज कटक सुभग्गो नासण लग्गो चिंता मग्गो तवह भयो ॥
महा मयण महीयर चडीयो गयवर कम्मह परिकर साथ कियो।
मछर मद माया व्यसन विकाया पाखंड राया साथि लियो ॥२४॥

विजयकीर्त्ति यति मति अतिरंगह।
भावना भाण कीया वली चंगह ॥
शम दम यम अगलि वल्लावि।
मार कटक भजी वोलावि ॥२५॥

तिहा तवलि ददामा ढोल ध्रस्त कइ।
भेरी भमा भुगल फुकइ ॥
बिरद बोलइ जाचक जन साथि।
वीर वढिव छुटि माथि ॥२६॥

झूटा झूट करीय तिहां लग्गा।
मयणराय तिहां ततक्षण भग्गा ॥
आगलि को मयणाधिप नासइ।
ज्ञान खङ्ग मुनि अतिह प्रकासइ ॥२७॥

भागो रे मयण जाइ अनंग वेगि रे।
काइ पिसि रे मन रे माहि मुकरे ठाम।
रीति रे पाप रि लागी मुनि कहिन वर।
मागी दुखि रे काढि रे जागी जपइ नाम ॥
मयण नाम रे फेडी आपणी सेना रे।
तेडी आपइ ध्यान नी रेडी, यतीय वरो।
श्री विजय मनावीयु यति अभिनवो।
गछपति पूरव-प्रकट रीति मुगति वरो ॥२८॥

मयण मनावीयु आण जाण जण जुगति चलावि।
वादीय वृंद विवध नद निरमल महलावि ॥

लब्धि सु गुम्मटसार सार त्रैलोक्य मनोहर ।
कर्क्क शतर्क वितर्क काव्य कमला कर दिरगयर ।।
श्री मूल संघि विख्यात नर विजयकीत्ति वाछित करण ।
जा चाद सूर ता लागि तपो जपइ सूरि शुभचद्र सरण ।।२६।।

इति श्री विजयकीत्ति छद समाप्ता

—[दि० जैन मन्दिर पाटोदी]

वीर विलास फाग[1]

ॐ नम' सिद्धेभ्य ।। श्री भ० श्री महिचद्र गुरुभ्यो नम. ।।

अकल अनत आदीश्वर इश्वर आदि अनादि ।
जयकार जिनवर जग गुरु जोगीश्वर जेगादि ।।१।।

कवि जननी जग जीवनी मझनी आयी करि समाल ।
अपितु शुभमती भगवती भारती देवी दयाल ।।२।।

. . . .

सिहि गुरु सुखकर मुनीवर गणधर गौतम स्वामि ।।३।।[2]

श्री नमि जिन गुण ग्राम सु प्राय सु पुण्य प्रकार ।
समुद्र विजय नृप नदन पावन विश्वाधार ।।४।।

शिवा देवी कुमर कोडामणो सोहामणो सोहायस्सु प्रधान ।
सकल कला गुण सोहणो मोहण वलि समान ।।५।।

सहि जीसो भागि समावडो सुलूणू हरी कुलचन्द ।
निरुपमरूप रसालूणडो जादूयडो जगदानद ।।६।।

---

१ वीरचन्द्र एव उनकी कृतियो का वर्णन पृष्ठ १०६ पर देखिय ।

२. मूल पाठ में मात्र एक ही पक्ति दी गई है ।

केलि कमल दल कोमल सामल वरण शरीर ।
त्रिभुवनपति त्रिभुवन तिलो गुणनीलो गुण गंभीर ॥७॥

माननी मोहन जिनवर दिन दिन देह दिपंत ।
प्रलव प्रताप प्रभाकर भवहरि श्री भगवंत ॥८॥

लीला ललित नेमीश्वर अलवेश्वर उदार ।
प्रहसित पंकज पखडी अखडी अपि अपार ॥९॥

अति कोमल गल कंदल अविमल वाणी विलास ।
अंगि अनोपम जिनवर मदन निवास ॥१०॥

भराया वन प्रभु घर वस्यो सत्र हुयो सुभ आगम काल ।
अमर खेचर नर हरखीया निरखीया नेमिकुमार ॥११॥

देव दानव समीनि सहू बहू मल्या यादव कोडि ।
फणी पति महीपति सुरपती वीनती करइ जोडि ॥१२॥

सु णि सु णि स्वामी सांभली सबेलातूं सीह सुतंग ।
प्रथम तबह सुख संपदो सुंदरी भोग विचंग ॥१३॥

पीछ परमारथ मनि धरि आचरि चारित्र चंग ।
आपि अप आराधज्यो साधज्यो शिव सुख संग ॥१४॥

उग्रसेन राया केरी कुमरी मनोहरी मनमथ रेह ।
साव सलुणी गोरडी उरडी गुण तणी रेह ॥१५॥

मेगल ती अतिमलयंती चालती चतुर सुरंग ।
कटि तटि लंक लघूतर उदर त्रिवली अंग ॥१६॥

कठिन सुपीन पयोधर मनोहर अति उत्तंग ।
चंपकवनी चंद्रानननी माननी सोहि सुरंग ॥१७॥

हरणी हरावी निज नयणडि वयणडि साह सुरंग ।
दंत सुपंती दीपंती सोहंती सिरे वेणी बंध ॥१८॥

कनक केरी जसी पूतली पातली पदमनी नारि ।
सतीय शिरोमणि सुंदरी भ्रमरी भुवनि अभरि ॥१९॥

ज्ञान विज्ञान विचक्षणी सुलक्षणी कोमल काय ।
दान सुपात्रह पोखती पुजती श्री जिनराय ॥२०॥

राज्यमती रलीयामणी सोहामणी सुमधुरीय वाणि ।
ग्रमर तोली मामिनी स्वामिनी सोहि सुराणी ॥२१॥

रूपि रंभा सु तिलोत्तमा उत्तम ग्र गि ग्राचार ।
परिणऊँ पुण्यवती तेहनि नेह करि नेमि कुमार ॥२२॥

तव चितवि सुख दायक जग नायक जिनराय ।
चारित्र वरणीय कर्म मर्महजीमज आज ॥२३॥

जव जिन पाणी ग्रहण तणी हमणीं हइडि विचारि ।
सुर नर तव मानदीया वदीया जय जयकार ॥२४॥

तव बलदेव गोविंद नरिंद सुरिंद समान ।
रथि बिठ जगपती जव तव संहु चालिजान ॥२५॥

घटा टकार वयमटम कथा चमकथा चतुर सुजाण ।
देवद दामाद्रकया चमकयाढोल नीसाण ॥२६॥

भेरी न भेरी मह झरि भल्लरि झ झकार ।
वीणा वश वर चग मृदंग सु दोंदो कार ॥२७॥

करडका हाल कंसाल सूताल विशाल विचित्र ।
सागा सरण इव सख प्रमुख बहु वाजित्र ॥२८॥

पाखरा तार तो खार ईसार ता नेजीऊरग ।
मद भरि मेगल मलपता मलकता चाला सुचंग ॥२९॥

सबल सग्रामि सबूझजे भूझ झालिक भूझार ।
धाया धार धसता हसता हाथि हथीयार ॥३०॥

समरथ रथ सेजवाला पाला नर पुहु विन माय ।
वाहाण विमाण सुजाण सुखासन सख्यन थाइ ॥३१॥

उर्द्ध ध्वज नेजाराजे स खिरि सीस करि सोह समान ।
विचित्र सुछत्र चामर भरि अ वरी छाह्यो माण ॥३२॥

सुगध विविध पकवान भोजन पान अमीय समान ।
जमण जमती जाय जान सुवान वाधती विधान ॥३३॥

मृग मद चदन घोलत बोल सुरील अपार ।
सुर तर ग्र वर भरा केसर कपूर सार ॥३४॥

केतकी मालती माल गोजाल सु चपक चग ।
बोलसरी वेल्य पाडल परिमल मलया भृंग ॥३५॥

बहु विध भोग पुरदर सुन्दर सहिजि स्वरूप ।
चतुर पणि चालि जान सुभान मलीं बहु भूप ॥३६॥

दुख दालिद्र दूरि गया आपयाँ दान उदार ।
सजन सहु सतोषीया पोखीया बहु परिवार ॥३७॥

बदी जन बरद बोलि घणा जिव तथा विविध विसाल ।
वरवाजाय वाय लगाय गा गाय गुणं माले ॥३८॥

इन्द्र इन्द्राणी उवारणा जु छणां करि घरणेस ।
नव रसि नाचि विलासणी सुहासणि भरे सेस ॥३९॥

घवल मगल सोहामणा भामणा लेव नर नारि ।
लूणा उतारे कुमारी स मारी सु सार सणिगार ॥४०॥

जयतू जीवितू नन्द जिणद ज द जगीस ।
युवती जगतीं यम जपती कुल दिये आशीश ॥४१॥

इम प्रभु परणे वासात तोर्ग जाइ जान ।
जान जाणी अव भावती नर उग्रसेन ताम ॥४२॥

सचरी साहामो सभ्रमकरी मरी प्रणमेवि ।
मलया महा जनमन रगे अ निगन लेवि ॥४३॥

युगति जोइ जातीवासि उल उतारी जान ।
आसन सयन भोजन विधि म पद्धिदीघायान ॥४४॥

नयरि मझारि सिणगारी सून ताहि सुविचार ।
तहांतव हासव माडीया छो अवर व्यापार ॥४५॥

ध्वजि तोरणि सोहि घरि घ रि घरिवानरवाल ।
फूल पगर भरला घरि घरि घरि झाकझमाल ॥४६॥

घरि घरि कुकुम चदन तणा टणां छडा देवराथि ।
घरि घरि मणि मुगता फल ल चाक पुराय ॥४७॥

नव नवा नाटिक घरि घरि नरि हरष न मायि ।
गिरिनारिपूरि केरी सुन्दरी रा भरि मंगल गाइ ॥४८॥

चोवटा चहूटा सुरंगा रीया मारी बांध्या पटकूल।
पंच सबद वाजि वरि घरि घरि वरि दत तबोल ॥४९॥

घरि घरि गाय वधामणा रलीया मणा मन मिली।
घरि घरि अंग उल्लास सुरासुर मिरलि ॥५०॥

भट्टारक रत्नकीर्ति के कुछ पद

[१] राग–नट नारायण

नेम तुम कैसे चले गिरिनारि।
कैसे विराग धर्यो मन मोहन, प्रीत विसारि हमारी ॥१॥

सारग देखि सिधारे सारग, सारग नयनि निहारी।
उनपे तंत मंत मोहन है, वेसो नेम हमारी ॥नेम०॥२॥

करो रे संभार सांवरे सुन्दर, चरण कमल पर वारि।
'रतनकीरति' प्रभु तुम बिन राजुल विरहानल हू जारी ॥नेम०॥३॥

[२] राग–कन्नडो

कारण कोउ पिया को न जाने।
मन मोहन मंडप तें बोहरे, पसु पोकार बहाने ॥कारण०॥१॥

मो थे चूक पडी नहि पलरति, भ्रात तात के ताने ॥
अपने उर की आली वरजी, सजन रहे सब छाने ॥कारण०॥२॥

आये बहोत दिवाजे राजे, सारंग मय धूनी ताने।
'रतनकीरति' प्रभु छोरी राजुल, मुगति वधू विरमाने ॥३॥

[३] राग–देशाख

सखी री नेम न जानी पीर।
बहोत दिवाजे आये मेरे घरि, संग लेई हलधर वीर ॥स०॥१॥

नेम मुख निरखी हरषीयन सूं, अब तो होइ मन धीर।
तामें पशुय पुकार सुनि करि, गयो गिरिवर के तीर ॥सखी०॥२॥

चद्रवदनी पोकारती डारती, मडन हार उरचीर।
'रतनकीरति' प्रभू भये वैरागी, राजुल चित कियो धीर ।।सखी०।।३।।

[४] राग—देशाख

सखि को मिलावो नेम नरिंदा।
ता विन तन मन योवन रजत हे, चारु चंदन अरु चदा ।।सखि०। १।।
कानन भुवन मेरे जीया लागत, दु सह मदन को फदा।
तात मात अरु सजनी रजनी, वे अति दुख को कंदा ।।सखि०।।२।।
तुम तो शंकर सुख के दाता, करम काट किये मदा।
'रतनकीरति' प्रभु परम दयालु, सेवत अमर नरिंदा ।।सखि०।।३।।

[५] राग—मल्हार

सखी री सावनि घटाई सतावे।
रिमि झिमि वून्द वदरिया वरसत, नेम नेरे नहिं आवे ।।सखी०।।१।।
कू जत कीर कोकिला वोलत, पपीया वचन न भावे।
दादुर मोर घोर घन गरजत, इन्द्र धनुष डरावे ।।सखी०।।२।।
लेख लिखू री गुपति वचन को, जदुपति कु जु सुनावे।
'रतनकीरति' प्रभु अव निठोर भयो, अपनो वचन विसरावे ।।सखी०।।३।।

[६] राग—केदार

कहाँ थे मडन करु कजरा नैन भरु, होऊं रे वैरागन नेम की चेरी।
शीश न मजन देउ माग मोती न लेउ, अव पोरहु तेरे गुननी वेरी ।।१।।
काहूं सू वोल्यो न भावे, जीया मे जु ऐसी आवे।
नही गये तात मात न मेरी ।।
आली को कह्यो न करे, वावरी सी होइ फिरे।
चकित कुरगिनी यु सर घेरी ।।२।।
निठुर न होइ ए लाल, वलिहु नैन विशाल।
कैसे री तस दयाल भले भलेरी ।।
'रतनकीरति' प्रभु तुम विना राजुल।
यो उदास गृहे क्यु रहेरी ।।३।।

भट्टारक कुमुदचन्द्र के कुछ पद

[१] राग—नट नारायण

आजु मैं देखे पास जिनेंदा ।

सावरे गात सोहामनि मूरति,
शोभित शीस फणेंदा ॥आजु०॥१॥

कमठ महामद भजन रंजन ।
भविक चकोर सुचदा ।

पाप तमोपह भुवन प्रकाशक ।
उदित अनूप दिनेंदा ॥आजु०॥२॥

भुविज—दिविज पति दिनुज दिनेसर ।
सेवित पद अरविंदा ।

कहत कुमुदचन्द्र होत सबे सुख ।
देखित वामा नदा ॥आजु०॥३॥

[२] राग—सारंग

जो तुम दीन दयाल कहावत ।
हमसे अनाथनि हीन दीन कू काहे नाथ निवाजत ॥ जो तुम०॥१॥
सुर नर किन्नर असुर विद्याधर सब मुनि जन जस गावत ।
देव महीरुह कामधेनु ते अधिक जपत सच पावत ॥ जो तुम०॥२॥
चद चकोर जलद जु सारग, मीन सलिल ज्यु ध्यावत ।
कहत कुमुद पति पावन तूहि, तुहि हिरदे मोहिभावत ॥ जो तुम०॥३॥

[३] राग धन्यासी

मैं तो नरभव वाधि गमायो ।
न कियो जप तप व्रत विधि सुन्दर ।
काम भलो न कमायो ॥ मैं तो० ॥१॥
विकट लोभ तें कपट कूट करी ।
निपट विषै लपटायो ॥मैं तो०॥
विटल कुटिल शठ सगति बैठो ।
साधु निकट विघटायो ॥मैं तो०॥२॥

कृपण भयो कछु दान न दीनो ।
दिन दिन दाम मिलायो ॥
जब जोवन जजाल पड्यो तब ।
परत्रिया तनुचित लायो ॥मैं तो०॥३॥
अ त समै कोउ सग न आवत ।
झूठहि पाप लगायो ॥
'कुमुदचन्द्र' कहे चूक परी मोही ।
प्रभु पद जस नही गायो ॥मैं तो०॥४॥

[४] राग–सारंग

नाथ अनाथनि कू कछु दीजे ।
विरद सभारी धारी हठ मन तें, काहे न जग जस लीजे ॥
नाथ०॥१॥
तुही निवाज कियो हू मानष, गुण अवगुण न गणीजे ।
व्याल बाल प्रतिपाल सविषतरु, सो नही आप हणीजे ॥
नाथ०॥२॥
में तो सोई जो ता दीन हूतो, जा दिन को न छूईजे ।
जो तुम जानत और भयो है, बाधि बाजार वेचीजे ॥
नाथ०॥३॥
मेरे तो जीवन धन बस, तमहि नाथ तिहारे जीजे ।
कहत 'कुमुदचद्र' चरण शरण मोहि, जे भावे सो कीजे ॥
नाथ० ॥४॥

[५] गग–सारंग

सखी री अबतो रह्यो नहि जात ।
प्राणनाथ की प्रीत न विसरत ।
छण छण छीजत गात ॥सखी०॥१॥
नहि न भूख नही तिसु लागत ।
घरहि घरहि मुरझात ॥
मन तो उरझी रह्यो मोहन सु ।
सेवन ही सुरझात ॥सखी०॥२॥

* चन्दा गीत *

(भ० अभयचन्द)

विनय करी रायुल कहे चन्दा वीनतडी अव धारो रे।
उज्जलगिरि जई वीनवो, चन्दा जिहा छे प्राण आधार रे ॥१॥

गगन गमन ताहरु रुवडू, चदा अमीय वरखे अनन्त रे।
पर उपगारी तू भलो, चदा वलि वलि वीनवु सत रे ॥२॥

तोरण आवी पाछा चल्या, चदा कवण कारण मुझ नाथ रे।
अम्ह तणो जीवन नेम जी, चदा खिण खिण जोऊ छू पंथ रे ॥३॥

विरह तणा दुख दोहिला, चदा ते किम मे सहे वाप रे।
जल विना जेम माछली, चदा ते दुख मे न कहे वाप रे ॥४॥

मे जाण्यु पीउ आवस्ये, चदा करस्ये हाल विलास रे।
सप्त भूमि ने उरदे चदा भोगवस्यु सुख राशी रे ॥५॥

सुन्दर मदिर जालीया चदा झल के छे रत्ननी जालि रे।
रत्न खचित रूडी सेजडी, चदा मगमगे घूप रसाल रे ॥६॥

छत्र सुखासन पालखी चदा गज रथ तुरग अपार रे।
वस्त्र विभूषण नित नवा चदा अ ग विलेपन सार रे ॥७॥

षट रस भोजन नव नवा, चदा सूखडी नो नही पार रे।
राज ऋधि सहू परहरी चन्दा जई चढ्यो गिरि मझारि रे ॥८॥

भूषण भार करे घणू, चन्दा पग मे नेउर झमकार रे।
कटि तटि रसनानडे घनि चन्दा न सहे मोती नो हार रे ॥९॥

झलकति झालि हू झब हू चन्दा नाह बिना किम रहीये रे।
खीटलीखति करे मुझने चन्दा नागला नाग सम कहीये रे ॥१०॥

टिली मोरु नल वट दहे चन्दा नाक फूली नडे नाकि रे।
फोकट फरर के गोफणो, चन्दा चाट्लस्यु कीजे चाक रे ॥११॥

सेस फूल सीसें नविघरु, चन्दा लटकती लन न सोहोव रे।
छम छम करता घूघरा चन्दा वीछीया विछि सम भावरे ॥१२॥

* चुनड़ी गीत *

ब्रह्म जयसागर

राग—

नेमि जिनवर नमीयाची, चारित्र चुनडी मागेंराजी ।
गिरिनार विभुपरण नेमं, गोरी गज गति कहे जिनदेव ॥

राजिमति राजीव नयणी, कहे नेम प्रति पीक वयणी ।
घम घमति घुघरी चगी, आपो चारित्र चुनडी नवरङ्गी ॥राजी०॥१॥

वर भव्य जीव शुभ वास, समकीन दृरडानो पास ।
पीलो पीलो परम रङ्ग सोह्यो, देखी भ्रमरनि कर मन मोह्यो ॥राजी०२॥

मुल गुण रङ्ग फटकी कीध, जिनवाणी अमीरस दीध ।
तप तेजे हे जे सुके, चटको रङ्ग नो नवि मुझे ॥राजी०॥३॥

एइ भाव्य करि ग्रज रूडो, टाले मिथ्या मत रङ्ग कुडो ।
पच परम मुनी ग्रह्यो छायो, मागत भीरी भली आसायो ॥राजी०॥४॥

खाजली खरी च्यार नियग, पाच माहाव्रत कमल ने सग ।
पच सुमति फूल अणाग, निरुपम नीलवरण सुरङ्ग ॥राजी०॥५॥

उत्तर गुण लक्ष चौरासी, टवकती टवकी शुभ भासी ।
क्रीया कर को सभे पासी, चढ को चढयो रङ्ग खासी ॥राजी०॥६॥

नीला पीला रङ्ग पालव सोहे, गुप्ति भयना मन मोहे ।
शिल सहस्त्र या याच्य हो पासे, भजया भ ' परव्रत सारे ॥राजी०॥७॥

रगे रागे वहु माहे रेख, नीलीकाली नवलडी शुभ वेख ।
भवभृ ग भगननी देख, कानी करुण नी रेख ॥राजी०॥८॥

मुख मडण फूलडी फरति, मनोहर मुनि जन मन हरति ।
शुभ ज्ञान रङ्ग बहु चरति, वर सीध तणा सुख करति ॥राजी०॥९॥

कपटादिक रहीत सुवेली, सुखकरी करुणा तणी केली ।
मोती चोक चुनी पर खेली च्यारदान चोकडी भली मेहेली ॥राजी०॥१०॥

प्रतिमा द्वादश वर फूली, राजीमती मुख तेज अमूली ।
देखी भ्रमरी चमरी बहु भूली, मेरु गिरि जदे तसु कूली ॥राजी०॥११॥

द्वादस अंग घूघरी भूर, तेह सुणी नाचे देव मयूर ।
पच ज्ञान वरण हीर करता, दीव्य ध्वनि फूमना फरना ।।राजी०।।१२।।

ए ह चुनडी उठी मनोहारि, गई राजुल स्वर्ग दूआरि ।
वसे अमर पुरि सुखकारी, सुख भोगवे राजुल नारी ।।राजी०।।१३।।

भावी भव बंधन छोडे, पुत्रादिक यामे कोडे ।
धन धन योवन नर कोडे, गजरथ अनुचर स छोडि ।।राजी०।।१४।।

चित चुनडी ए जे धरसे, मनवाछित नेम सुख करसे ।
ससार सागर ते तरसे, पुन्य रत्न नो भडार भर से ।।राजी०।।१५।।

सुरि रत्नकीरति जसकारी, शुभ धर्म शशि गुण धारी ।
नर नारि चुनडी गावे, ब्रह्म जय सागर कहे भावे ।।राजी०।।१६।।

—इति चुनडी गीत—

हंस तिलक रास[1]

※ हंसा गीत ※

"राग देशीय"

णविवि जिणिंदह पय कमलु, पढइ जु एक मणेण रे हंसा ।
पापविनाशने धर्म कर वारह भावना एह रे हंसा ।
हंसा तु करि संवलउ जि मन पडइ संसार रे ।। हंसा ।।१।।

धन जोवन पुर नगर घर, बंधव पुत्र कलत्र रे । हंसा ।
जिम आकासि वीजलीय, दिट्ठ पणट्ठा सव्व रे ।। हंसा ।।२।।

रिसह जिणेसुर भुवन गुरु, जुगि धुरि उपना सोजि रे । हंसा ।
भूमि विलासिणि तिणि तिजिय नीलजसा विनासि रे ।।हंसा ।।३।।

नंदा नंदन चक्कवइ भरह भरह पति राउ रे । हंसा ।
जिण साधीय पट खंड धरा सो नवि जाउ रे ।। हंसा ।।४।।

सगरु सरोवर गुण तणुउ सुर नर सेवइ जास रे । हंसा ।
नंदण साठि कहस्स तस विहडिय एकइ सासि रे ।। हंसा ।।५।।

करयल जिम जिम जलु गलइ तिम तिम खूटइ आउ रे । हंसा ।
नद्र धनुष खर देह इह काचा घट जिम जाइ रे ।। हंसा ।।६।।

नर नारायण राम नृप पंडव कूरव राउ रे । हंसा ।
रूखह सूका पान जिम ऊडिगया जिह वाय रे ।। हंसा ।।७।।

सुरनर किंनर असुर गण ॰ ॰ह सरण न कोइ रे । हंसा ।
यम किंकर वलि लितयह कोइन आडु थाइ रे ।। हंसा ।।८।।

मद मछर जोवन नडीय कुमर ललित घट राउ रे । हंसा ।
भव दुह वीहियुत पलीयु ए तिनि कोइ सरण न जाउ रे ।। हंसा ।।९।।

जल थल नह पर जोणीयहि भमि भमि छेहन पत्त रे । हंसा ।
विषया सत्तउ जीवडउ पुदगल लीया अनंत रे ।। हंसा ।।१०।।

---

[1] ब्रह्म अजित कृत इस कृति का परिचय पृष्ठ १९५ पर देखिये । इसका दूसरा नाम हंसा गीत भी मिलता है ।

घघइ पडिउ सयल जगु मे मे करइ अयाणु रे । हसा ।
इदिय सवर सवा विउए बूडता लागि माफेन रे ।। हसा ।।११।।

बीहजइ चउगइ गमणतउ जगि होहि कयच्छ रे । हसा ।
जिम भरहेसर नदणइ णमीय सिवपुरि पथि रे ।। हसा ।।१२।।

एक सरगि सुख भोगवइ एक नरग दु ख खाणि रे । हसा ।
एकु महीपति छत्र घर एकु मुकति पुरडाणि रे ।। हसा ।।१३।।

बघव पुत्र कलत्र जीया माया पियर कुडव रे । हसा ।
रात्रि रुखह पखि जिम जाइवि दह दिसि सव्व रे ।। हंसा ।।१४।।

अन्नु कलेवर अन्नु जिउ अनु प्रकृति विवहार रे । हसा ।
अन्नु अन्नेक जाणीय इम जाणी करि सार रे ।। हसा ।।१५।।

रस वस श्रोणित सजडिउ रोम चर्म नइ हड्ड रे । हसा ।
तनि उत्तिम किम रमइ रोगह तणीय जघड्ड रे ।। हसा ।।१६।।

आश्रव सवर निर्जरा ए चिंतनु करि द्रढ चित्त रे । हसा ।
जिम देवइ द्वारावतीय चिंतिवि हुईय पवित रे ।। हसा ।।१७।।

लोकु वि त्रिहु विधि भावीयइ अध ऊरघ नइ मध्य रे । हसा ।
जिम पावइ उत्तिम गति ए निर्मलु होहि पवित्त रे ।। हसा ।।१८।।

परजापति इन्द्रिय कुल देम घरम्म कुल भाउ रे । हसा ।
दुलहउ इक्कइ इक्कु परा मनुयत्तणु वइ राउ रे ।।हसा ।।१९।।

कुगुरु कुदेवइ रणभणिउ खलस्यू कहइ सुवण्ण रे । हसा ।
वोधि समाधि वाहिरउ कूडे धम्मंहरनित्त रे ।। हसा ।।२०।।

अग्य रे अग श्रुत पारगउ मुनिवर सेन अभव्य रे । हसा ।
वोधि समाधि वाहि रुए पडिउ नरक असभ्य रे ।। हसा ।।२१।।

मसगर पूरण मुनि पवरु न्नित्य निगोद पहूतु रे । हसा ।
भाव चरण विण वापडउ उत्तिम वोधन पत्त रे ।। हसा ।।२२।।

तप मासइ घोखत यह सिव भूपण मुनि राउ रे । हसा ।
केवल णाणु उपाइ करि मुकति नगरि थिउ राउ रे ।। हसा ।।२३।।

तीर्थंकर चउवीस यह ध्याईनि ग्या मोक्ष रे । हसा ।
सो ध्यायि जीव एकु सिद्ध जिम पामइ वहु सौख्य रे ।। हसा ।।२४।।

सिद्ध निरंजन परम सिउ सुद्ध बुद्ध गुण पहू रे । हसा ।
वरिसइ कोडी कोडि जस गुण हुए लाभइ छेहु रे ।। हसा ।।२५।।

एहा वोधि समाधि लीया अवरु सहू ककयत्थु रे । हसा ।
मनसा वाचा करणीयह ध्याईयएहु पसत्थु रे ।। हसा ।।२६।।

इम जाणी मण क्रोधु करि क्रोधई धम्मंह नासु रे । हसा ।
दीपाइन मुनि हुयि गयु एनि द्वारावती नास रे ।। हसा ।।२७।।

चित्त सरलु जीव तू करहिं कोमल करि परिणामु रे । हसा ।
कोमल वासुगि विष टलइ कम्मह केहउ ठामु रे ।। हसा ।।२८।।

माया म करिसि जीव तहु माया धम्मह हाणी रे । हसा ।
माया तापस छयि गयू ए सिवभूती जगि जाणि रे ।। हसा ।।२९।।

सत्य वचन जीव तू करहिं सत्ति सुरन गमन रे । हसा ।
सत्य विहुणउ राउ वसु गयु रे सातलिट्ठामि रे ।। हसा ।।३०।।

निर्लोहि तणु गुण धरिहिं प्रक्षालहिं मन सोसु रे । हसा ।
अति लाभइ पुण नरि गयु सरि अति गिद्ध नरेस रे ।। हसा ।।३१।।

पालहिं सयम जीवन कू श्री जिन शासन सार रे । हसा ।
पालिसखीय्यु चक्कवइ जोइन सनत कुमार रे ।। हसा ।।३२।।

वारह विधि तप वेलडोया धार तणइ जलि सचि रे । हसा ।
सौख्य अनता फलि फूलइ जातु मन जिय खचि रे ।। हसा ।।३३।।

त्याग धरमु जीव आपरहिं आकिंचन गुण पाल रे । हसा ।
धर्म्म सरोवरु शील गुणु तिणि सरि करि आलि रे ।। हसा ।।३४।।

श्रेठि सिरोमणि शीलगुण नाम सुदर्शन जाउ रे । हसा ।
ब्रह्म चरिज दृढ पालि करि मुगति नगरि थु राउ रे ।। हसा ।३५।।

ए वारइ विहि भावणइ जो भावइ दृढ चित्त रे । हसा ।
श्री मूल सघि गछि देसीउए वोलइ ब्रह्म अजित्त रे ।। हसा ।।३६।।

❀ इति श्री हसतिलक रास समाप्त. ❀

ग्रंथानुक्रमणिका

ग्रंथकारानुक्रमणिका

(ग्रन्थकार, सन्त, श्रावक, लिपिकार आदि)

ग्राम-नगर-प्रदेशानुक्रमणिका

शुद्धा-शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	सं०	पंक्ति
ग्र थ निर्माणही किया गया	ग्र थ का निर्माण किया	१४	१७
सुरक्षित	सुसस्कृत	१४	१८
नागौर प्राप्ति	नागौर गादी	४९	१६
तलव	मालव	५०	३
जोह्रारपुरकर	जोहरापुरकर	५०	२४
और क्रोधित	और उसने क्रोधित	६४	२८
लोडे	डोले	८१	२२
नूरख	मूरख	८६	१५
ब्रह्मबूचराज	भ० शुभचन्द्र	१०३	१
„	„	१०५	१
अपनी	अपने	१०७	८
रत्नाकीर्त्ति	रत्नकीर्त्ति	१३१	१
धन्य	धान्य	१३९	२५
रति	गति	१४५	१७
३३९	३१	१४६	१४
वी	की	१४६	१५
पुष्य	पुण्य	१४७	२
सगति	सगति	१४७	७
बाडोरली	बारडोली	१५९	१७
ग्रहस्थ	गृहस्थ	१८३	२५
महिमानिनो	महिमानिलो	१८९	१०
धर्मसामर	धर्मसागर	२०७	२०
११२	२१२	२१२	—
जयगसागर	जयसागर	२१२	३
११६	२१६	२१६	—